ॐ



श्रीमद्

# देवचंद्रजीकृत चोवीशी.

बाळावबोध,
वीशी, गत चोवीशी
तथा ध्यान दिपीका सहित

छपावी प्रसिद्ध करनार,

## शा. सुरचंद स्वरुपचंद.

( विजापुर. )

आवृत्ति १ ली. प्रत १०००.
संवत १९७१. सने १९१५.
कींमत अमुल्य.

अमदावाद,
श्री सत्यविजय प्री. प्रेसमां
शाह सांकलचंद हरीलाले छापी.

पुस्तक मळवानां ठेकाणां,-

वीजापुर-प्रसिद्ध कर्ता पासेथी.

पादरा-वकील मोहनलाल हीमचंद.

कावीठा-शा. झवेरभाइ भगवानदास.

# प्रयोजन.

बीजापुर नीवासी शा. मुळचंद स्वरुपचंदे
पोताना वीलमां एक सारी रकम अध्यात्मज्ञा-
ननां पुस्तको प्रसिद्ध करवा माटे संकल्पी हती
ते रकममांथी तेमना ट्रस्टीओनी अनुमतिथी आ
श्रीमद् देवचंद्रजीकृत चोवीशी स्वोपज्ञटबा
हीत तथा वीशवीहरमान जिनस्तवन अने
तीत चोवीशी छपावेल छे अने तेनुं मुख्य
चे मुळचंदभाइना ट्रस्टीओ तेमना बंधु शा.
रचंद स्वरुपचंद ता. शा. धर्मचंद केवळदास
ा. तरफथी थयुं छे ते उपरांत माणसाना
शा वीरचंदभाइ कृष्णाजी ता. पादराना वकील
दलाल ललुभाइए पण द्रव्य सहाय आपी छे

तेमनुं ते उदार कार्य प्रसंशवा तथा अनुकरण करवा योग्य छे.

श्रावक वर्य शा. भीमसीह माणेक जेओ एक अध्यात्मरुची साहसीक जैन हता तेमणे आ चोवीशीनी बे आवृतीओ छपावी जैन वर्गने उपकारी करेल छे. ते ग्रंथनी कींमत रु. १॥ होवाथी तेनो जोइए तेटलो लाभ लेवा बनी शके नही तेमज तेमां केटलीक महत्वनी भुलो रहेली होवाथी जुनी हस्त लीखीत प्रतो मेळवी ते उपरथी नवे सरथी छपाववा विचार थवाथी तेवी प्रतीओ मेळववा प्रयत्न करतां छेवट श्रीमद् बुद्धिसागर सुरीश्वरजी महाराजनी सुचना अने सहायथी अमदावादना डेहेलाना उपाश्रयना ज्ञान भंडारमांथी बे प्रतो मेळवी ते पैकी डाबडा नं. ७१ नी प्रत नं. ५० पृष्ट

९७ नी शुद्ध अने शोधेली होवाथी तेना आ-धारे आ चोवीशी छपावी छे अने ते मुनी महाराजने तेमज ज्ञान भंडार अने जैन पुस्त-कालयोने विना मुल्ये तथा जैन वर्गने मात्र नामनी कींमते आपवा धारणा राखी छे.

श्रीमद् देवचंद्रजी महाराज जेवा अध्या-त्म रशीक महात्मानुं जीवन चरित्र जाणवा सहज जीज्ञासा थाय ए स्वाभावीक छे पण ते मेळववा बनतो प्रयत्न कर्या छतां मळी शकेल नथी ने जेटलो भाग मळ्यो छे तेटलो पादरा-वाशी शा. छगनलाल लक्ष्मीचंद ता. प्रेमचंद दलसुखभाइ तरफथी छपाएल आगम सारोद्धार ग्रंथमां प्रगट करेल छे. तेओश्रीना जन्मनी साल मळती नथी पण पन्यासश्री जीनवीजयजी महाराजे तेओश्री पासे संवत १७९२ मां वि-

शेषावश्यक महाभाष्य धार्युं हतुं. तेमज तेओ-श्रीने पन्यास उत्तम वीजयजी महाराजे संवत १७९९ मां भावनगर तेडावी तेमनी पासे श्री भगवतीसुत्र, पन्नवणासुत्र, अनुयोगद्वार आदि-सुत्र पोते भण्या छे अने ते पछी श्रीमद् देवचंद्रजीए तेमने योग्य जाणी सर्व आगमनी आज्ञा आपी छे× आ उपरथी तेओश्री सं. १७९९ मां वीद्यमान हता एम नीकळे छे.

तेओश्रीना रचेला ग्रंथोमां नयचक्रसार, श्रीमद् यशोवीजयजी उपाध्याय कृतज्ञानसार ( अष्टकजी ) उपर ज्ञानमंजरी नामनी संस्कृत

---

×आ हकीकत पं. श्री जीनाविजयजी तथा. पं. श्री उत्तम विजयजीनां चरीत्र (नीर्वाण ) ढाळ बंध श्री अ० ज्ञा० प्र० मंडळे छपावेल जैन रासमाळाना पृष्ट १६३ मां छे

टीका* आगम सारोद्धार (रच्यो संवत १७७६ ना फागण सुद ३ कोटामां ) मुनीनी पांच भावना अध्यात्मगीता अष्टप्रवचन मातानी सज्झायो प्रभंजनानी सज्झाय वर्तमान चोवीशी. गत चोवीशी वीस वीहरमान जिन स्तवन (वीशी) ध्यान दीपीका स्नात्र पुजा नव पदजी पुजा एकवीस प्रकारी पुजा देवचंद्रजी प्रश्नोत्तर आदि उपलब्ध छे ते उपरथी तेओश्री द्रव्यानुयोगना रसीक छतां तेमांज लयलीन रहेता हता एम सिद्ध थाय छे. तेमना जेवा उच्च दशावाळा महात्माना हृदयोद्‌गार प्रभु भक्तिमां विशेष आनंद पमाडे ए नीर्विवाद

---

* आ ग्रंथ श्रीमद् सं १७९६ ना कार्तीक सुद १ नवा नगरे पूर्ण करेल छे ने ते हाल भावनगर श्री आत्मानंद सभा तरफथी छपाय छे,

छे जेथी जैन समाजने ते लाभ जेटलो वधारे मळे तेटलो लाभकारी छे जाणी आ प्रयत्न सेवायो छे.

तेओश्रीना जीवनचरीत्र संबंधी शोध प्रवृति चालु छे अने तेओना रचेला ग्रंथोनी एकत्र ग्रंथमाळा बहार पडवानी आवश्यकता छे ते प्रमाणे थशे तो ते साथे ते हकीकत प्रगट थशे एम आशा रहे छे. जे जे महाशयो श्रीमद् नाजीवनने लगती हकीकत पुरी पाडशे तेमनो उपकार थशे.

माहासुद १५<br>सं. १९७१<br>पादरा.

वकील. मोहनलाल हीमचंद.

# अनुक्रमणिका.

| विषय | पृष्ट |
|---|---|

## श्री वर्तमान चोवीशी.

# विज्ञप्ती.

आ ग्रंथ वांचवानी शरुआत करता पहेलां आ शुद्धिपत्रक प्रमाणे ग्रंथमां सुधारी लेइ पछी वांचवा खास विनंती छे.

## शुद्धि पत्रक.

| पृष्ट | लीटी | अशुद्ध | शुद्ध |
|---|---|---|---|
| १ | १५ | यात्रानुष्ठातु | यत्रानुष्ठातु |
| ११ | ९ | पम्म | धम्म |
| ११ | १९ | ज्ञ | ज्ञ |
| १६ | ५ | सुख | सुख आपे |
| १८ | १३ | भिय | मिय |
| १८ | १४ | तात्पर्यंता | तत्पर्यायता |
| १९ | ४ | भिमाया भिमाया | भिमाया |

| पृष्ठ | लीटी | अशुद्ध | शुद्ध |
|---|---|---|---|
| १९ | १० | इत्यहक्षस्य | इत्यक्षरस्य |
| २० | ७ | स्वपर | स्व |
| २० | १९ | स्वपर्यायामवे | स्वपर्याया भवे |
| २२ | ३ | उतारे | उतार |
| २२ | ३ | उतारे | उवार |
| ३२ | ७ | मातष्टा | प्रतिष्टा |
| ३३ | ८ | व्रात्तरव | वृतिरेव |
| ४४ | ९ | भावधम | भावधर्मे |
| ४७ | ९ | निर्यामिक | नियामिक |
| ५३ | १० | जा | जो |
| ६१ | ७ | सव | सर्व |
| ७७ | ९ | लही | लथी |
| ९३ | ८ | तथा | तेथी |

| पृष्ट | लीटी | अशुद्ध | शुद्ध |
|---|---|---|---|
| ९४ | २ | परिणामे | परिणमे |
| ९४ | १३ | घटें | घटे |
| ९७ | १ | कारणाप्युचते | कारेणाप्युच्यते |
| ९९ | १२ | परमात्मा | परमात्मता |
| १०० | १ | प्रयंजतो | प्रयुंजतो |
| १३३ | ८ | पञ्चळं | पञ्चकं |
| १३८ | ९ | सभादिति | संभवादिति |
| १४३ | १२ | तथा | तेथी |
| १५० | ६ | मां | मोहे |
| १९२ | ३ | पाषे | पावे |
| २३१ | ३ | विषनुष्ठान | विषअनुष्ठान |
| २६१ | ११ | कायत्व | कार्यत्व |
| ३११ | ११ | सवर | संवर |

| पृष्ठ | लीटी | अशुद्ध | शुद्ध |
|---|---|---|---|
| ३२३ | ३ | सावयव ोय | सावयवन होय |
| ३२६ | ८ | शुद्धिने | ऋद्धिने |
| „ | ९ | „ | „ |
| ३४४ | ६-७ | जतने | जगतने |
| ३४६ | ९ | सहित | रहित |
| ३४९ | ९ | प्रत्येर्के | प्रत्येकं |
| ३५१ | ११ | परिगत | पारंगत |
| ३५५ | ३ | कारज | कारण |
| ३५७ | १४ | उपगारी | उपगारीदुग |
| ३६५ | ११ | छे | छ |
| ३७७ | १४ | पर्याया ्तिक | पर्यायास्तिकनयनीज कहेछे ते तो घटे नही द्रव्यास्तिक |

| पृष्ट | लीटी | अशुद्ध | शुद्ध |
|---|---|---|---|
| ३८३ | १३ | बुद्धिवंतभावचा | बुद्धिवंतेभाववी |
| ४०० | ८ | बहुभवी | बहुभावी |
| ४०५ | ३ | द्र्व्य | द्रव्य |
| ४१४ | २-३ | ज्ञोज | ज्ञाण |
| ४५५ | ३ | कह्युं | कर्युं |
| ४५६ | ११ | तेना | तेमां |
| ४६४ | २ | भवोद्धिचि | भवोद्धिश |
| ४६७ | ११ | पछी (वधारवी) | अभ्रवधे वडांरे ॥अ०॥ आतम परिणातिशुद्ध |
| ४९१ | २ | जे | जी |
| ५०४ | ११ | निवारण | निरावरण |

| पृष्ठ | लीटी | अशुद्ध | शुद्ध. |
|---|---|---|---|
| १२८ | ८ | आहत | अहित |
| १४४ | १२ | छहराया | ठहराया |
| १४८ | ९ | भला विना | भलाभाव विना |
| १४९ | ९ | हच्छ | हथ्थ |
| ,, | ६ | सुकयच्छ | सुकयथ्थ |
| ,, | १४ | सिद्धना | सिद्धिना |
| ५५० | ३ | कारण | कारज |
| १५१ | १ | चिरकळनो | चिरकाळनो |
| ५५४ | ८ | अद्रुतपणे | अद्भूतपणे |
| ५१६ | ८ | जगेदोश | जगेदीश |
| ५६० | २ | मानेधर्म | मानेधर्म प्रसिद्ध, आत्मगुण अ- |

| पृष्ठ | लीटी | अशुद्ध | शुद्ध. |
| --- | --- | --- | --- |
| | | | कषायतारे धर्म. |
| ,, | ४ | नजाण | नजाणे |
| ,, | ९ | मायरे | मीएरे |
| ५६० | १५ | भाव | भावि |
| ५६१ | १२ | पद | पदकामना |
| ५६३ | ६ | विमम्न | विभिन्न |
| ५६५ | १ | अस्त्विादिक | अस्तित्वादिक |
| ५६६ | ११ | भावनुं | भावनो |
| ,, | १८ | ग्राहक | ग्राहक ग्राहक |
| ५६७ | ७ | महोदधि | महोदधि |
| ५६८ | १२ | कल्लेशी | अल्लेशी |
| ५६९ | ४ | [illegible]ने | नायकने |

| पृष्ठ | लींटी | अशुद्ध | शुद्ध. |
|---|---|---|---|
| ५७० | ४ | कारण कारण | कारक कारण |
| ५७१ | ११ | लाळ ॥ | लाळ ॥ पुष्कर अर्धविदहरे, भ- विबोहनारेलाल |
| ५७५ | १ | ॥म०॥ | ॥म०॥अधिकी अरिहंत सेवरे ॥भ०॥७॥पर- मातमगुण स्मृ- ति थकीरे॥म०॥ |
| ५७६ | ४ | भक्तिनो | भक्तिमुक्तिनो |
| ५७८ | ७ | भावे | भावि |
| ६०० | १ | देखाति | देखीने |

| पृष्ठ | ओळी | अशुद्ध | शुद्ध. |
|---|---|---|---|
| ,, | ८ | विण | पिण |
| ६०१ | ३ | विभाग | विभाव |
| ६०३ | ११ | रुचिने गमे | राचिनैगमे |
| ६०८ | १८ | फरने | फळने |

ॐ

॥ ॐ श्रीवर्द्धमानाय नमः ॥

॥ श्री गौतमाय नमः ॥

॥ अथ ॥

# श्रीमद् देवचंद्रजीकृत श्रीआदिनाथप्रमुख चोवीश तीर्थंकरनी स्तवनागीत चोवीशीनो बालावबोध सहित.

---

## पीठिका.

ए संसारी जीव, देवतत्त्व, गुरुतत्त्व, अने धर्मतत्त्वनी भूलें अनादिनो संसार चक्रमांहे भमी रह्यो छे, शरीर इंद्रियसुख परिग्रह तेने

हितकारी मान्या छे, अने पोतानुं आत्मस्व-
रूप, अनंतानंदमय विसारी मूक्युं छे, ते
संभारतोज नथी, पण संज्ञी पंचेंद्रियपणुं पा-
मीने, जो पोतानो शुद्ध धर्म तथा शुद्ध ध-
र्मनां कारण सेवे नहीं, तो आत्मा स्यात्
स्वसंपदा केम पामे ? ते माटे उपकारी, ज-
गत्‌हितकारी, श्रीवीतराग, परमात्मा, परम
पुरुषोत्तम, एवा श्री अरिहंतनी स्तवना तथा
सेवना करवी, पण राग विना प्रभुनी सेवना
थाय नहीं, ते कारणथी प्रथम श्री रूषभदे-
वजीनी स्तवना करतां श्री वीतराग उपर
प्रीति करवी. ते रीत कहे छे. प्रथम धर्मनां
चार आचरण कह्यां छे. १ प्रीति, २ भक्ति
३ वचन, ४ असंग. तेमां प्रथम प्रीतिनुं ल-
क्षण, षोडशकटीकाथी जाणवुं, "यात्रानुष्ठाना

आदरप्रयत्नातिशयोस्ति प्रीतिश्च अभिरुचि-रुपाहित उद्यमोयस्याः सा तथा भवति कर्त्तुः अनुष्ठातुः शेषाणां त्यागेन च तत्काले यच्च करोति तदेकमात्रनिष्ठतया तत्प्रीत्यनुष्ठानं ज्ञेय मिति." जिहां आचरण करवा वालानुं अति आदर सहित उद्यमनुं अतिशयपणुं होय, ते प्रीति जाणवी, ते प्रीतिना विलास विना चाले नहीं, माटे तेहना रुचि अभिलाषी जीवे बीजां सर्व कार्य तजीने तेहज करवुं. तथा तिहांज एक निष्ठा प्रतीति करवी, तेने प्रीतिअनुष्ठान जाणवुं ॥ इति भावार्थः ॥ ते प्रीति संसारी भावथी सर्व जीवोने छे, पण ते पलटावीने गुणोथी करवी, ते कहे छे.

## ॥अथ प्रथम श्रीरूषभजिन स्तवन॥

॥ निंद्रडी वेरण हुइ रही ॥ ए देशी ॥

रुषभ जिणंदशुं प्रीतडी, किम कीजें हो कहो चतुर विचार ॥ प्रभुजी जइ अलगा वश्या, तिहां किणें नवि हो कोइ वचन उच्चार ॥रु०॥१॥

अर्थः—श्रीनाभिकुलघरनी भार्या, श्री मरुदेवी स्वामिनीनी कूक्षिने विषे उत्पन्न थईने जेणे अढार कोडाकोडी सागरोपम सुधी निर्वाण मार्गनुं विघ्न हतुं ते निवार्युं, एवा श्री रुषभदेव प्रथम तीर्थंकर, रागद्वेष रहितताथी जिन कहियें, तथा उपकार संपदा,

अने अतिशयसंपदायें करि विराजमानताथी जिणंद(जिनेन्द्र) कहिये. तेनाथी प्रीतिविलास करवानो अर्थी भव्य जीव, मोक्षाभिलाषी विचारे छे जे, नीरागी रूषभ पुरुषोत्तम साथे शी रीते प्रीति कीजे ? ए वीतरागथी प्रीति, माहारा आत्मायें पहेलां किवारें अनुभवी नथी, ते परमेश्वरथी प्रीतिनो अर्थी प्रीतिनी चाल अजाणतो पुछे छे. जे हे चतुर डाह्या ज्ञानी आचार्यादिक पुरुषो ! अथवा पोतानो आत्मा ते जातें चतुर छे, तेहने पूछे छे, के ते प्रीतिनो विचार कहो जे नजीक होय, तेथी प्रीति बने, पण प्रभुजी तो सर्व रीतें अलगा रह्या छे. प्रथम द्रव्यथी हुं अशुद्ध परिणति विभावकर्मानुयायी, पुद्गलभाव-भोगी, तेथी अशुद्ध द्रव्य छुं, अने श्रीभगवान्

तो शुद्धपरिणामी, सकल निरावरणस्वभावी, निःकर्मा, अनंत अक्षयज्ञानादिस्वगुणभोगी, तेथी शुद्धद्रव्य छे. बीजुं क्षेत्रे करी हुं संसार क्षेत्री, शरीरावगाही छुं, अने श्री रुषभप्रभु तो लोकांतक्षेत्रें रह्या छे, अशरीरी. स्वप्रदेशावगाही छे, तेथी क्षेत्रें करी भिन्न छैयें, तेमज त्रीजुं कालें पण भिन्न छैये. अने भावथी हुं रागी, द्वेषी, तथा अढार पापस्थानके भर्यो छुं, अने श्री देवाधिदेव तो नीरागी, सर्व पापस्थानरहित छे, माटे श्री प्रभुजी, हमणां तो सर्व रीते मुझथी वेगला वसे छे. वली अलगाने पण वचनादिकें मलियें, पण श्रीरुषभदेव सिद्ध थया, तिहां सिद्ध अवस्थामां कोई वचननुं उच्चारवुं नथी, त्यारे प्रीति केम कराय ? इति गाथार्थः॥१॥

कागल पण पहोंचे नहीं, नवि पहोंचे हो तिहां को परधान ॥ जे पहोंचे ते तुम समो, नवि नांखे हो कोईनुं व्यवधान ॥क०॥२॥

अर्थः—तथा एक बीजो पण प्रीति करवानो उपाय छे, जे कागलवडे प्रीति थाय छे, पण सिद्धने विषे कागल पण पहोंचें नहीं. तथा कागल नहीं पहोंचे तो कोई माणस मुकीयें, पण तिहां सिद्धावस्थाने विषे कोई प्रधान पण पहोंचे नहीं; के जेनी साथें विनति कहाविर्ये. इहां कोई जीवने संशय उपजे के रत्नत्रयी आराधीने अनेक जीव, मोक्षे जाय छे, तो कोई न पहोंचे एम केम कहो छो ? ते उत्तर कहे छे, जे तिहां

सिद्धस्थाने विषे जे पहोंचे ते तुम समो, तुम जेवो, प्रभुतामय, वीतराग, अयोगी, असंगी, सकलज्ञायक,पण वचनरहित, एटले अर्थात् ते पण परमपूज्य ते कोइनुं व्यवधान कहेतां आंतरो भेद कहे नहीं, माटे प्रीतिना त्रण उपाय मांहेलो कोई उपाय दीसतो नथी, ते माटे श्रीयुगादिदेव साथे प्रीति केम करियें ? ॥ इति ॥ २ ॥

प्रीति करे ते रागीया, जिनवरजी हो तमे तो वीतराग ॥ प्रीतडी जेह अरागीथी, जेलववि हो लोकोत्तर माग ॥ ऋ० ॥ ३ ॥

अर्थः–हवे वली कहे छे के संसारी जीव मुझ सरिखा तथा सम्यग्दृष्टि प्रमुख पण जे

श्री सर्वज्ञ त्रैलोकी तिलकथी प्रीति करवा चाहे, तेतो रागी राग सहित छे, अने हे जिनवरजी ! तुमे तो वीतराग छो, रागरहित छो, रागीने अनेक रीते रीझवीये, पण जे पोते रागी नहीं, ते केम रीझ पामे ? इहां कोई जीव कहे छे जे तेवारे वीतरागथी प्रीति न करवी ? तिहां कहे छे. जे अरागी-राग रहित तेहथी जे प्रीति भेळववी, तेतो लोकोत्तर मार्ग छे, एटले एम जाणवुं जे रागीथी रागी थाय ते मळे, पण कोई रागांश जे मध्ये नथी तेहथी प्रीति करवी, ते लोकोत्तर मार्ग जाणवो, एटले अरागीथी राग करवो, ते अति आश्चर्य जाणवुं ॥ इति तृतीय गाथार्थः ॥ ३ ॥

प्रीति अनादिनी विष भरी, ते रीते हो करवा मुझ भाव ॥ करवी निर्विष प्रीतडी, किण भाते हो कहो बने बनाव ॥ ऋ० ॥ ४ ॥

अर्थः—हवे संसारी जीव मध्ये प्रीतिनी परिणति अनादिनी छे, परंतु ते पुद्गलना वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, मनोज्ञसंयोग उपर इष्टता छे, ते प्रीति अप्रशस्त छे, नवा कर्मना बंधनुं कारण छे, तेथी ए अनादिनी प्रीति, विषभरी छे, जेम ऐश्वर्यादिक देखीने पुद्गल अशुद्धता उपर जे इष्टता ते राग विषमय छे, ते राग, स्वजन, कुटुंब, परिग्रह उपर छे, ते रीते प्रभुजी तुम उपर राग करवानो मारो भाव छे, पण ते राग कामनो नहीं. प्रकार

कुलाचारें जे आरहंत उपर राग, ते मोक्ष-
मार्गमां नहीं. श्या माटे जे ममकारे कोण राग
करतो नथी ? ए राग, संसारहेतु छे ॥
उक्तं च ॥ जो अपसत्थो रागो, वड्डइ
संसारभमण परिवाडी॥ विषयाइसु सयणाइसु,
इठत्तं पुग्गलाईसु ॥१॥ अने श्री अरिहंतथी
जे राग करवो ते प्रशस्त करवो, तेनुं
लक्षण कहे छे. नाणाईसु गुणेसु, अरिहंताईसु
धम्मरूवेसु॥धम्मोवगरणसाहम्मी, एसुधम्मत्थं
जो य गुणरागो ॥२॥ सो सुपसत्थो रागो,
धम्म संयोग कारणो गुणदो ॥ पढमं कायव्वो
सो, पत्तगुणेरस्कई तं सव्वं ॥३॥ ते माटे अ-
रिहंत उपर राग करवो, ते निर्विष करवो,
जेमां विषयाभिलाषपणुं नहीं, वर्णादिकनी
रीझ नहीं, तथा इह लोक, परलोक, इंद्रिय-

सुखाभिलाष नहीं, प्रभुनां ज्ञानादिक गुण छे ते मने आपे, एवी अभिलाषा नहीं. एक अरूपी, अज, अविनाशी, अकृत्रिम, शुद्ध-ज्ञानादिक गुण सकल व्यक्त थया, स्वरूप-भोगी, स्वरूपरमणी स्वरूपाश्रित, एवा गुण-नो राग एकलो गुण प्रगट करवा वास्ते करवो ते राग, निर्विष जाणवो, ते निर्विष प्रीति करवानी मुझमां तो शक्ति नथी, ते माटे हवे ए बनाव केम बने ? हे उपकारी पुरुषो ! ते तमे कहो ॥ इति चतुर्थ गाथार्थः ॥ ४ ॥

प्रीति अनंती परथकी, जे तोडे हो ते जोडे एह ॥ परम पुरुषथी

रागता, एकत्वता हो दाखी गुण-
गेह ॥ रु० ॥ ५ ॥

अर्थः—हवे चतुर पुरुष उपाय कहे छे. प्रीति कहेतां राग अनंतो परथकी एटले पुद्गलभावथी अथवा शरीरी जीवथी छे ते सर्व जे जीव तोडे कहेतां टाळे, ते जीव ए गुणी अरिहंतादिकथी प्रीति जोडे, एटले सर्व परभावथी राग तजे, ते गुणी राग करी शके. तिहां कोई पूछशे जे गुणी अरिहंतादिकथी गुणें मळे, पण राग तो पापस्थानक छे, ते शा माटे करियें ? तिहां कहे छे, जे परम पुरुष, वीतरागथी रागता कहेतां रागीपणुं ते पण गुणनुं घर कह्युं छे, अने श्री अरिहंतादिकथी गुणें एकत्वध्यानें मळवुं, ते

पण गुणनुं गेह कह्युं छे, ते माटे प्रथम श्री अरिहंत ऊपर राग करवो, तेहीज वीतरागतानुं कारण छे ॥ इति पंचमगाथार्थः ॥५॥

॥ प्रभुजीने अवलंबतां, निज प्रभुता हो प्रगटे गुणराश ॥ देवचंद्रनी सेवना, आपे मुज हो अविचल सुखवास ॥ श्री० ॥ ६ ॥

अर्थः—ए रीतें प्रभुजीने अवलंबतां कहेतां आश्रयतां निज कहेतां पोतानी प्रभुता अनंतगुणपर्यायरूप प्रगटे, निरावरण थाए, गुणनो राशि समूह, सर्व व्यक्त थाय, तेमाटे देव जे चार निकायना देवता अथवा नरदेवादिक मांहे चंद्रमा समान श्री अरिहंत देव, तेहनी सेवना भक्ति, द्रव्यथी तथा भा

वथी करवी, ते आपे कहेतां दे, मुने अवि-
चल सुख, अव्याबाध सुख, तेहनो वास
कहेतां रहेवुं, एटले भावार्थ ए जे, श्रीपरमा-
त्मा, परमपुरुषोत्तम आरिहंतनी सेवना, असं-
यम आश्रवत्याग, संयम संवररूपपारिणमन,
ते सेवना कहियें ॥ उक्तं च ॥ आणाकारी
भत्तो, आणा छेईओ सो अभत्तोत्ती ॥ इति
॥ तथा आरिहंत प्रभु पोतें तो पोतानी से-
वनाना अर्थी नथी, पण सर्व जीवोने स्वहित
करवा वास्ते एहीज करवुं छे, अने आरिहंत
आज्ञा ते कोईनो हुकम मनाववो नथी, पण
श्रीआरिहंत देवें केवलज्ञाने दीठुं, जे सर्व
जीवोने पोतानां ज्ञान, दर्शन, चारित्र, ते
परमानंदहेतु छे, ते माटेजे रीतें ज्ञान, दर्शन,
चारित्र नीपजे, ते मार्ग उपदेश्यो, ते प्रमाणे

वर्त्तवुं. ते अरिहंतनी सेवना करतां निश्चय मोक्षपद, सर्व उत्तम जीव पामे, माटे प्रभुजीनी सेवा, ते अविचल सुख आपे, तें कारणें सर्व भव्यजीवें सकल संसार कार्य तजी सर्व परभावथी निस्पृही थईने, एक परमोपकारी, तत्त्वोपदेशी, धर्मनायक, श्री अरिहंतदेवनी सेवना करवी ॥ १ ॥ इति श्री रुषभजिन स्तवनं समाप्तं ॥

---

## ॥ अथ द्वितीय श्री अजितजिन स्तवनं ॥

॥ देखो गति दैवनीरे ॥ ए देशी ॥

ज्ञानादिक गुणसंपदा रे, तुज अनंत अपार ॥ ते सांभलतां ऊपनी

रे, रुचि तेणें पार उतार ॥ अजित जिन तारजो रे ॥ तारजो दीन दयाल, अजित जिन तारजो रे ॥२॥

अर्थः—हवे श्री अजितनाथस्वामीनी स्तवना करे छे. कारण कार्यभावनी साधनता देखाडे छे, जे कारण मले, ते कार्य नीपजे, ते कारणना बे भेद छे. एक निमित्त कारण, बीजुं उपादान कारणनी कारणता निमित्त मल्यां प्रगटे, ते निमित्त कारणनी पुष्टतायें थाय, अने मोक्षनुं निमित्त कारण, श्रीदेवतत्त्व छे, ते कारणें कार्य निपजे, ते परिपाटी देखाडे छे, सकल पंचास्तिकाय गुणपर्यायादि विशेष धर्म, प्रत्यक्ष भासन, त्रिकालावबोध, ते केवलज्ञान तथा सकल सामान्य

ग्राहक ते केवलदर्शन अने स्वरुप एकत्व ते परम चारित्र. वली अरूपी अव्याबाध प्रमुख गुणनी संपदा, हे प्रभुजी ! तुझ कहेतां तुमारे अनंत छे, अपार छे, जेथकी सर्व द्रव्यथी, सर्व द्रव्यना प्रदेश अनंत गुणा, सर्व प्रदेशथी एक द्रव्यना गुण अनंतगुणा, सर्वगुणथी अस्ति नास्तिरुप स्वपरपर्याय अनंत गुणा· अस्तिपर्याय ते पण वस्तुनो स्वधर्म छे तथा नास्तिपर्याय ते पण वस्तुनो स्वधर्म छे श्री विशेषावश्यकमांहे श्रुतज्ञानाधिकारे कह्युं छे.

॥ एवं उक्ते सति परः प्राह ॥ जइ ते परपज्जाया, न तस्स अह तस्स न परपज्जाया ॥ जं तं मिय संबद्धा, तो परपज्जाय ववएसो ॥ १ ॥ इह स्वपर्यायाणामेव तात्पर्यता युक्ता ये चामी परपर्यायास्ते यदि घटादीनां तर्हि

नाक्षरस्य तथाक्षरस्य ते तर्हि न घटादीनां ततश्च यदि परस्य पर्यायास्तर्हि तस्य कथं ? तस्य चेत्परस्य कथमिति विरोध स्तदयुक्तम भिप्रायाभिप्रायापरिज्ञानाद्यस्मात् कारणात् तस्मिन्नकारेकाराद्यक्षरे घटादिपर्याया अस्तित्वेनासंबद्धास्ततस्तेषांपरपर्यायव्यपदेशोअन्यथा व्यावृत्तेन रूपेण तेपि संबद्धाएवेत्यतस्तेषामपि व्यावृत्तरूपतया पारमार्थिकस्वपर्यायत्वं न विरुद्ध्यते अस्तित्वेन तु घटादिपर्याया घटादिष्वेव प्रतिबद्धा इत्यक्षरस्य ते परपर्याया व्यपदेश्यते इति भावः ॥ द्विविधं हि वस्तुनः स्वरूपं, अस्तित्वं नास्तित्वं. च. ततो ये यत्रास्तित्वेन प्रतिबद्धास्ते तस्य स्वपर्याया उच्यंते, येतु यत्र नास्तित्वेन संबद्धास्ते तस्य परपर्यायाः प्रतिपाद्यन्ते ॥ इति निमित्तभेदख्यापनपरा

वेव स्वपरशब्दौ, नत्वेकेषां तत्र सर्वथा सम्बन्ध निराकरणपरौ ॥ वत्थुसहावं पइ तंपिस-परपज्जायभेयओ भिन्नं ॥ तं जेण जीवभावो, भिन्ना इत उग्घडायाया ॥ १ ॥ वस्तुस्वभावं प्रति यथावस्थितं वस्तुस्वरूपमाश्रित्य तदपि केवलज्ञानं अकाराद्यक्षरवत् स्वपरपर्यायभेदतो भिन्नमेव ॥ ननु यथोक्तनीत्या स्वपर्याया-न्वितमेवेति भावः ॥ कुतः ? इत्याह ॥ येन कारणेन तत्केवलज्ञानं जीवभावप्रतिनियतो-जीवपर्यायो न घटादिस्वरूपं, तत्रापि घटा-दयस्तत्स्वभावाः किंतु ततो भिन्ना इति ते ज्ञायमाना अपि ते कथं तस्य स्वपर्याया भवे-युः ? सर्वसंकरैकत्वादिप्रसङ्गा त्तस्मादमूर्त्तत्व चेतनत्वसर्ववेत्तृत्वाप्रतिपाती च निरावरणत्वा-दयःकेवलज्ञानस्य स्वपर्याया घटादिपर्यायास्तु

व्यावृत्तिमाश्रित्य परपर्यायाः ॥ अन्ये तु व्याचक्षते ॥ सर्वद्रव्यगतान् सर्वानपि पर्यायान् केवलं ज्ञानं जानाति येन च स्वभावेनैकं पर्यायं जानाति न तेनैवापरमपि किन्तु स्वभावभेदेनान्यथा सर्वद्रव्यपर्यायैकत्वप्रसंगात्तस्मात् सर्वद्रव्यपर्यायराशितुल्यास्वभावभेदलक्षणकेवलज्ञानस्यस्वपर्यायाःसर्वद्रव्यपर्याया स्तु परपर्यायाः इत्येवं स्वपर्यायाः परपर्याया श्चोभयेपि परस्परं तुल्याः केवलस्येति ॥ इत्यादि अधिकार सर्व महाभाष्यथी(विशेषावश्यकथी जाणजो ते अस्ति नास्ति पर्याय ते जीवद्रव्यना सर्वथी अनंतगुणा छे, ते सर्व प्रभु जी तुमारा निरावरण थया,ते अनंतगुणमयी परमानंद संपदा तमारी आगमथांथी सांभलतां मुझने पण ए रुचि उपनी, जे एहवी सिद्धता

माहरे प्रगटे, एहवो अभिलाष उपनो तेथी कहुं छुं के हे परमपुरुष ! मुझ अनाथ दीन कर्म-वशे भवभमताने भवसमुद्रथी पार उतार, संसारथी पार उतारवानी विनति तुम विना बीजा कोण आगल कहुं ? जे भवपार पाम्या ते आगल भवपार पामवानो विनति करुं ? ते भणी स्वामी ! मुझने संसार निस्तार करो. ए विनति जे जीव, भवथी उद्विग्न मो-क्षाभिलाषी थयो, ते आतुर थइने कहे छे के हे अजित जिन ! मुने तारजो, संसारथी पार उतारजो. तारजो हे प्रभुजी तुमे दीन-दयाल छो. हे स्वामी ! परमभाव करुणाना करणहार छो ॥ इति प्रथमगाथार्थः ॥१॥

जे जे कारण जेहनुं रे, सामग्री

संयोग ॥ मलतां काज नीपजे रे,
करतातणे प्रयोग ॥ अ० ॥२॥

अर्थः—हवे जे कार्यनुं जे कारण छे, ते कारण तथा सामग्री ए बेनो संयोग मलतां कार्य निपजे, जेम घटरूप कार्य, तेहने दंड, चक्र, चीवर, निमित्त कारण छे, तथा मृत्तिका उपादान कारण छे, अने कुंभकार कर्त्ता छे, जे कार्य अभेद तेहनो तेहवो, कर्त्ता पण अभेद, जे कार्य कर्त्ताथी भिन्न, तेनो कर्त्ता पण भिन्न; एटले घटकार्य ते परवस्तु छे, तेहनो कर्त्ता कुंभकार पण भिन्न छे. अने सिद्धतारूप कार्य आत्माथी अभिन्न छे, तो तेहनो कर्त्ता आत्मा पण अभिन्न छे.

हवे आत्मा कर्त्ताने सकलस्वधर्मव्यक्त

रूप जे सिद्धता, ते कार्य, तेहने देव श्री अरिहंत देवाधि देव तथा गुरुनिर्ग्रंथादिक ते निमित्त कारण मल्यां, अने सामग्री कर्मभूमि साधर्मिकादिक संयोग मल्यां मोक्षरूप कार्य नीपजे, माटे माहरुं मोक्षरूप कार्य तेना निमित्तकारण श्री वीतराग तुमे छो, तेथी तमने आश्रयतां मोक्षरूप कार्य नीपजे, पण कारण सर्व मल्यां, अने कर्त्ता जे आत्मा ते जो तेम प्रयोग साधननो व्यापार न करे, तो कार्य निपजे नहीं, केमके अरिहंतादिकना निमित्त पामीने पण अनेक जीव आत्मा साध्यावलंबी तथा साधनपरिणति थया विना मोक्षकार्य निपजाव्या विना हजी संसारमां भमता दीसे छे, ते माटे कर्त्ता जे आत्मा ते जो मोक्षसाधनरूप प्रयोग करेतां

व्यापार करे, तो सिद्धतारूपकार्य निपजे ॥ इति ॥ द्वितीयगाथार्थः ॥ २ ॥

कार्य सिद्धि कर्त्ता वसु रे, लहि कारण संयोग ॥ निज पद कारक प्रभु मल्या रे, होए निमित्तह जोग ॥ अ० ॥ ३ ॥

अर्थः—माटे कार्यसिद्धतानी निष्पत्ति ते कर्त्ताने हाथ छे, जेम दंडरूप कारण तेने जो कर्त्ता घटरूप कार्य करवाने प्रवर्त्तावे तो घटरूप कार्य करे, अने तेज दंड जो घट-ध्वंसने प्रवर्तावे तो घटध्वंस करे, ते माटे निमित्तनी प्रवृत्ति ते कर्त्ता जो ते कार्य कर-वाने प्रवर्त्तावे तो कार्य करे, माटे कार्यनी सिद्धि ते कर्त्ताने हाथ छे, पण कारणनिमि-

त्यादिक तेनो संयोग मल्यां कार्य निपजे, ए पद्धति छे. माटे कोई संसारी आत्मा निज कहेतां पोतानुं आत्मिक पद परमानंद महोदयरूप तेहनो कारक कहेतां करवावंत तेने मोक्षना पुष्टकारण प्रभुजी श्री अरिहंत मल्यां थकां अवश्य निमत्तनो भोग थाय, एटले जे जीव संसारथी उभग्यो मोक्षाभिलाषी थयो, ते मोक्षना निमित्त श्री तीर्थंकर देव पामीने, हर्षनो भोग आस्वादन पामे. घणो विलास उपजे. कार्यार्थी कारणनी पुष्टता वांछे, ए नीति छे. इति ॥ ३ ॥

अजकुलगत केशरी लहे रे, निजपद सिंह निहाल ॥ तिम प्रभु-भक्तें भवि लहे रे, आतमशक्ति

संज्ञाय ॥ अ० ॥ ४ ॥

अर्थः—ते उपर दृष्टांत कहे छे. जेम कोइ केसरीसिंह जन्मकालथी बकराना टोलामां वध्यो छे तो ते एम जाणे जे बकरानो टोलो तेज माहेरुं कुटंब छे, त्यां किवारे बीजो सिंह आवे, तेवारे बकरां सर्व नासे, अने पोते पण नासे, एम करतां किवारे सिंहनो आकार देखीने पोता सामुं जुए, त्यारे ते पोतानो समान आकार जोइने विचारे जे एहनुंने मारुं तो तुल्यपणुं दीसे छे, ने हुं पण सिंह छुं, पछी निर्भय थाय. ए रीते अज केतां बकरानां कुल केतां टोलामांहे गत केतां रह्यो जे सिंह, ते सिंहपणु भूली गयो, ते बीजा सिंहने देखीने पोतानुं सिंहपणुं संभारे, तिम केहतां ते रीते प्रभुनी

भक्ति करतां भव्यजीव लहे कहेतां पामे, पोतानी आत्मशक्तिनी संभाल कहेतां ओळखाण पामे, जे वीतराग देव देखीने तेनी भक्ति करतां तथा सेवतां थकां उपजे, जे वस्तुस्वरूपसत्ताधर्मे हुं पण वीतराग निःकर्मा शुद्धस्वरूपी छुं, ए पण पहेलां संसारी जीवद्रव्य हता, पछी सिद्ध थया, तेम हुं पण प्रथमथी संसारी छुं, पण जो साधुं, तो सिद्धरूप थाउं. ए सर्व ओळखाण, प्रभुसेवना करतां निपजे ॥ ४ ॥ इति चतुर्थ गाथार्थः ॥

कारण पद कर्त्तापणे रे, करी आरोप अभेद ॥ निज पद अर्थी प्रभुथकीरे, करे अनेक उमेद ॥

अ० ॥ ५ ॥

अर्थः—तेवारे कोई केहेशे जे अरिहंत देव तो अन्य जीवना मोक्ष कर्त्ता नथी, तो श्या वास्ते अरिहंत देव पासे मोक्ष मागो छो ? तेने उत्तर कहे छे; के कारणपद जे अरिहंतादिक ते अति पुष्टालंबन छे, माटे जे कारण तेनेज अभेदकर्त्तापणे आरोप करीने निज कहेतां पोतानुं पद जे शुद्ध सिद्धता, तेहनो अर्थी जे भव्य जीव, ते प्रभु श्रीतीर्थंकर देवथी अनेक सम्यक्त्वादिक गुणनी उमेद कहेतां आशा करे, जे हे प्रभुजी ! मुझने मोक्षनां कारण तथा मोक्ष तमे आपो. एटले निमित्त कारणने कर्त्तापणे आरोप करी स्तुति करी ॥ ५ ॥

एह्वा परमातम प्रभु रे, परमानंद स्वरूप ॥ स्याद्वाद सत्ता रसी रे, अमल अखंड अनूप ॥अ०॥६॥

अर्थः–ह्वे जे निमित्त पामीने उपादान समरे, पलटण पामे, ते रीत कहे छे, अथवा प्रभु परमात्मा तेह्नुं स्वरूप कहे छे. आत्मा त्रण प्रकारना छे, एक बहिरात्मा, बीजो अंतरात्मा, त्रीजो परमात्मा, तिहां जे शरीरादिक औदयिकभावकर्मजनितने आत्मपणे गणे, ते बहिरात्मा कहिये, अने जे शरीरादिक औदयिकभावथी आत्मा असंख्यात प्रदेश, चेतनालक्षण ज्ञानादि अनंतगुण पर्याय सहित अरूपी भिन्न एटले आत्मा अरूपी, शरीर रूपी, आत्मा सहज अकृत्रिम, शरीर

संयोगी कृत्रिम, ते माटे कर्मयोगे शरीरादि मध्ये रह्यो, पण भिन्न छे, एहवो भेदज्ञानवंत, सम्कित गुणाठाणाथी मांडी क्षीणमोह गुणठाणाना चरम समय पर्यंत अंतरात्मा जाणवो, तथा ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय, अने अंतराय, ए चार कर्म क्षय गयां, केवलज्ञानी ते सयोगी अने अयोगी केवली तथा अष्टकर्ममुक्त सिद्धात्मा, ते परमात्मा, ते परमात्मा जाणवा, एटले श्री अजितनाथ अरिहंत एवंभूतनये परमात्मा छे, प्रभु छे, सर्व सिद्ध वस्तुगते पोताना गुणपर्यायरूप संपदाना प्रभु छे, कोई द्रव्य, अन्यद्रव्यनुं स्वामी होयज नहीं, ज्यांसुधी जे द्रव्यना चिंतनमांहे पण परद्रव्यनुं स्वामिपणुं छे, त्यां सुधी ते द्रव्य शुद्ध नहीं, ते माटे श्री अजित अरि-

हंत पोताना स्वभावना प्रभु छे, अने उत्तम जीव पोताने कर्मवश पड्या मोहे मुंज्या जाणी, पोताने रंक समान गणे, अने अ-मोही स्वाधीन थया तेहने प्रभु कहे अने अमोहीने अवलंब्यां पोते स्वसंपदाना धणी थाय, माटे जेहना कारणपणाथी पोतानुं प्रभुत्व पामीयें, तेहने प्रभु कहीयें स्तवीयें, जगत्मांहे पुद्गलना संयोगें जे सुख कहेवाय छे, तेतो आरोपमात्र छे, एटले जाते सुख नथी ॥ उक्तं च विशेषावश्यके ॥ जत्तोच्चिय पच्चक्ख. सोम्म सुहं नत्थिदुक्खमेवेदं ॥ त-प्पाडेया विभत्तं, तो पुन्नफलंति दुःखंति ॥ १ ॥ हे सौम्य ! 'प्रभासज्ञानावलोकनेन' ए सर्व दृश्यमान ते सुख नथी, जे कांइ ए संसार मांहे, स्रग्चंदनअंगना संयोगथी

उपनां जे सुख, ते सर्व दुःखज छे, विषयनी उत्सुकताथी उपनी जे अरति, तेहनो ए मतिकार छे एटले दुःख तेनेज तत्वना अजाणपणाथी, सुखदुःखरूप भेदे वेहेच्युं छे, पण जाते एकज दुःखरूप छे ॥ यथा ॥

॥ वसंततिलका वृत्तम् ॥

औत्सुक्यमात्रमवसादयति प्रतिष्ठा,
क्लिश्नाति लब्धपरिपालनवृत्तिरेव ॥
नातिश्रमापगमनाय यथा श्रमाय,
राज्यं स्वहस्त धृतदंडमिवातपत्रम् ॥१॥

जे पुण्यफल ते सर्व तत्वथी दुःखरूप छे ॥ उक्तं च ॥

॥ गाथा ॥

विसयसुहं डुःखं चिय,
डुरकपडिआरउ तिगछव ॥
तं सुहमुवयाराउ,
न उवयारो विणा तहं ॥१॥

विषयसुख ते तत्वथी दुःखज छे. जेम रोगोने काथपान छेदन दंभनादि चिकित्सानी परें हित भासे छे, पण दुःखपणुं छतुं छे, मात्र उपचारे सुख भासे छे, अने जे उपचार ते तथ्य पारमार्थिक सुख नहीं. सुख ते मुक्त आत्माने निरुपचरित स्वाभाविक निःप्रतिकाररूप आत्मिक आनंद छे, तेज सुख छे, तथा शातानो उदय, ते पण दुःख, अशातानो उदय ते पण दुःख, कारणके शाता अशाता ते कर्म छे, अने कर्मनो विपाक ते गुणरोधक छे, स्वगुणनो रोध तेहने सुख कोण कहे ? ॥ उक्तं च ॥ सायासायं दुःखं, सव्विरहंम्मि य सुहं जओ तेणं ॥ देहिंदिय सुदुख्खं, सुख्खं देहिंदियाभावो ॥ इति ॥ १ ॥ ते माटे संसार सर्व दुःखरूप छे, अने सर्व परभावना संगथी रहित, स्वाभाविक

जे आनंद, तेने परमानंद कहीयें, ते परमा-
नंद, श्री अजितनाथनुं स्वरूप छे, जीवादि
षड् द्रव्य छे, ते मध्ये पंचास्तिकाय ते पर-
मार्थे द्रव्य छे, तथा छट्ठो काळ ते उपचार
द्रव्य छे. ए चर्चा, विशेषावश्यक तथा धर्म-
संग्रहणी मध्येथी जोवी. ते मध्ये एक एक
द्रव्यने विषे अनंता गुण, अनंता पर्याय छे,
ते अनेकता जाणवी, अने एक द्रव्यने विषे
एक समये स्यान्नित्यं, स्यादनित्यं, स्यात्
एकं, स्यात् अनेकं, स्यात् अस्ति, स्यात्
नास्ति, स्यात् भिन्नं, स्यात् अभिन्नं, स्यात्
वक्तव्यं, स्यात् अवक्तव्यं. ए सर्व स्वभाव,
समकाळे वर्तता पामिये छीयें, एटला धर्म
समकाळे जे मांहे वरते, ते धर्मनी अनंत
प्रवृत्तिने स्याद्वाद कहिये ॥ स्यात् इति पदं
अनेकांतोद्योतकं एहवी स्याद्वादमयी जे आ-

त्मानी गुणपर्यायरूप सत्ता छे, तेना रसी कहेतां रसीआ छो, एटले स्याद्वादमयी आत्मसत्ता, तेहना भोगी छो, तथा अमल कहेतां कर्ममल रहित छो, अखंड केहतां कि-वारे खंड न पामो, अनुप कहेतां जेहनी उपमा नथी, एहवा प्रभु देखीने मने लाभ थयो ॥ ६ ॥

आरोपित सुख भ्रम टल्यो रे, भास्यो अव्याबाध ॥ समर्युं अ-भिलाषीपणुं रे, कर्त्ता साधन सा-ध्य ॥ अ० ॥ ७ ॥

अर्थः—एहवा प्रभुजी आत्मानंद भोगी, आत्मस्वरूप रमणी, तत्वविलासी तेमने जोइने मने अनादि कालनुं इंद्रिय सुखने

विषे जे सुख भासन थतुं ते आरोपितसुखभ्रम हतो. ते टल्यो, अने अव्याबाध, आत्मिक-आनंद सुख ते भास्युं. जिहां सुधी विषय सुख उपर सुखबुद्धि हती, तिहां सुधी विषय सुखनो अभिलाष हतो, ते हवे तो सर्व विषय रहित, अव्याबाध सुखी श्री प्रभुजी दीठा, तेथी ते भव्य जीवने पण सुख, ते अव्याबाध छे, एहवो निर्धार थयो, तेवारे अभिलाष पण अव्याबाध सुखनो थयो, माटे अभिलाषीपणुं समर्युं, तेवारे स्वरूपानुयायी थयो. एटला कालसुधी विषयसुखने अभिलाषें, आत्मा विषयसुखनो कर्त्ता हतो, ते जिवारे एहने अव्याबाध सुखनो अभिलाप थयो, तेवारे कर्त्ता पण अव्याबाध सुखनो थयो, एटले कर्त्तापणुं समर्युं, जे

जेहवा कार्यनो कर्त्ता थाय, ते साधन पण तेहवांज मेलवे, अने साध्य पण तेहीज होय, एटले आज सुधी साध्य, विषयसुखनुं हतुं, तेथी साधन पण विषयसुखनां मेलवतो हतो, हवे प्रभु श्री अजितनाथ निर्विकारी दीठा, तेवारे ते अव्याबाध सुख साध्य थयो, एटले साध्य साधन समर्युं ॥ ७ ॥

ग्राहकता स्वामित्वता रे, व्यापक भोक्ताभाव ॥ कारणता कारज-दशा रे, सकल ग्रह्युं निज भाव ॥ अ० ॥ ८ ॥

अर्थः—एटला काल सुधी ए जीव विषय सुखनो ग्राहक हतो, हवे शुद्ध अव्याबाध

सुखी परमेश्वर देखीने ए जीव, अव्याबाध सुखनो ग्राहक थयो, एटला काल सुधी भूलनो वाह्यो विषयसुखनां हेतु जे धन, स्त्री, वस्त्र, आहारादिक परभाव, तेनुं स्वामिपणुं करतो हतो, हवे ज्ञानादिक अनंत गुण संपदाना स्वामी श्री देवाधिदेव देखीने ए जीवने पण अनंत ज्ञानादिक स्वसंपदानुं स्वामिपणुं थयुं, एटले ग्राहकभाव तथा स्वामित्वभाव समर्यो. एटला काल सुधि ए आत्मा विषयादिक परभावमध्ये व्यापक हतो, ते हवे आत्मानंद मध्ये तथा तेना साधनमध्ये व्यापक थयो, तथा अनादि कालथी परभावनो भोक्ता हतो, हवे परमप्रभु स्वभावभोगी देखीने, ए पण स्वभावनो भोक्ता थयो, एटले व्यापकता तथा भोक्ता-

पणुं समर्युं. एटला काल सुधि भुलें पड्यो ए आत्मा, संसारमां आठ कर्मरूप उपाधिनुं उपादान कारण हतो, हवे शुद्ध स्वरूपी, निःकर्मा, तत्वदेव देखीने पोताना शुद्ध स्वरूपनुं उपादान कारण थयो, एटला काल सुधि ए आत्मा आठ कर्मरूप कार्यनो कर्त्ता हतो, हवे परमदेवनी श्रद्धा पामीने संवर-निर्ज्जरारूप कार्यनो कर्त्ता थयो, माटे हे परमेश्वर! हे जगदाधार! हे दीनबंधो! तुमारे अनुयायी मारी चेतना प्रवृत्ति, तथा कारण तथा कार्य इत्यादि बीजी पण अनंती आत्मशक्ति, ते सर्व स्मरवा लागी, एटले सर्व आत्मानी शक्तिए आत्मभाव ग्रह्यो, अने परभाव तजवा मांड्यो ॥ ८ ॥ इति अष्टम गाथार्थः ॥

श्रद्धा भासन रमणता रे, दानादिक परिणाम ॥ सकल थया सत्ता रसी रे, जिनवर दरिसण पाम ॥ अ० ॥ ए ॥

अर्थः—एटला काल सुधी औदयिक पुण्य प्रकृति तेनो विपाक जे शातावेदनी प्रमुख गुणरोधक तत्वविमुख तेना स्वाद, जीवने मीठा लागता हता, तेथी ते पुण्यना उदयने सुख मानतो हतो, ते हवे एवी श्रद्धा थइ जे अव्याबाध निःकर्म पद, तेहीज मारुं साध्य छे, तथा जे वस्तुनी यथार्थतानुं ज्ञान थयुं, ते भासन केतां जाणपणुं तेपण समयुं, अने रमण जे पुद्गलनां वर्णादिकमां हतुं, ते सर्व स्वरूपनुं रमण थयुं, तथा १ दान, २

लाभ, ३ भोग, ४ उपभोग, ५ वीर्य. ए पांचेनो क्षयोपशम ते, एटला काल सुधि दान पुद्गलनो हतो, लाभ पण पुद्गलनो मानतो हतो, तथा भोगपण पुद्गलनो, उपभोग पण संसारमां पुद्गलनो हतो, अने वीर्य पण बाल-वीर्य ते पुद्गल ग्रहण बंधन प्रमुख आठ कर-णपणे प्रवर्ततो हतो, ते सर्व सत्तापणें पोताना जीवद्रव्यना मूलधर्म ज्ञानादि अनंत गुणपर्याय रूप तेना रसीया थया, एटले पुद्गलानुयायिता तजीने, शुद्ध स्वरूपानुयायि थया, एटले स्वसत्ता ते माहरो धर्म, एहवी श्रद्धा थइ, अने स्वगुण जे पोतानो भावनिक्षेपो ते सार छे, एहवुं भासन थयुं, तथा रमण ते, आत्मधर्म क्षमादिकमां थयुं, अने सहकाररूप ते दानगुण, गुणप्रागभाव रूप ते लाभ, भोग

स्वगुणनो थयो, उपभोग स्वपर्यायनो, वीर्य ते पंडित वीर्य थइने, संवर हेतु निर्ज्जरारूप थयो. ते सर्व हे वीतरागदेव ! हे जिनवर ! तमारुं दर्शन पामीने एटले प्रभु दीठे माहारा एटला गुण समर्या ॥९॥ इति नवम गाथार्थः॥

तेणें निर्यामक माहणो रे, वैद्य गोप आधार ॥ देवचंद्र सुख सागरु रे, भाव धर्म दातार ॥ अ० ॥१०॥

अर्थः-तेमाटे हे प्रभु ! तमे संसारसमुद्रनो पार पमाडनार एवुं जे चारित्रधर्मरूप झहाज, तेने चलाववाने निर्यामक समान छो तथा तत्वधर्मपणे पोतें परिणम्या, तेथी द्रव्य हिंसा तथा भावहिंसाथी रहित छो, अने परमअहिंसक धर्मना उपदेशक छो, माटे

माहण छो, तथा आत्मअशुद्धतारूप भावरोग तेनी सम्यक ज्ञान, दर्शन, चारित्ररूप भाव-चिकित्सा, तेने देखाडवाना वैद्य छो, तथा भावथी ज्ञानादिगुण अने द्रव्यथी छकायरूप जीवनी रक्षा करवाने परम गोप छो, वळी भव अटवीमांहे भमता प्राणीयोने हे प्रभु तमे आधार छो, सर्वदेवमांहे चंद्रमा समान पोताना सुखना सागर एहवा हे श्री अजि-तनाथ परमेश्वर ! तमे भावधम जीवद्रव्यना विषे व्यापकपणे रह्या छो. सम्यग्ज्ञान, स-म्यग्दर्शन, सम्यग्चारित्ररूप भावधर्म तेना दातार छो एटले हे प्रभु ! तुम दीठां भाव-धर्म सांभरे, ( याद आवे ) तमे भावधर्मना उपदेशक छो. सर्व जीवने भाव धर्मना दातार छो ॥१०॥ इति श्री अजितजिनस्तवनम् ॥

## ॥ अथ तृतीय श्रीसंभवजिन स्तवन प्रारंभः ॥

॥ धणरा ढोला ॥ ए देशी ॥

श्रीसंभवजिनराजजी रे, ताहरुं अकल स्वरूप ॥ जिनवर पूजो ॥ स्वपरप्रकाशक दिनमणि रे, समता रसनो भूप ॥ जि० ॥ १ ॥ पूजो पूजो रे भविकजिन पूजो, हांरे प्रभु पूज्यां परमानन्द ॥ जि० ॥

अर्थः—हवे श्री संभवनाथ जिनराज कहेतां श्रुतकेवली, अवधिज्ञानी, मनःपर्यवज्ञानी प्रमुख मांहे राजा समान, एवा हे संभव प्रभु ! ताहरुं कहेतां तमारुं अकल कहेतां कोइथी कळाय

नहीं एहवुं स्वरूप छे, एहवा जिनवरने पूजो. अहो भव्यो ! तमे एहवा परम पूज्य परमेश्वरने पूजो. वली प्रभु केहवा छे ? जे स्व केतां पोतानो धर्म अने पर केतां धर्मास्तिकायादिकनो धर्म तेने प्रकाशवाने दिनमणि केहेतां सूर्य जेवा छे, तथा समता जे सर्वने विषे राग द्वेष रहितपणुं, तेहना भूप केतां राजा छे, एहवा तत्वप्रकाशक, अरिहंतने पूजो, वारंवार पूजो. भविक केतां मोक्षयोग मोक्षरुचि जीव, तमे पूजो, ए स्वरूपभोगी, निर्मलानंदमयी, अज, अविनाशी, अक्षय, अणाहारी, अशरीरि, अनंतज्ञानमयि, अनंतदर्शनमयि, शुद्धस्वरूपी, देवतत्वने पूज्यां परमानंद थाय. जे पुद्गलयोगथी सुख उपजे, ते उपचारसुख माटे ते परमानंद नहीं, अने

जे आत्मानुं सहज अविनाशी, अप्रयासी, स्वरूपनुं सुख अव्याबाधरूप तेने परमानंद कहियें, ते सुख, अरिहंत देवने पूज्यां पामीजें. यद्यपि अरिहंत देव, कोइ अन्य जीवना अव्याबाधादि गुणना कर्त्ता नथी, पण जे भव्यजीव, पोतानुं शुद्धपारिणामिक परमसिद्धता स्वरूप साध्य करीने वीतराग परमात्माने सेवे, अवलंबे, ते नियमे पोतानुं तत्व प्रगट करे, निर्यामिक कारण माटे, एहथी स्वरूप प्रगट थाय एमज धारवुं ॥ १ ॥

अविसंवाद निमित्त छो रे, जगत जंतु सुखकाज ॥ जि० ॥ हेतु सत्य बहुमानथी रे, जिन सेव्यां शिव

राज ॥ जि० ॥ २ ॥

अर्थः—वली हे प्रभुजी! तमें अविसंवादि केतां विसंवाद जे निर्धार नहीं ते, अने तमें निश्चय निर्धार कार्यने करो, माटे अविसंवाद निमित्त कारण छो ॥ निमित्तं लक्षणं "कार्याभिन्नत्वे सति कर्तृत्वाऽव्यापारवत्त्वे सति हेतुर्निमित्तमिति" ॥ माटे हे प्रभु! तुमे जगत्‌ना जीव तेना आत्मिक सुखरूप कार्य निपजाववाने प्रधान निमित्त छोजी, माटे हेतु केतां कारण ते सत्य केतां साचुं तेने बहुमान केतां माहामोटमपणे सेवतां जे मुज सरिखो मोहवश पड्यो तृष्णायें ग्रस्यो, पुद्गलनो रागी, असंयममयी, मिथ्यात्वें भूल्यो भाव, ते निराधार अशरण एहवो हुं, तेने श्रीतीर्थंकर देव, परम तत्वमय, त्रैलोक्योपकारी, जेना

नामथी परम कल्याण थाय, एहवा परमेश्वरनो योग मल्यो, माटे मारे ए वेला, ए घडी, धन्य. एम असंख्यात प्रदेशे निःकर्मा, निःसंगी, स्वरूपभोगी देवतत्वनुं बहुमान करतो थको जे जिन केतां वितरागने सेवे, ते जीव, परम कल्याणमयी पोते थाय. इहां सत्य पद बेने जोडवुं, हेतु सत्य ते अरिहंत देव आपणा मोक्षरुप कार्यना हेतु छे, तेनुं सत्य केतां साचुं बहुमान करवुं, एटले इह लोक, परलोक, इंद्रिय सुखनी आशंसा टालीने अद्भुत वर्ण, गंध, संस्थानातिशय, वचनातिशय, प्रतिहार्य प्रमुख सर्व शुद्ध बहुमान कारण माटे बहुमान करवा योग्य छे. ते द्रव्यबहुमान पण जे अरिहंतना शुद्धज्ञानादि गुण अनंतानुं सकल पुद्गलातीतपणानुं परम अरूपी अतीं-

द्रियपणानुं बहुमान ते सत्यबहुमान कहिए. एटले जिनशासनमध्ये १ नाम, २ थापना, ३ द्रव्य, ए त्रण निक्षेपा ते कारण छे. अने चोथो भावनिक्षेपो, ते कार्यवस्तु छे, माटे जिहांसुधी प्रभुना अतिशयादिकना योग विकल्प तिहां सुधी द्रव्यबहुमान छे, अने जे दर्शनगुणे प्रभुतानुं भासन थयाथी तत्वप्राग्भावनुं जे बहुमान; ते भावबहुमान कहियें. अने नामादिक त्रण निक्षेपा ते भावना कर्त्ता छे, अथवा भावाभिलाषी छे, तो ते पण सत्यबहुमान जाणवुं. ते सत्यबहुमानथी जे जिनसेवना तेज प्रभुनी आज्ञायें परभाव त्याग स्वभाव ग्रहण करतां शिवनिरुपद्रव जे सिद्धपणुं, ते राज पामियें. एटले सांसारिक शिव ते उपचारी अल्पकाली अने मान्यतारूप छे,

माटे जे निःकर्मापणे सर्वस्वरूप प्राग्भाव, ते निरुपचरित, अविनाशी शिव कहियें ॥२॥ इति द्वितीय गाथार्थः

**उपादान आतम सही रे. पुष्टा-लंबन देव ॥ जि० ॥ उपादान का-रणपणे रे, प्रगट करे प्रभु सेव ॥ जि० ॥ ३ ॥**

अर्थः-हवे आत्मनिष्पत्तिविषे उपादान कारण तो मूल छे; तो पण निमित्त कारण विशेष छे, ते देखाडे छे. जे कारण, तेज कार्यपणे अभेदें परिणमे ते उपादान कारण जाणवुं अने जे कर्त्ता ना व्यापारें कार्यने निपजाववा सहकारी थाय तेने निमित्त कारण कहियें. ए निमित्तकारण, ते कार्यथी

भिन्न होय. इहां कोइ पूछे जे उपादान कारणमां तथा निमित्तकारणमां जे कारण धर्म छे, ते वस्तुमां छतो पर्याय छे के अछतो उपजे छे ? तेने उत्तर कहे छे. जे कारण पर्याय वस्तुधर्मे होय तो सिद्ध भगवान्मां पण उपादान कारण पाम्यो जोइयें ? तेतो नथी देखातुं, केम जे सिद्धमां कारणपणुं होय तो कांहीं कार्यपण निपजाव्युं जोइयें ते कार्य तो संपूर्ण निपनुं छे तथा निगोदावस्था विषे पण उपादान कारण मानवुं पडे, ते पण संभवतुं नथी, केम जे निगोदावस्थामां उपादान कारण मानियें, तो आत्मसिद्धिरूप कार्य पण थवुं जोइयें. ते केम ? जे कारण, ते नियमा कार्य करे, अने कारणकाळ, कार्यकाळ, ते नियमा अभेद छे, ते विशेषावश्यकमां मति-

ज्ञानाधिकारथी जोइ लेजो. ते माटे कारण पर्याय ते उत्पन्न छे, ते कार्य संपूर्ण थये कारणतानो अभाव छे, अने जेनी सादि होय तेनोज अंत थाय, माटे कारण पर्याय ते सादि सांत छे, इहां कोई कहेशे जे उत्पन्नपर्याय ते केवारें उपनो ? त्यां कहे छे, के जे वारें कर्त्ता कार्यरुचि थाय, तेवारे कारणता उपजे, एटले भव्य तथा अभव्य सर्व जीव संपूर्ण सिद्धताना उपादान छे, पण सर्वे सिद्धता निपजावता नथी, श्या माटे ? जे कारणपणुं नथी. जो कारणपणुं प्रगटे, तो कार्य निपजे, माटे सर्व आत्मा पोतपोताना गुणप्राग्भावरूप सिद्धता कार्यना उपादान अवश्य छे. पण श्री जिनवरदेव शुद्ध तत्त्वनें अवलंबनें कारणता निपजावे, माटे पुष्ट कहेतां नियामकी मोटुं

आलंबन अरिहंत देव छे, जे माटे सालंबन विना आत्मा अनादि दोषथी निवृत्ति तत्वने आश्री शके नहिं, माटे अरिहंत देवनो तीर्थंकर नामकर्मनो विपाक, तेहथी उपनां समवसरणादि जे आश्चर्य, तेने आलंब्यां संसारी जीव पोतानो आत्मधर्म नजीक करे, तो जगत् जीवना आधार श्री तीर्थंकरनी स्वरूपसंपदाने आलंब्यां थकां आत्मधर्म अवश्य निपजे, माटे अरिहंत देव, ते भव्य जीवने पोतानी शुद्धसत्ता प्रागभावें करतां मुख्य आलंबन छे. हवे श्रीवीतरागदेव पुष्टआलंबन केवी रीते छे? तेनुं कारण कहे छे, जे आत्माने विषे उपादानपणुं अनादिनुं छे पण ते आत्मसिद्धत रूप कार्यने करतुं नथी, शा माटे? जे उपादान कारणपणुं सुधर्युं नथी,

ते श्री जिनवर वीतरागनी जे सेवना, ते उपादान कारणपणुं प्रगट करे छे, एटले अरिहंत देवनी द्रव्य भावथी भक्ति करतां संसारी आत्मा, मोक्षनो साधक थाय, ते माटे श्री जगद्दयाल, कर्मरोगना भाववैद्य, मिथ्यात्वरूप अंधकार टालवाने सूर्यसमान, ममकाररहित, एवा गुणी प्रभुने सेवतां आत्मा मोक्षरूपकार्य निपजाववानुं कारणपणुं प्रगट करे, तेथी प्रभुजी पुष्टालंबन जाणवा ॥ ३ ॥ इति तृतिय गाथार्थः

कार्यगुण कारणपणे रे, कारण कार्य अनूप ॥ जि० ॥ सकल सिद्धता ताहरी रे, माहरे साधन रूप ॥ जि० ॥ ४ ॥

अर्थः—हवे अनादि मिथ्यादृष्टि जीवने शरीर, इंद्रिय, विषय, कषाय रूप कार्य करतां अनंतो काल गयो, ते जेवारे सम्यग्‌दृष्टि गुण प्रगट्या, तेवारें रत्नत्रयी जे सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान, सम्यक् चारित्र, ते पोतानुं कार्य जाण्युं. पछी श्री अरिहंत सेवना आगमश्रवणादि कारण सेवीने रत्नत्रयीनो क्षयोपशम प्रगट कर्यो, एटले यथार्थ तत्वश्रद्धान, तत्वभासन तत्वरमण, परभावतत्व त्यागरूप भेद रत्नत्रयी जेटली प्रगटी, ते पहेलां कार्यगुणे थयी, पछी तेज, क्षायिक अभेद रत्नत्रयीरूप स्वकार्य करवाने कारणपणे प्रवर्त्तावे, तेवारें जे कार्यपणे हतुं, ते कारणरूप थाय. पछी तेहीज कारणरूप भेद रत्नत्रयी ते क्षायिक भावरूप कार्यरूपे परिणमे, माटे जे कारण, तेहीज कार्य थाय. ए उपादान कारण कार्यरूप पद्धति

कही, हवे निमित्तपणे कहे छे. हे प्रभुजी! तमारुं शुद्ध स्वरूप तेहीज तमारो कार्यगुण छे, पण ते भव्य मोक्षरुचि जीवने कारणपणे छे, केमके जे उपादानने तमारा शुद्ध गुण तेने कारणपणे अवलंबी तमारा जेवी सत्ता प्रगट करवी, ते कार्य छे, एटले जे कारण तेहीज करवाने संकल्पें कार्य छे, माटे हे प्रभुजी! तुमारी सकल केतां संपूर्ण सिद्धता सकल प्रदेशें निरावरणता सर्वस्वधर्म प्राग्भावता ते माहरे साधनरूप छे, एटले तुमारी शुद्धतानु जे साधन छे, तेने जेवारें माहरो आत्मा प्रभुजीनी परम प्रभुतारूप संपदाने अवलंबे, तेवारें परभावत्यागी थइने, स्वरूपावलंबी थाय, तेवारें माहारी सिद्धता निपजे, माटे तमारी सि॒द्धता ते माहारे साधनरूप छे,

तेथी हुं जे माहरुं स्वरूप प्रगट करुं, ते उप-
कार तमारो छे, तेथी माहारे तो आधार
त्राण, शरण, सर्व हे देव ! तमे छो ॥ ४ ॥
इति चतुर्थ गाथार्थः

एक वार प्रभुवंदनारे, आगम
रीते थाय ॥ जी० कारण सत्यें का-
र्यनी रे, सिद्धी प्रतीत कराय ॥
जी० ॥ ५ ॥

अर्थः-माटे श्री अरिहंत अनंतज्ञानी, अनंतदर्शनी, शुद्ध चारित्री, अविकारी, अकषायी, स्वरूपभोगी, स्वरूप रमणी, स्वरूप विलासी, त्रैलोक्यपूज्य, त्रैलोक्य उपकारी, चालता भावसूर्य, कर्मरोगना महावैद्य परमे-

श्वर, परमोपकारी, तेने एकवार पण जे रीते आगम कहेतां सिद्धांतमां कह्युं छे, ते रीते जो वंदन थाय एटले अनुष्ठान वर्जीने गुण बहु मानें अद्भुतता, आश्चर्यता, तद्विरह कांतारतायें जो थाय, तो माहारुं मोक्षरूप कार्य निपजे, एहवी प्रतीत कराय, शा माटे ? जे कारणसत्यें कहेतां छते कारणें अथवा कारण सत्यें कार्यनी सिद्धि एटले निष्पत्तिनी प्रतीत कराय, अने कार्य पण निपजे, एटले श्री प्रभु परमात्माने विधियें वंदना करतां उपादान जे आत्मा, ते गुणानुयायि थयो तो निमित्त तथा उपादान बेहु कारण साचां मल्याथकी कार्य पण साचुं निपजे, जेम स्त्री, धन, विषयादिक अशुद्ध निमित्त मले ते वारे आत्मा अशुद्ध उपादानी थाय, तेथी संसार

अशुद्धता रुप, कार्य निपजे छे, तो श्री वीतराग शुद्ध निमित्त मलेथी उपादान जे आत्मा ते शुद्ध परिणामी थाय तेथी शुद्ध सिद्धतारूप कार्य निपजे, अनादिकाल संसारमां भमतां न आव्युं एहवुं अरिहंत बहुमान ते जो एकवार आवे, तो कार्य निपजवानी प्रतीति थाय ॥

इति पंचम गाथार्थः

प्रभुपणे प्रभु ओलखी रे; अमल विमल गुणगेह ॥ जी० ॥ साध्यदृष्टि साधकपणेरे; वंदे धन्य नर तेह ॥ जी० ॥ ६ ॥

अर्थः—हवे शुद्ध सत्ता परिणामिपणे संसार तथा परजीवनी सिद्धिना अकर्त्ता

अने सेव्यां सिद्धि प्रगटे, वळी अमल कहेतां राग द्वेषादि आवरणादि मलथी शून्य, विमल कहेतां भाव उज्ज्वलतावंत, गुणगेह कहेतां ज्ञानादि गुणना घर, एवी रीतें प्रभुनुं जे रूप छे, तेने ओलखीने साध्यदृष्टि एटले पोतानो आत्मा परमानंद रूप छे, तेनी सव संपदा प्रगटाववा रूप साध्य नजरमां राखीने एटले तत्त्वकार्य आलंबनी थइने साधकपणे कहेतां पोते साधक थइने, जे पोताना ज्ञानादिक गुण क्षयोपशमी छे, ते सर्व गुण निर्मल करवारूप कार्य करवापणे प्रवर्त्तावतां जे शुद्धानंदी, परम ज्ञानी, निर्मोही देवने वांदे नमस्कार करे, ते नर धन्य, कृतपुण्य जाणवा ॥ उक्तंच ॥

॥ गाथा ॥

जे पुरस तिलोय नाहो,
ज्ञत्तिब्भरपूरिएण हियेण ॥
वंदंति नमंसंति,
ते धन्ना ते कयन्नाय ॥ ६ ॥

इति षष्ठ गाथार्थः

जन्म कृतारथ तेहनो रे, दि-
वस सफल पण तास ॥ जि० ॥
जगत शरण जिन चरणने रे, वंदे
धरीय उल्लास ॥ जि० ॥ ७ ॥

अर्थः—ते जीवनो जन्म कृतार्थ जाणवो वली ते दिवस पण तेहवोज सफल जाणवो जगत्‌ना जीव मोहें मुज्याने, भव अटवी मध्ये पड्याने, मिथ्यात्वें लुंटाताने, परम शरण त्राण आधार भूत एहवा श्री जिन

कहेतां वित रागना चरणने जे उल्लास कहेतां हर्ष धरीने वंदे कहेतां वांदे, तेनो जन्म कृतार्थ ॥ ७ ॥ इति सप्तम गाथार्थः

निजसत्ता निज भावथी रे,
गुण अनंतनुंठाण ॥ जि ॥ देवचंद्र
जिनराजजी रे, शुद्ध सिद्ध सुख खाण
॥ जि ॥ ८ ॥

अर्थः—ते प्रभु निज कहेतां पोतानी सत्ता अनंतगुण पर्यायरूप ते निज भावथी कहेतां पोताने भाव स्वभावथी थया छे, एहवा जे गुणज्ञानादिक अनंत तेनुं ठाण कहेतां ठेकाणुं छे. सर्व देवमां चंद्रमा समान जिनराज, ते कहेवा छे ? शुद्ध सिद्ध कहेतां निष्पन्न गुणनी खाण छे । ८ ॥ इति संभव जिन स्तवनम् ॥ ३ ॥ इति अष्टम गाथार्थः

## ॥ अथ चतुर्थ श्री अभिनंदन जिन स्तवनं ॥

॥ ब्रह्मचर्यपद पूजीये ॥ ए देशी ॥

क्युं जाणुं क्युं बनी आवशे,
अभिनंदन रस रीति हो मित्त ॥
पुद्गल अनुभव त्यागथी, करवी
जसु परतीत हो मित्त ॥क्युं०॥१॥

अर्थः-हवे श्री आभिनंदन प्रभुनी स्तुति कहे छे. कोइ भव्य जीवने श्री वीतराग-देवथी एकत्वपणे मळवानुं मन थयुं, पण प्रभुजीने मळवानी शक्ति पोतामां अण देखतो विचारे छे, जे एहवा परमोत्कृष्ट

देवतत्वथी केम मिळाय? तेनो विरहवंत थको बोले छे. जे ए प्रभुजीथी शुं जाणीये केम बनी आवशे? ते परम वल्लभथी मळवानुं मन छे, पण मलवुं दुर्लभ देखीने बोले छे, जे हे प्रभु! श्री आभिनंदन देव! तुमथी म्हारे शुं जाणीयें केम बनी आवशे! अभिनंदन कहेतां संवर राजाना पुत्र, सिद्धार्थ राणीनी कुक्षियें (उत्पन्न,) गर्भे आव्याथी ज्हां सुधी गर्भे रह्या, त्हां सुधी नित्य इंद्रे आवीने सुखपृच्छा पुछी, तेथी अभिनंदन एवुं नाम थयुं. अथवा अति समस्तपणे आनंदमयि तेथी आभिनंदन नाम स्थाप्युं. ते प्रभुथी रस कहेतां रसीली एकत्वता (रीति) केम बने? पुद्गलना वर्ण, गंध, रस, स्पर्शनो अनुभव कहेतां भोगववुं, तेना त्यागथी करवी, जेनी प्रतीत एटले सर्व पुद्गलनो अनादिनो

अशुद्धभोग तजीने ज्यारे जे वर्त्ते, त्यारे तेने प्रभुथी मळि शकवानी प्रतीति थाय, पण पुद्गलभोगीने ते शुद्ध तत्वथी एकत्वता न थाय, जे स्वरूपभोगी थयो, तेने ए रसरीत बनी, एवी प्रतीत थाय, माटे पोताना आत्माने कहे छे, जे हे मित्र! ए कार्य केम बनशे? ते तुं विचारी जो ॥ १ ॥ इति प्रथमगाथार्थः ॥

**परमातम परमेसरू, वस्तुगते ते अलिप्त हो मित्त॥ द्रव्ये द्रव्यमले नहिं, भावे ते अन्य अव्यास हो मित्त ॥ क्युं० ॥२॥**

अर्थः—प्रभु तो निःकर्मा केवली परमात्मा छे, तथा परम कहेतां उत्कृष्टा ईश्वर छे, एटले असंख्यात प्रदेशें पारिणामिकपणे रह्या जे अ-

नंता गुण पर्याय, तेना ईश्वर अथवा सर्वप्रकारें स्वाधीन निर्दोषी तेथी परमेश्वर, वळी केवा छे? जे वस्तुगतें कहेतां मूळवस्तुधर्में आलिप्त छे, एटले सर्व जीव द्रव्य शुद्धसंग्रहनयें आलिप्त छे, पण कोइ अन्यद्रव्य तथा रागादि अशुद्ध परिणतिथी लेपाय नहीं, अने अभिनंदन प्रभु तो सर्वनयें विशुद्ध थया छे, टंकोत्किरणन्यायें प्रागभावधर्मी थया छे, ते सर्वरीतें परथी अलिप्त छे, एटले जे लेपाय, ते मळे, पण जे लेपाय नहीं, ते केम मळे? हवे छ द्रव्य छे, तेनां नाम कहे छे. १ असंख्यात प्रदेशी, लोक प्रमाण, अरूपी, अक्रिय, अचळ, अचेतन, तथा जीव अने पुद्गळ ए बे द्रव्य, गतिपरिणामी छे तेने गतिनो सहायि थाय, ते धर्मास्तिकाय द्रव्य जाणवुं. २ असंख्यात प्रदेशी, लोकप्रमाण

अरूपी, अचेतन, अक्रिय स्थितिपरिणामी, एटले जे जीव पुद्गलने स्थिर रहेवानुं सहाय आपे, ते अधर्मास्तिकाय, ३ अनंतप्रदेशी, लोकालोकप्रमाण, अरूपी, अचेतन, अक्रिय, अने सर्व द्रव्यना पोते अवगाहक परिणामी, तेने अवगाहनानुं हेतु, ते आकाशास्तिकायद्रव्य, ४ पुद्गलपरमाणु, अनंत, रूपी, अचेतन, सक्रिय, पूरणगलनधर्मप्रायि, १ वर्ण, २ गंध, ३ रस, ४ स्पर्शयुक्त, एक एक परमाणु, एवा अनंत परमाणु ते सर्वलोकमां जाणवा, पण लोकथी बाहेर नहीं, ते पुद्गलास्तिकायद्रव्य, ५ चेतनालक्षण, १ ज्ञान, २ दर्शन, ३ चारित्र, ४ तप, ५ वीर्य, ६ उपयोग, लक्षण तथा अरूपी, स्वभावनो कर्त्ता, असंख्यात प्रदेशी, एवो एक जीवद्रव्य, तेवा अनंता जीव, ते

जीवास्तिकायद्रव्य ए पांच द्रव्यने प्रदेशनो सबंध छे, माटे अस्तिकाय कहिये. ६ तथा छट्टुं अप्रदेशी, अरूपी, वर्त्तनालक्षण, निश्चयनयथी पंचास्तिकायनी वर्त्तनारूप अने व्यवहारे उपचारथी ज्योतिश्चक्रनी गतीए ओलखाय, ते कालद्रव्य. ए छ द्रव्यनां नाम कह्यां. तेमां १ धर्मास्तिकाय, २ अधर्मास्तिकाय, ३ आकाशास्तिकाय, ४ काल, ए चार द्रव्य अपरिणामी कोइथी मिले नहीं. अने १ जीव, २ पुद्गल, ए बे द्रव्य परिणामी, एटले अन्यद्रव्यथी मिले, तेमांहे पुद्गलद्रव्य मांहोमांहे खंधपणुं पामे, अने परानुयायि हेतुपणे परिणम्यो जे जीव, तेने प्रदेशें कर्मपणे वलगे, पण एक जीवथी बीजो जीव मले नहीं, अने पुद्गल तो संसारी जीवथी मले, पण म्हारा अ-

भिनंदन परमेश्वर तो सिद्ध थया छे, मिथ्यात्वादि हेतुथी मुक्त थया छे, तेने पुद्गल लागी शके नहीं, ए स्वरूप छे, माटे द्रव्यथी द्रव्य मले नहीं, एटले शुद्ध जीव ते अशुद्ध जीवथी तेमज पुद्गलथी मले नहीं. बीजुं पण मूलनयें कोइ द्रव्य कोइ द्रव्यथी मले नहीं, ते द्रव्यें तो मलवुं नथी, तथापि कदाचित् भावें मले तोपण भाव केहतां वस्तुनी मूल परिणति प्रवृत्तिरूप तेथी अन्यजीव तथा अन्य पुद्गलनुं अव्याप्तपणुं छे, एटले व्यापे नहीं, जे परव्यापकता ते उपाधिथी छे, अने प्रभु श्री अभिनंदन देवनो भावधर्म ते परम निर्मल थयो छे, सर्वस्वभावने अनुयायि थयो छे, एटले कर्ता, भोक्ता, ग्राहकता, व्यापकता, आधारता, रमणता, अवस्थानता, इत्यादि सर्व

स्वस्वरूपपणे निपनां छे, ते केम अन्यद्रव्यमां व्यापे ? तेथी प्रभुजीनां १ द्रव्य, २ क्षेत्र, ३ काल, ४ भाव, सर्व शुद्धधर्मी छे, ए द्रव्यादि चारनुं स्वरूप लखे छे.

॥ गाथा ॥

दव्वं गुणसमुदाउ,
खित्तं उगाह वट्टणा कालो ॥
गुणपज्जाय पवत्तो,
भावो निअ वत्थु धम्मो सो ॥१॥

इति आगमवचनात् ॥ गुणपर्यायनो समुदाय ते द्रव्य, तथा प्रदेशावगाहना ते क्षेत्र, अने उत्पाद, व्ययनी वर्तना ते काल, तथा द्रव्यना पोतपोताना गुणपर्यायनी प्रवर्त्ति ते भाव, एम द्रव्यादि चारनी परिणति ते वस्तु-

धर्मे छे, माटे ते प्रभु केम मले ? ॥ २ ॥
इति द्वितीय गाथार्थः ॥

**शुद्ध सरूप सनातनो, निर्मल जे निस्संग हो मित्त ॥ आत्म विभूति परिणम्यो, न करे ते परसंग हो मित्त ॥ क्युं० ॥ ३ ॥**

अर्थः—वली श्रीवीतरागदेव केवा छे ? शुद्ध कहेतां सर्वदोषरहित, एवुं स्वरूप जेनुं सनातनो कहेतां नित्य छे, यद्यपि पर्यायें अनित्य छे, पण इहां कूटस्थ नित्यतायें नित्य छे, निर्मल, ज्ञानावरणादि मल रहित, वली निस्संग कहेतां सर्व संग रहित, जेनो असंख्यातप्रदेशमध्ये द्रव्यथी कोइ परमाणु मात्र रह्यो नथी, अने भावथी जेनी

परिणतिमां रागी द्वेषीपणे कांइ अन्यभाव नथी, एवो निस्संग छे ते परमेश्वर, वली आत्मविभुति कहेतां पोतानी संपदा शुद्धस्याद्वादरूप, अनंत, अज, अविनाशी, अखंड, स्वधर्मे परिणम्यो छे, एवो जे परमेश्वर ते पर केहेतां वीजा द्रव्यनो संग एटले संबंध करे नहीं, एटले सत्तायें जीवद्रव्य परसंगी नथी, विभावे परसंगी थयो छे, पण जे सम्यक् रत्नत्रयि रूप साधनपणे परिणमीने शुद्धरूपे थया ते कोइ रीते परनो संग करे नहीं, तो एवा प्रभुथी केम मलाशे ? माटे हे प्रभु ! तुमने मल्या विना मुजने सुख केम थासे ? ॥ ३ ॥ इति तृतीय गाथार्थः ॥

**पण जाणुं आगम बलें, मिलवुं तुम प्रभु साथ हो मित्त ॥ प्रभु**

# तो स्वसंपत्तिमयी, शुद्ध स्वरूपनो नाथ हो मित्त ॥ क्युं० ॥ ४ ॥

अर्थः—एम विचारतां उपयोग आव्यो ते कहे छे, के पणजाणुं आगमबलें कहेतां जे आगममां कह्युं, ते गुरुमुखें सांभल्युं, तेना बलथी जाणुं छुं, जे हे भव्यजीव ! प्रभुश्री वीतराग साथें आपणे मलवुं छे, जेने गरज होय, ते मले, एटले पोतानी संपदा प्रगट करवानो रुचिवंत मले, प्रभु तो स्व कहेतां पोतानी संपत्ति जे स्वक्षेत्र असंख्यात स्व प्रदेश विशे व्यापकपणे रह्या जे अनंतज्ञानादि गुण, ते संपदामयि छे, शुद्ध स्वरूपनो नाथ कहेतां धणी छे, माटे निष्पन्नपरमानंदभोगी शुद्ध स्वरूपी ते कोइथी मले नहीं ॥ ४ ॥ इति चतुर्थ गाथार्थः ॥

परपरिणामिकता अछे, जे तुझ पुद्गलयोग हो मित्त ॥ जड चल जगनी एंठनो, न घटे तुझने भोग हो मित्त ॥ क्युं० ॥५॥

अर्थः—हवे कोइ पुछशे जे सर्वद्रव्यमां परथी मलवानी शक्ति नथी, तो साधकनुं जीवद्रव्य पण, वस्तुधर्मे शुद्ध छे, तेने प्रभुथी मलवुं, ते पण तेनी सत्तामां तो नथी, तो हवे केवी रीतें मिले ? त्यां कहे छे जे अनादि अतीतकाल ए संसारी जीवनुं आत्मिक सुख सर्व आवराणुं अने भोगधर्म क्षयोपशमी छे, ते कांइक भोगव्यो जोइयें, ते स्वरूपने अण पामवे, पुद्गलना वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, जे अभोग्य छे, तेने भोगवतो थको परभोगी थयो, परप-

रिणामी थयो, ए परपरिणामिकतानी चाल ते अनादिनी टेव छे, एटले कर्त्ता परनो, भोक्ता परनो, रमण परने विशे, ग्राहक परनो, एम सर्व, परभावमयि थयो छे, इहां कोई पुछशे जे शुद्ध द्रव्यधर्मी, ते परपरिणामी केम थाय ? तेने कहे छे. जे पुद्गलना योगें पुद्गलावलंबी चेतना थइ एटले कहे छे जे हे जीव ! पुद्गलने योगें जे तारी परपरिणामिकता ते अनादिनी अशुद्धता विजातियपणे छे, दोषरूप छे, अने आत्माने सर्व (अछे) अघटित छे, केम जे पुद्ग-ल ते जड छे, तथा चल कहेतां विनाशी छे, जगत्नी एँठ छे, ते पुद्गल द्रव्य ध्रुव छे, अने पर्यायें अध्रुव छे, वर्णादि, खंधादि पर्याय सर्व पलटे छे, अने सर्व संसारी एकेका जीवे एकेको पुद्गलपरमाणु, तेने शरीर पणे,

भाषापणे, मनपणे, आहारपणे, अनंतीवार लई लइने मूक्यो छे, ते माटे ए पुद्गल ते सर्व जीवोनी एँठ छे अने जीवद्रव्य ते स्वरूपभोगी छे, माटे हे चेतन ! तने ए पुद्गलनो भोग घटतो नथी, केम जे हंस केवारे कचरामां चांच घाले नहीं ॥ ५ ॥ इति पंचम गाथार्थः ॥

**शुद्धनिमित्ती प्रभु ग्रह्यो, करी अशुद्ध पर हेय हो मित्त ॥ आत्मालंबी गुण लही, सहु साधकनो ध्येय हो मित्त ॥ क्युं० ॥६॥**

अर्थः—माटे परभोगी पणुं अशुद्ध निमित्त जे पुद्गलादि, तेने तजीने शुद्ध, निःकर्मा, पूर्णानंदरूप प्रभुने अवलंबवा, एटले ए आत्माने विशे परानुयायितापणुं छे, ते टाल-

वाने माटे प्रथम अशुद्धालंबन तजीने अरिहं-तालंबनी थवुं, तेथी शुद्ध निमित्ती जे निमित्त निर्यामकी कारण छे, ते प्रभुने भजो, सेवो, पण सर्व परवस्तु अशुद्ध ते हेय कहेतां तजवा-रूप करीने एटले सर्व परभाव त्याग करीने प्रभुने भजो. ते प्रभु केवा छे ? जे आत्मा-लंबी कहेतां सर्वपणे पोताना आत्माने अवलं-ब्या छे, एटले पोताना आत्माने विशेज तन्मय थया छे वली श्री वीतरागत्व केवुं छे ? सर्व-मोक्षने निपजावनारा साधक एहवा जे सम्य-ग्द्दष्ठि, देशविरति, सर्व विरति, श्रेणिना वासी, ध्याना रूढ जीवो तेने ध्येय छे, एटले सर्व आत्माने श्री सिद्ध परामात्मा ध्येय छे, ध्यान बे प्रकारनुं छे, एक सालंबन, बीजुं निरालंबन. तेमां जे अरिहंत सिद्धनुं तत्व स्वरूप अवलंबीने

ध्यान करवुं, ते सालंबन ध्यान छे तेणे श्री-अभिनंदन प्रभु सर्वने ध्यायवा के० ध्यान करवा योग्य छे ॥६॥ इति षष्ठ गाथार्थः ॥

जिम जिनवर आलंबनें, वधे सधे एक तान हो मित्त ॥ तेम तेम आत्मालंबनी, ग्रहे स्वरुप निदान हो मित्त ॥ क्युं० ॥ ७ ॥

अर्थः—इम करतां जेम जेम साधक जे आपणो जीव, ते श्री जिनवरदेवनी तत्व प्रभुताने आलंबने वधे, कहेतां सर्वक्षयोपशमी चेतना वीर्य रमण अरिहंतनी शुद्धतामां तन्मयपणे थाय, एकतान कहेतां एकत्वपणुं सधे निपजे, एटले सकलपरभावथी टलीने एक निष्पन्न परमात्माने स्वरूपे चेतना व्याप्त थाय, तेम तेम

ए साधक जीव, पोतानो आत्मा कार्यरूप तेह-
ना स्वरूपनें आलंबे, उपादानस्मरण चिंतन
ध्यानरूप थाय, तेवारे एक स्वरूपनुं निदान
कहेतां मूलकारण ग्रहे, अंगीकार करे ॥ इति
सप्तम् गाथार्थ ॥ ७ ॥

स्वस्वरूप एकत्वता, साधे पूर्णा-
नंद हो मित्त ॥ रमे भोगवे आत-
मा, रत्नत्रयी गुणवृंद हो मित्त ॥
क्युं० ॥ ८ ॥

अर्थः--ते जेवारे स्वस्वरूपएकाग्रता ज्ञान, दर्शन, चारित्ररूप ग्रहे, ते वारें परिणामिक परमतत्वने विशे एकत्वता शुद्धस्वरूपरमण, शुद्धस्वरूप भोगी थाय, तेथी सधे कहेतां निपजे, पूर्णानंद कहेतां संपूर्ण, आत्यंतिक, एकांतिक,

अनंतातिशय, अबाधक, केवलनिराबाध, स्वाधीन आत्मसुख निपजे, पछी ए आत्मा पोतानी रत्नत्रयी आदिक गुणवृंदने विशे रमे, ते नेज भोगवे, तन्मय, तद्विलासी स्वभावआनंदी थको रहे, सादि अनंतो काल, स्वपरिणामिक प्रगटपणे वर्त्ते ॥ ८ ॥ इति अष्टम गाथार्थः ॥

**अभिनंदन अवलंबनें, परमानंद विलास हो मित्त ॥ देवचंद प्रभु सेवना, करी अनुभव अभ्यास हो मित्त ॥ क्युं० ॥ ए ॥**

अर्थः—ए रीतें श्री आभिनंदन प्रभुने अवलंबनें परमानंदनो विलास थाय, सर्वदेवमां चंद्रमा समान छे अरिहंत देव, तेनी सेवना, अथवा स्तुतिकर्त्तानुं नाम पण देवचंद्र तेमाटे

पोताने संबोधनें हे देवचंद्रप्रभु! तमारी सेवना करे, पण अनुभवना अभ्यासथी एटले अनुभव युक्त करे. एहीज आत्मा निपजाववानुं परम कारण छे, माटे एहने सेवो, आदरो ॥ ९ ॥ इति नवम गाथार्थः ॥

## ॥ अथ पंचम श्री सुमतिजिन स्तवनं॥

॥ कडखानी देशी ॥

अहो श्री सुमति जिन शुद्धता ताहरी,स्वगुण पर्याय परिणामरामी ॥ नित्यता एकता अस्तिता इतर युत, भोग्यभोगी थको प्रभु अकामी ॥ अ० ॥ १ ॥

अर्थः—अहो इति आश्चर्ये, हे श्री सुमति जिन! पांचमा परमेश्वर! त्हारी शुद्धता आ-

श्वर्यरूप छे, ते शुद्धता केवी छे? स्व कहेतां पोताना गुण ज्ञानादिक तथा पर्याय ते १ द्रव्यपर्याय, २ गुणपर्याय, ३ द्रव्यव्यंजनपर्याय, ४ गुण व्यंजनपर्याय, ५ स्वभावपर्याय. त्यां स्वाभाविकधर्म ते गुण कहियें, अने क्रमभावि ते पर्याय कहियें, तथा श्री उत्तराध्ययन सूत्रें.

॥ गाथा ॥

गुणाणमासओ दव्वं,
एगदव्वंसिया गुणा ॥
लख्कणं पज्जवाणं तु,
उभओ निस्सिया भवे ॥ १ ॥

एहवी स्वगुणपर्यायरूप संपदा मध्ये रमी रह्या छो, परभावथी निवर्त्तीने पोताने धर्मे रम्या छो. वली ते शुद्धता केहवी

छे ?–जे नित्यता "तद्भावाव्ययं नित्यम्" सत् स्वभावथी नाश पामे नहि ते नित्यता, तथा एकता, तथा अस्तितता, इतर कहेतां बीजा भेद अनित्यता, अनेकता, नास्तितता, एटला धर्ममायि छे. जे नित्य तेज अनित्य, जे एक तेज अनेक, जे अस्ति, तेज नास्ति, माटे आश्चर्यरूप छे, वली केवो छे? भोग्य जे पोताना गुण पर्याय, तेनो भोगी छे, तो पण अकामी एटले स्वरूपनो भोगी थको पण कामना (वांछना) विना भोगवे छे, माटे अकामी छे, एटले स्वक्षेत्रथी वेगला जे पुद्गलना वर्ण, गंध, रस, स्पर्शनो भोग, ते वांछवो पडे, तेने कामना कहिये, पण तेनो भोगी आत्मा नथी, आत्मा तो ज्ञानादिक गुण जे स्वक्षेत्र व्यापकपणे प्रगटभोग तेनो भोगी छे, ते भोग-

वतां कामना न जोइये, माटे कामना विना भोगी छे, ए अचरज जाणवुं ॥ १ ॥ इति प्रथम गाथार्थः ॥

ऊपजे व्यय लहे तहवि तेहवो रहे, गुण प्रमुख बहु लता तहवि पिंडी ॥ आत्मभावें रहे अपरता नवि ग्रहे, लोक प्रदेश मित पण अखंडी ॥ अ० ॥ २ ॥

अर्थः—हवे नित्यतादिक धर्म कहि समजावे छे. सर्वद्रव्य छ छे, तेमध्ये काळ ते उपचार द्रव्य छे, तथा धर्मास्तिकायादि पांच द्रव्य अस्तिकाय छे, तेमां १ धर्मास्तिकाय, २ अधर्मास्तिकाय, ३ आकाशास्तिकाय. ए त्रण एकेक द्रव्य छे, जीव अनंता द्रव्य छे, पुद्गल

अनंता द्रव्य छे, द्रव्यनुं अगुरूलघुपर्यायनुं षट्
गुण हानि वृद्धिरूप चक्र एकठुं जळावर्त्तनी
पेठे वर्त्ते, ते एक द्रव्य, जेनुं चक्र भिन्न पड्युं
ते भिन्नद्रव्य, ते सर्व द्रव्य, उत्पाद, व्यय, ध्रुव
युक्त छे, तेमाटे नित्यानित्य छे ॥ उक्तं च ॥
बिशेषावश्यकभाष्ये ॥

॥ गाथा ॥

तं जइ जीवो नासो,
तं नासो होउ सव्वसो नहि ॥
जं सो उप्पाय व्यय,
ध्रुव धम्माणंत पज्जाओ ॥ १ ॥
पुनः ॥ सव्वंवि य पइसमयं,
उप्पद्यइ नासएय निच्चं च ॥

एवं चेय य सुहदुःख,
बंध मोख्खाइ सप्भावो ॥ २ ॥

इहां युक्तिनो समूह, महा भाष्यथी जाणजो. एम जीवनो नित्यानित्य स्वभाव छे; ते कहे छे, अभिनव पर्याय उपजे छे, पूर्वपर्याय व्यय थाय छे, यथा एक प्रदेशें अगुरुलघुपर्याय अनंत गुणो छे, बीजे प्रदेशें तेथी अनंतभागहीन छे, त्रीजे प्रदेशें असंख्यात गुण वधतो छे, चोथे प्रदेशें संख्यात गुण वृद्धि छे, एम असंख्यात विभाग छे, ते प्रतिसमय परावर्त्तरूप छे, ते जिहां अनंतगुण तिहां असंख्यात गुण थाय, तेथी जे प्रदेशें अनंत गुण पणुं टल्युं, ते व्यय थयो, अने असंख्यातपणानुं उपजवुं थयुं, ते उत्पाद थयो, तथा अगुरुलघु सत्पणे रह्यो, ते ध्रुव जाणवो, तथा ज्ञेयनुं

जाणवुं, ए ज्ञाननो धर्म छे, ते ज्ञेयने पलटवे जो ज्ञान नित्य होय, तो जणाय नहीं. तेमाटे विवक्षित समयने विशे केवलज्ञान अनंता अतीत धर्म थया, तेने जाणे. वर्त्तमानें अनंता धर्म छे तेने जाणे, तथा अनागत अनंता थाशे ते पण जाणे. यद्यपि थया छे थशे ए धर्म, ज्ञेयना छे, पण ते सर्वने जाणवानो धर्म ज्ञानमांहे छे, अने परज्ञेयने (जाणंगपणे) जाणवाथी ज्ञान परानुयायि थतुं नथी "विषयभेदात् विषयिणोपि भेदः ज्ञेयभेदात् ज्ञानभेदः, पुनः ज्ञानं यावंतोहि ज्ञेयस्य पर्यायास्तावंतस्तदवभासकत्वेनास्याप्येष्टव्याइति बृहद्भाष्ये" तथा जे ज्ञान वर्त्तमानपणे जाणतो, तेने अतीतपणे जाणे, अने जे आनागत तेने वर्त्तमानपणे जाणे, ए ज्ञानना पर्याय भासनवेत्तादिक ते सर्व एवी रीते प-

छटे, तेथी पूर्वपर्यायनो व्यय, उत्तरपर्यायनो उत्पाद्, अने ज्ञानपणे ध्रुव, एम दर्शन, चारित्र, सर्व गुण जाणवा; माटे हे श्रीसुमतिनाथ प्रभु ! तमारी शुद्धता केवी छे ? जे समय उपजे, ते समयेंज व्यय पामे छे, अने (तहवि) कहेतां "तो पण" तेवो रहे मूलध्रुवधर्म न मूके, एटले उपजे, विणसे, ते अनित्यता, अने ध्रुव रहे, ते नित्यता. ए बे स्वभाव कह्या. तथा एक आत्माने विशे ज्ञानगुण, दर्शनगुण, चारित्रगुण, वीर्यगुण, दानगुण, लाभगुण, भोगगुण, अरूपीगुण, अगुरुलघुगुण, अव्याबाधगुण. इत्यादिक अनंतागुण छे, ते सर्व गुण भिन्न भिन्न छे तेथी, अनेकता छे, तथा ते सर्व गुण समुदायरूप छे, पण कोइ वखत भिन्नक्षेत्री न थाय, ते अनंत गुणपर्यायनो एकपिंड

एहवो आत्मा छे, माटे एकरूप छो, वली प्रभुजी तमे केवा छो? जे स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल स्वभावपणे अस्ति छो, ते अस्तिभाव कोइवारें टलतो नथी, तेणे हे प्रभु! तमें आत्मभावें रहो छो, पण कोइ वारें(अपर) बीजा द्रव्यनो भाव कहेतां धर्म लेता नथी, माटे स्यात्अस्तिपणे छो, पोताना धर्मे रहो छो, परद्रव्यनो धर्म स्यात्नास्तिपणे छे, ते कोइवारें तमें ते पणे परिणमता नथी, माटे स्यात्अस्तिनास्तिरूप छो. हवे इहां सप्तभंगी उपजे, ते कहे छे. १ स्वद्रव्य ते पोताना गुण अने पर्यायना समुदाय तथा स्वक्षेत्र, ते पोताना अगरुलघु स्वभाव, विभागीकृत असंख्यातप्रदेशें, स्वकाल ते उत्पाद व्ययरूप प्रवर्तना स्वभाव ते अनंता ज्ञानना पर्याय, अनं-

ता दर्शनना पर्याय, अनंता चारित्रना पर्याय, अनंता अगुरुलघु पर्याय तेणें स्यात् अस्ति ए पहेलो भांगो थयो. २ परद्रव्य, परक्षेत्र, परकाल, परभावपणे स्यात्नास्ति ए बीजो भांगो. ३ तथा अस्ति, नास्ति, ए बे वस्तुधर्मे छता अछतापणे समकाळे भेळा रह्या छे, माटे स्यात् अस्ति, स्यात् नास्ति, ए त्रीजो भांगो थयो. ४ एवो धर्म एकवस्तुमां एक समयें छे, अथवा वस्तुमध्यें अनंता धर्म, वचनें गोचर नहीं एवा अवक्तव्य छे, तेथी स्यात् कथंचित् पणे अवक्तव्य ए चोथो भांगो थयो. ५ ते अवक्तव्यपणुं अस्तिधर्मनुं पण छे, माटे स्यात्अस्ति अवक्तव्य ए पांचमो भांगो थयो. ६ ते अवक्तव्य पणुं नास्तिधर्मनुं पण छे, ते माटे स्यात्नास्ति अवक्तव्य ए छट्ठो भां-

गो. ७ एवो वस्तुधर्म समुदाय, पर्यायपणें स्यात् अस्ति नास्ति युगपत् अवक्तव्य ए पदार्थ धर्म छे, ए सातमो भांगो थयो. ए सामान्यें सप्तभंगी कही, तेमज नित्य तथा अनित्यनी सप्तभंगी, एक अनेकनी सप्तभंगी, वक्तव्य तथा अवक्तव्यनी सप्तभंगी, तथा गुणपर्यायनी सप्तभंगी, तथा द्रव्यास्तिक पर्यायास्तिकनी सप्तभंगी, एम अनंती सप्तभंगी वस्तुधर्मे छे, ते सप्तभंगीयें सर्व पदार्थ पोताना स्वभावने पलटता नथी, ते कारणें हे प्रभुजी ! तुमें अस्तिनास्तिपणे छो, स्वधर्मपणे रहो छो, परधर्मग्रहण करता नथी. वली हे प्रभु ! तमें केवा छो ? तोके चउद राजलोकना जेटला आकाशप्रदेश छे, तेटला तमारा आत्मप्रदेश छे, पण ते असंख्यात प्रदेशनुं जे स्वरुप; षट्गुण हानिवृद्धि-

रूप; अगुरुलघुपर्यायनो तरतम योग, विभागपणे रहेवुं. शृंखलाअवयवनी पेठे ज्ञानादि गुणोनुं अवस्थान क्षेत्र, क्षयोपशम काले कार्याभ्यासें तरतमता; तेनुं स्वरुप; कम्मपयडी विशे योगस्थान अधिकारें तथा बृहत्कल्पभाष्यमध्यें संयम श्रेणिअधिकारथी जाणजो; तथा क्षायिकभावें सर्वगुणनी सामान्यता; परंतु अगुरुलघुपर्यायनुं तारतम्य सदा छे; तथा प्रदेशधर्म छे, अथवा सर्वगुण पर्याय तुल्यविभागें असंख्यातप्रदेशपणे वेहेंचाय पण कोइ वारें जूदा खंडाता नथी, माटे अखंड रुप छो, एटले असंख्याता प्रदेशरुप अवयवता छे, पण भिन्न थाय नहीं, ते आश्चर्य जाणवुं ॥ २ ॥ इति द्वितीय गाथार्थः ॥

**कार्यकारणपणे प्रणमे तहवी ध्रुव,**

**कार्यभेदें करे पण अभेदी ॥ कर्तृता परिणामे नव्यता नविरमे, सकल वेत्ता थको पण अवेदी ॥३॥**

अर्थः——वली उत्पादव्ययरूप धर्म कहे छे. जीवद्रव्यने विशे जेटला गुण छे, ते सर्वे पोतानुं कार्य करे छे, अने उपादानरूप कारण तेज कार्य थाय छे. इहां कोइ कहेशे जे पूर्वकालें कारण, पश्चात्कालें कार्य, एतो ज मालीनो मत छे, जो कारणकाल, कार्यकाल भिन्न होय, तो कारणकाल विनाशें तद् अनंतर कार्यकालें कारण विना कार्योत्पत्ति थाय, अने कारण विना कार्य मानतां अनेक दोष थाय, तेवारें घटें पट कार्य, पटें घटकार्य थाय, माटे कारण विना कार्य नथी, एटले का-

रणभाव, तथा कार्यभाव, ए बे एक समये छे, ए जैननी श्रद्धा छे, श्रीविशेषावश्यकमध्ये घणुं वखाण्युं छे, जो बाह्य उत्पन्न कारण कार्यविशे एक कालता छे, तो सहज अकृत्रिम कारण कार्यता एकसमयेंज होय, तेमाटे जीवनो केवलज्ञान गुण, ते विशेष भाव सर्व जाणे छे, त्यां सर्वनुं जाणवुं, ते कार्य छे, अने ज्ञानगुण, जाणवा रीते प्रवर्त्ते, ते कारण छे, तेज समये कारण कार्यपणे परिणमे छे, अने ज्ञान गुण पणे सदा ध्रुव छे; तेम केवलदर्शनादि गुण अनंता छे, ते सर्व ए रीतें परिणमे छे, कारणता व्यय, त्यांज कार्यता उत्पाद, कार्यताव्यय, त्यांज कारणताउत्पाद, इम सर्व द्रव्यने विशे उत्पादव्ययधर्म छे. इहां कोइ कहे छे जे उत्पादव्यय स्वतः नथी, परप्रत्ययथी छे एम

कहे छे तेनी भूल छे, जे परप्रत्ययथी धर्म, ते लक्षण न थाय, लक्षण ते स्वधर्मनुंज थाय, त्यां श्री श्वेतांबरगणी तत्त्वार्थ टीकाकारनी शाख लखे छे ॥

अथ—ये व्याचक्ष्यते व्ययोत्पादौ न स्वतो व्योम्नः किंतु परप्रत्ययाज्ज्ञायेतेऽवगाहकसन्निधानायत्तावुत्पादव्ययानिति तेषां कथमलोकाकाशेऽवगाहकाभावात् अर्द्धवैशसं च सतोलक्षणं लक्षणस्य साध्याऽव्यापितं चेष्यते स्थित्युत्पादव्ययत्रयमिति. अत्रोच्यते य एवं महात्मानस्तर्कयंति स्वबुद्धिबलेन पदार्थस्वरूपं तेऽत्र निपुणतरमनुयोक्तव्याः कथमेतत् वयं तु विस्रसापरिणामेन सर्व वस्तूनामुत्पादादित्रयमिच्छामः प्रयोगपरिणत्या जीवपुद्गलानामिच्छं तावदस्मद्दर्शनमाविरुद्ध सिद्धांतसद्भावं अस-

दुक्तार्थानुगुणमेव च भाष्य कारणाप्युच्यते ॥

ए वचन जोइ श्रद्धा यथार्थ करवी, माटे हे प्रभुजी ! तमारा गुण, कार्यपणे परिणमे छे, तेथी उत्पाद् व्यय छे, अने गुणनो अभाव थतो नथी, ते ध्रुवधर्म छे, तेथी स्यान्नित्यं, स्यादानित्यं, ए स्वरूप छे, ते अचरिज जेवुं छे. वली जीव द्रव्य मध्ये जेटला गुण छे, ते सर्वभिन्नपणे पोतानुं कार्य करे छे, तेमां ज्ञान ते जाणवारूप कार्य करे छे, दर्शन ते देखवारूप कार्य करे छे, सम्यक्त्व ते निर्धार कार्य करे छे, चारित्र ते स्थिरतारूप कार्य करे छे, अमूर्त्त गुण अरूपीपणे कार्य करे छे, एम सर्व गुण पोताना कार्यना कर्त्ता छे, एवा ( कार्य भेदे ) जुदा जुदा पणे करे, ते वस्तुमां अनेकता स्वभाव छे, तेथी भेद स्वभाव छे, पण

ते कार्यधर्मनुं कारण कोइ द्रव्यें तथा क्षेत्रें जूदुं थतुं नथी, तेथी अभेदरूप छे. जेम सूवर्ण मध्ये पीतता, गुरुता, स्निग्धता, ए कार्य भेदें त्रण धर्म पामियें छियें, परन्तु क्यारें भिन्न थता नथी, तेम जीवना अनन्त गुण भिन्न भिन्न कार्य करे छे, परंतु वस्तुधर्मे भिन्न नथी. कार्य तो सर्व ( भेदें ) भिन्नपणे करे छे, पण ( अभेदी ) भेदरहित छे. वली प्रतिसमय कर्तृतापणे परिणमे छे, एटले पंचास्तिकायमध्ये चार अस्तिकाय ते अकर्त्ता छे, अने एक जीवास्तिकाय स्वतंत्रकर्त्ता छे. जे स्वाधीनपणे कारणावलंबी थइ कार्यने निपजावे, ते कर्त्ता, तथा जेम परकार्य घट, तेनो कर्त्ता कुंभकार तेम ज्ञानादि कार्यनो कर्त्ता जीव छे, माटे कर्तृतापणे परिणमे छे. पण काइ नव्यपणे एटले नवीनपणे

नथी रमतो, एटले जे प्रतिसमयें पर्यायने करे, पण कांइ नवो नथी करतो, अस्तिधर्म छे, तेमज रहे छे, वळी ( सकल ) सर्व द्रव्य छे तेना गुणपर्याय स्वभाव, तेना उत्पादरूप, व्ययरूप, ध्रुवरूप, अतीत अनागत वर्त्तमान काळ सर्व त्रणे काळना ( वेत्ता ) जाण छो, ए सर्वने जाणो छो, पण ( अवेदी ) पुरुष, स्त्री, अने नपुंसकरुप वेद रहित छो माटे वेत्ता थका पण वचनधर्में अवेदी छो, ए अचरिज जाणवुं ॥ ३ ॥ इति तृतीय गाथार्थः ॥

शुद्धता बुद्धता देवपरमात्मा, सहज निज भावभोगी अजोगी ॥
स्वपर उपयोगी तादात्म्यसत्ता रसी,

शक्ति प्रयंजतो न प्रयोगी ॥अ०॥४॥

अर्थः—वली शुद्धता ते सकलपुद्गलरूप (संकरता) जोडाण रहित, (बुद्धता) केवल ज्ञानदर्शनरूप सम्पूर्ण बोधरूप छो, पोतानुं स्वरूप तेणें (दिव्याति) रमणशील ते देव कहियें, (परमात्मता) पोतानो आत्मा ज्ञानावर्णादि कर्मथी रहित छे, परमात्मापणुं सम्पूर्ण भोगवो छो, परमात्म निष्पन्न जे आत्मा, ते भाव पाम्या छो, वली (सहज) स्वभावना अकृत्रिम एवा (निज) पोताना भाव ते ज्ञानादि अनन्त धर्म तेना (भोगी) भोग आस्वादवन्त छो, वली केवा छो ? के (अयोगी) मनवचन कायारूप योग तेथी रहित छो, अने क्षयोपशमी वीर्य, तेने चलनपणे वर्त्ते, ते योग कहियें

त्यां भाषावर्गणा, शरीरवर्गणा, तथा मनोवर्ग-
णा, ते ज्यां अवष्टम्भहेतु छे, ते द्रव्ययोग
कहियें, अने जे अवष्टम्भ ग्राहक वीर्यपरिणाम ते
पहेलो परिणमन, बीजो अवलम्बन, त्रीजो ग्रहण
रूप, ए त्रण शक्तिने भावयोग कहिये, एवुं
जे योगपरिणमन, तेथी रहित छो; कारण के
मन वचन कायानो योग जे छे ते आश्रव छे,
अने सिद्ध आत्मा तो सम्पूर्ण संवरमयि छे,
वली प्रभुजी तमें केवा छो ? जे ( स्व )
पोतानुं आत्मस्वपणुं तेना ( उपयोगी ) जाण
तथा परआत्मा ते बीजा अनन्त(सिद्ध–संसारी)
जीव तथा सर्व पुद्गल, तथा धर्म, अधर्म, आकाश
अने काल, ते सर्वना जाण छो एटले स्व तथा
पर ए बेना जाण पण तादात्म्य कहेतां तन्म-
यपणे रह्यो छे पोतानो सत्ताधर्म, तेना ( रसी )

रसीआ छो, आस्वादी छो, एटले जाणंग स्वपर बेना छो, पण भोगी एक आत्मधर्मनाज छो. अहि कोइ कहेशे जे जाणंग बेना छे तो भोगी बेना केम नथी ? तेने कहेवुं जे परभावमध्ये भोग धर्म नथी, माटे आत्मा परभावनो भोगी नथी स्वभोगीज छे, परक्षेत्रे रह्यो जे धर्म, ते भोगवाय नहीं स्वक्षेत्री धर्म भोगवाय. वली प्रभु तमारी अनन्त शक्ति छे, ते सकर्मा जीवनी सर्व शक्ति दबाणी छे, अने तमे साध्य साधक भावे करीने सर्व कर्मपडलने दलवे करीने सर्व शक्ति प्रगट करी छे अने ते सर्व शक्तिनी भिन्न भिन्न प्रवृत्ति छे, ते सर्व शक्तिने प्रयुंजता छो, एटले सर्व कर्तृत्व, भोगतृत्व, ज्ञायकत्व, पारिणामिकत्व, ग्राहकत्व, आधारत्वादि शक्तिप्रवर्त्ते छे, पण कोइ शक्ति

अण प्रवर्त्ती रहेती नथी, तथापि शक्ति प्रवर्तावतां कोइ जातिनो ( प्रयोग ) प्रयास उद्यम विकल्प करवो पडतो नथी, एटले सर्व शक्ति सहेजें प्रवर्त्ते छे ॥४॥ इति चतुर्थगाथार्थः॥

वस्तु निज परिणतें सर्वपरिणामिकी, एटले कोइ प्रभुता न पामे॥
करे जाणे रमे अनुभवे ते प्रभु, तत्वसामित्व शुचि तत्त्व धामें ॥
अ० ॥ ५ ॥

अर्थः—हवे १ नित्य, २ अनित्य, ३ एक, ४ अनेक, ५ अस्ति, ६ नास्ति, ७ भेद, ८ अभेद, इत्यादि, अनन्तधर्म प्रभुमां छे ते माटे परमेश्वरपणुं छे तेनी ओलखाण करवाने कहे

छे, जे नित्यानित्यादि धर्म तो सर्व द्रव्यमां छे, एटले ( वस्तु ) जीवादि पदार्थ ते ( निज परिणतियें ) पोतानी स्याद्वाद परिणतियें ( सर्व ) समस्त द्रव्य ( परिणामिकी ) कहेतां परिणामी छे. एटले नित्यानित्यादि धर्मपणे सर्व द्रव्य परिणामी छे, पण तेथी कोइ परमेश्वरपणुं न पामे, सर्व द्रव्य साधारणधर्मी माटे एमां शी अधिकाइ? ( कोइ ) हरेक द्रव्य, ( प्रभुता ) म्होटाइपणुं, न पामे. तो केम पामे? ते कहे छे. ( करे ) पोताना धर्मने कर्त्तापणे करे, एटले बीजा अजीवादि पांच द्रव्य ते सर्व उत्पाद व्यय ध्रुवपणे परिणमे छे, पण ते कर्त्ता नथी, अने जीवद्रव्य कर्त्ता छे, ते शामाटे? जे बीजा सर्व द्रव्यना धर्म प्रतिप्रदेशें छे, अने ते प्रदेशे प्रदेशें प्रवर्त्ते छे, पण एक

प्रदेशने बीजा प्रदेशनुं सहाय एम एकटुं प्रव-
र्तन नथी, अने जीवद्रव्यने प्रदेशें प्रदेशें धर्म
अनन्त छे, अने ते ते प्रदेशें रह्या, प्रवृत्ति करे
छे, पण ते सर्व प्रदेशे समुदाय मलीने एकठी
प्रवृत्ति छे, माटे जीवद्रव्य कर्त्ता छे, तेथी स्व-
स्वधर्मने करे छे, ए कर्त्तापणुं ते ईश्वरता छे,
तथा अजीवद्रव्यमध्ये पण अनन्त गुण अने
अनन्त पर्याय छे, पण ते द्रव्य पोताना गुणने
जाणता नथी, अने आत्मा ज्ञानादि अनन्त
आत्मगुण तथा अनन्त परद्रव्य तेथी अनन्तगुणा
परगुण, ते सर्वने जाणे छे, माटे जाणपणुं ते
असाधारण धर्म छे, तथा स्वचारित्रगुणें करी
आत्मा पोताना गुणने विशे रमे छे. अने अजी-
वद्रव्य ते स्वधर्मे रमी शकता नथी, तथा आत्मा
स्वभाव धर्मने भोगवे छे, तेथी स्वरूपानुभवी छे,

माटे जे कर्त्ता होय ते भोक्ता होय, पग जे कर्ता नथी, ते भोक्ता नथी, तेथी अनुभवधर्म, ते आत्माने विशेज छे, माटे जे कर्त्ता, जे ज्ञाता, जे चारित्रवंत, जे भोक्ता, ते प्रभु परमेश्वर जाणवो, एटले दर्शनान्तरी परमेश्वरने अकर्त्ता कहे छे ते पण मिथ्या छे, केम के परमेश्वर निःकर्मा ते स्वभावना कर्त्ता स्वभावना भोक्ता छे. हवे एम कहेतां संसारी तथा सिद्ध सर्व जीव परमेश्वरपणुं पामे? ते उपर कहे छे. ( तत्त्व ) वस्तुनो मूळ धर्म, ( स्वामित्व ) तेनुं स्वामिपणुं ते परमेश्वरपणुं ( शुचि ) पवित्र कर्म रहित निर्मल तत्व सिद्धतानुं (धाम) घर ते निष्पन्न सिद्धावस्था तेज परमेश्वरपणुं छे, बाकी सर्व संसारी जीव सत्तायें परमगुणी छे, पण जेना गुण प्रगट थया, ते

पूज्य जाणवा. माटे श्री यशोविजयजी उपाध्याये कह्युं छे.

जे जे अंशे रे निरुपाधिकपणुं,
ते ते कहीयें रे धर्म ॥
सम्यग्दृष्टि रे गुणठाणाथकी,
जाव लहे शिवशर्म ॥ १ ॥

माटे जे परम पूज्य ते सिद्ध छे ॥ ५ ॥
इति पंचम गाथार्थः ॥

जीव नवि पुग्गली नैव पुग्गल कदा,
पुग्गलाधार नहीं तास रंगी ॥ पर-
तणो ईश नहिं अपर ऐश्वर्यता, व-
स्तुधर्मे कदा न परसङ्गी ॥ अ० ॥ ६ ॥

अर्थः—हवे जीवनो जे मूळ धर्म छे, ते

श्री सुमतिनाथ अरिहन्तने निपज्यो छे, ते कहे छे. जे जीव नवि पुग्गली कहेतां जीवे ते कोइ वारे पुद्गली नथी, अनन्त काल संसारावस्थाये पुद्गलथी एकठो रह्यो, पण पुद्गलरूप थयो नहीं, तथा जीव ते पुद्गलनो आधार नथी, कारण के क्षेत्री द्रव्य तो आकाश छे, धर्म, अधर्म, जीव, पुद्गल, ए सर्व आकाशद्रव्य मध्ये रह्यां छे, पण जीवना प्रदेशें पुद्गलनुं रहेवुं, ते जीवनी भावअशुद्धताथी थयुं छे, केम जे सर्वसंसारी जीवोने भोग तथा ऊपभोग गुणनो सदा काल क्षयोपशम पामियें पण स्वभोगनी प्रगटता नथी, तेथी परभोगी थयो छे, वीर्यान्तरायनो क्षयोपशम सदा पामियें, ते वीर्य पण परानुयायि थयुं, तथा कर्ता, ग्राहकता, व्यापकता, भोक्तापणुं सदा निरावरण छे, अने कार्य,

ग्राह्य, व्याप्य, भोग, अवराणां छे, तेथी पुद्गल-ग्राह्य, पुद्गलानुयायि प्रवृत्ति ते कार्य, पुद्गलभागपणें तेना वर्णादिमां व्यापक थयो, पुद्गलने ग्रहे छे, पछी जेने भोगव्यो, तेनीज होंश ऊपजे, एटले पुद्गलनो रुचि ते फरी पुद्गलने ग्रहे, तथा भोगवे, तेथी आत्मप्रदेशें पुद्गल रह्या छे, आत्मप्रदेश ते स्वगुणपर्याय-नुं क्षेत्र छे, पण परपुद्गलद्रव्यनुं क्षेत्र नथी, तथा मूळवस्तुधर्में पुद्गलनो रङ्गि नथी, स्वधर्मना आस्वादन विना ए पुद्गलनो राङ्गि थयो छे, पण वस्तुगतें विचार तां एने पुद्गलथी श्यो सबन्ध छे ? वली आत्मा परभावनो स्वामी नथी, परभावें एनी ( ऐश्वर्यता ) ठकुराइ नथी, एटले वस्तुधर्में ( कदा ) कोइ वेळा परवस्तुनो साङ्गि नथी, जीवद्रव्यनो सत्ता-

धर्म एवो छे; माटे म्हारो सुमतिनाथ परमेश्वर शुद्धदेव, ते पुद्गलनो आधार तथा रागी केम होय ? सर्व पुद्गलातित छे ॥ ६ ॥ इति षष्ठम गाथार्थः ॥ ६ ॥

**संग्रहे नहीं आपे नहीं परभणी, नवि करे आदरे न पर राखे ॥ शुद्ध स्याद्वाद् निजभाव भोगी जिके, तेह परभावने केम चाखे ॥अ०॥७**

अर्थः—वली सुमतिनाथ परमात्मा केवा छे ? के ( परभणी ) परवस्तु भणी म्हारा-पणे सङ्ग्रहे नहीं, ते परवस्तु कोइ बीजाने आपे नहि, परवस्तुने करे नहि, परवस्तुने आदरे नहि. परवस्तुने परिग्रह धनपणे राखे नहि, ए शुद्धद्रव्यनो धर्म छे, तथा ( शुद्ध ) निर्दोष

स्याद्वाद अनंतधर्मात्मक ( निज ) पोतानो, ( भाव ) धर्म, अनन्त ज्ञान दर्शनादि, तेना जे भोगी आस्वादी एटले स्वभोग्यना जे भोगी थया, ते परभाव जे राग द्वेषादि अथवा पुद्गलवर्णादि, तेने निष्पन्नपरमात्मा केम चाखे कहेतां आस्वादे ? माटे परमात्मा ते परभावने चाखे नहि, स्वरूपभोगीज होय ।। ७ ।।इति।।

ताहरी शुद्धता भास आश्चर्यथी, उपजे रुचि तेणे तत्व ईहे ॥ तत्व रंगी थयो दोषथी उभग्यो, दोषत्यागे ढलें तत्व लीहे ॥अ०॥८॥

अर्थः—हवे साधन धर्म कहे छे. त्यां श्रीसुमतिनाथ पोते मुक्त थइ कृत कृत्य थया,

ते परजीवनी मुक्तिना कर्त्ता नहि, तो शा माटे स्तवो छो ? नमो छो ? त्यां केहे छे; हे प्रभु ! तमारी शुद्धता, निःकर्मता, अनन्तगुणप्रगटता, तेनुं ज्यारे (भासन) जाणपणुं थाय, ते जेम जेम गुणनी घोषणा करे, तेम तेम गुणनुं भासन थाय, तेथी आश्चर्यता उपजे, के अहो प्रभुनुं ज्ञान ! त्रण लोकगत षट्द्रव्य त्रण काळ परावृत्ति सहित एक समयें जाणे, तेमज अहो प्रभुनुं दर्शन ! अहो प्रभुनुं चारित्र ! सकळ पुद्गल अभोगी ! अहो परमानन्द ! इत्यादि ( आश्चर्यथी ) आश्चर्य उपजे, तेथी पोताने तेवी परमात्मा दशा निपजाववानी रुचि उपजे, ईहा उपजे. पछी ते मोक्षरुचि जीव विचारे जे क्यारे म्हारो आत्मा कर्मरहित थाय ? क्यारे म्हारो शुद्ध पारिणामिकभाव प्रगटे ? क्यारे म्हारा

गुण हुं भोगवुं ? अने अनन्त जीवोनी एँठ ( पुद्गल ) तेने तजी पोतानो धर्म हुं क्यारे भोगवीश ? एवी रुचि उपजे. पछी ते रुचि-वन्त जीव तत्वनी ईहा करतां काल गमाडे, ( व्यतित् करे ) ते जेम जेम तत्वनी ईहा करे, तेम तेम तत्वनो रङ्ग प्रगटे, जेम जेम तत्वनो रङ्गि थाय, तेम तेम राग, द्वेष, अढार पापस्था-नादि दोषथी उभगे ( विराम पामे निवृत्ते ) तेम ( ढले ) ते पणे परिणमे ( लीहे ) तत्व-मार्गे ( स्वभावपरिणामी ) थाय. ए सर्व कार्य प्रभुप्रत्यें अवलम्ब्यां थाय ॥८॥ ( इति अष्टम् गाथार्थः ) .

शुद्धमार्गें वध्यो साध्यसाधन स-ध्यो, स्वामिप्रतिछंदे सत्ता आराधे ॥

आत्मनिष्पत्ति तेम साधना नवि टके, वस्तु उत्सर्ग आतम समाधें ॥ अ० ॥ ए ॥

अर्थः—ए रीते पारिणामिकपणे समस्यो ए आत्मा, शुद्ध मोक्षसाधनमार्गे वध्यो साध्य जे पोतानो परमात्मभाव, तेना साधननो उपाय सध्यो थको स्वामी जे श्री सुमति जिनने, ( प्रतिछंदे ) तेना जेवी पोतानी सत्ता छे तेने ( आराध, ) निपजावे, प्रभुजी जेवी सत्ता प्रगट करे, निःकर्मा निर्मल शुद्धानन्द पद भोगवे, पछी आत्मा जेम जेम ( निष्पत्ति ) निपजे तेम तेम ( साधना ) कारणपणुं टके नहि, एटले जेम कार्य निपजे, तेम कारणता टले, कार्यान्वयि कारण छे, कारण

कांइ वस्तुधर्म नथी, जे वस्तु कार्यने सन्मुख थाय, ते कारणपणे परिणमे, जेम कार्य निपजे, तेम तेनी कारणता ध्वंस पामे, एम आत्मसिद्धें साधनता नवि टके, ज्यारे ( वस्तु ) जीव-पदार्थ, उत्सर्गरीते सम्पूर्ण आत्मा पोतानी समाधि परमानन्द पामे, त्यारे कारणता रहे नहि, सिद्धपणे वस्तुनो मूलधर्म प्रगटे, त्यारे साधनपणुं रहे नहि ॥ ९ ॥ इति नवम गाथार्थः ॥

माह्ररी शुद्ध सत्तातणी पूर्णता,
तेह्नो हेतु प्रभु तुंही साचो ॥ देवचंद्रें स्तव्यो मुनि गणें अनुभव्यो,
तत्वभक्तें भविक सकल राच्यो ॥
॥ श्र० ॥ १० ॥

अर्थः—माटे हे प्रभुजी ! म्हारी शुद्ध नि-

मल आत्मसत्ता, तेनी ( पूर्णता ) सम्पूर्णता तेनो (हेतु) निमित्त कारण हे प्रभु तुंज साचो छे, तमारा जेवा शुद्धदेवनुं निमित्त पाम्या विना म्हारो निर्मळ मोक्ष केम निपजे ? सर्व जीवनी एज परिणति छे, जे निमित्तावलम्बी थइ, उपादानावलम्बी थाय, ते चार निकायना, देवमां चंद्रमासमान ( वडेरा ) इन्द्रो तेणें स्तव्यो, तथा मुनि जे निर्ग्रंथ मोक्षाभिलाषी तेणें अनुभव्यो, तेना गुणनुं आस्वादन कर्युं, एवो जे अरिहन्त देव, तेनी तत्वरूप जे भक्ति, ( वस्तुगत गुणनी बहुमानता, ) उपर सर्व आत्मार्थी जीवो तमें राचो, मग्न थाओ ॥ ॥ १० ॥ इति दशम् गाथार्थः ॥ इति श्री सुमतिजिन स्तवन ॥

## अथ षष्ठ श्रीपद्मप्रभजिन स्तवन ॥

॥हुं तुज आगळ शी कहुं केसरिया लाल॥ए देशी॥

श्रीपद्मप्रभ जिन गुण निधि रे लाल, जगतारक जगदीश रे ॥ वालेसर ॥ जिन उपगारथकी लहे रे लाल, भविजन सिद्धि जगीश रे ॥ वा० ॥ १ ॥ तुझ दरिसण मुझ वाल्हो रे लाल, दरिसण शुद्ध पवित्त रे ॥ वा० ॥ दरिसण शब्द नयें करे रे लाल, संग्रह एवम्भूत रे ॥ ॥ वा० ॥ तु० ॥ २ ॥ ए आंकणी ॥

अर्थः—हवे श्री पद्मप्रभजीना निमित्त कारणनी कारणता यथार्थरूपें स्तवे छे. श्रीपद्मप्रभ

गुणना निधान छे, ( जगतारक ) जगत्ने विषे मोक्षार्थी जीवना तारक छे, गुणाधिक छे, माटे जगत्ना ( ईश ) स्वामी वडेरा छे, जिन उपगारथी भव्यजीव सिद्धि कहेतां मोक्षरूप ( जगीश ) संपदा (लहे) पामे. हे प्रभु ! त्हारा दर्शनमां कारणरूप त्हारी मुद्रानुं जे देखवुं, ते उत्कृष्ट कारणरूपे त्हारुं ( दर्शन ) शासन, ( उपादान कारणपणे दर्शन कहेतां सम्यक्त्व ) ते मुजने ( वाल्हो ) इष्ट छे. हे प्रभु ! त्हारुं दर्शन जे सम्यक्त्वतत्वरुचिरूप ते शुद्ध छे, पवित्र छे, जो आत्माने स्वरूप निर्धार, स्वरूप रुचिरूप प्रगटयो, तो आत्मा मोहपङ्कथी रहित थाय, माटे परम पवित्र छे.

॥ उक्तं च ॥

सम्मत्तेणं सुद्धो,

सच्चसु किच्चो हवइ सिवहेऊ ॥
संवरवुड्ढी तह नि,
ज्जराय धम्ममूलं च सम्मत्तं ॥१॥
मूलं दारं पइठाणं,
आहारो भायणं निहि ॥
दुसुक्कं साविधम्मस्स,
सम्मत्तं परिकित्तियं ॥ २ ॥

वली हे प्रभुजी ! त्हारुं (दर्शन) देखवुं अथवा शुद्धश्रद्धा ते जे जीव शब्दनयें करे, ते जीवनो जे संग्रहनय ते एवम्भूत थाय; एटले भावार्थ ए छे जे सर्वजीव संग्रहनये सिद्धसमान छे, ते जेवारे पोताना सर्व आवरण क्षय करी सम्पूर्ण सिद्ध थाय, त्यारे एवम्भूतनये सिद्ध

कहेवाय. ते माटे सङ्ग्रह ते एवम्भूत थाय.

अहीं नयनुं स्वरूप संक्षेपे कहियें छेयें. " सत्ताग्राही संग्रहः " वस्तुनी सत्ताने ग्रहे, ते संग्रहनय अने वस्तुना नामपदनो जे अर्थ, तेपणे परिणम्यो, वेद्य संवेद्यपदें-भावनिक्षेपें ते शब्दनय वली सकलपर्यायपरिणामिकतारूप प्रगटपणे सम्पूर्ण वस्तु, ते एवम्भूतनय एटले त्हारुं दर्शन जे देखवुं, ते अन्तरङ्ग अरिहन्तना स्वरूपभासन आस्वादन सहित प्रभुतानुं अवलोकन ते शब्दनयें प्रभुनुं देखवुं थयुं ? योगनी चपलता, तथा उपयोग अन्यकार्यनो, मात्र एकलुं चक्षुइन्द्रियें करी प्रभुमुद्रानुं जोवुं, ते नैगमनये प्रभु दीठा. २ वन्दन, नमन, आशातना वर्जनपणे जे प्रभुमुद्रा तथा प्रभुना शरीरनुं देखवुं, ते व्यवहा-

रनये प्रभु दीठा. ४ योग तथा विकल्परूप उपयोग प्रभुना गुणनो, अने सर्व इन्द्रिये प्रभुने जोवे, स्तवे, एकाग्र करे, चपलता मटावे, तथा हर्ष सहित प्रशस्तरागनी मुख्यतायें जोवे स्तवे, ते रुजुसूत्रनयें प्रभु दीठा. ५ अन्तरङ्ग परिणाम परिणाति चेतनानुं आकर्षण तथा श्रीवीतरागनी वीतरागतायें योग सर्व प्रभुमुद्रा, तथा प्रभुनुं शरीर त्यां वलगा अन्तरङ्ग आत्मसत्ता प्रगट करवारूप साध्य रुचि थयो थको प्रभुतानुं तत्वसम्पदारूप अवलोकन ते शब्दनयें प्रभुजी दीठा. ए रीते श्रीप्रभुजीने देखे, ते नियमा ( निश्चे ) स्वसत्ता प्रगट करे, माटे ए निमित्त कारणरूप प्रभुदर्शन जाणवुं. एम सम्यक्त्वना पण नय करीने शब्दनयें जे शुद्ध श्रद्धारूप सम्यक्त्व ते संसारी जीवनी सत्ता प्राग्भाववनुं

कारण छे ॥१॥२॥इति युग्मम्॥ (बे गाथार्थ.)

बीजें वृक्ष अनन्ततारे लाल पसरे भूजल योगरे ॥ वा० ॥ तिम मुझ आतम सम्पदारे लाल, प्रगटे प्रभु संयोगरे ॥वा०॥तु०॥३॥

अर्थः-हवे कारणकार्य भाव कहे छे. जेम बीज होय तेमां अन्नत वृक्ष उपजाववानी शक्ति छे, पण ( भू ) माटीमां नांखे, तथा (जल) पाणी सींचे, एवो संयोग मळे, त्यारे ऊगे, एटले माटी तथा पाणीना संयोगे वधे, ए रीत छे, तेम उपादान धर्म ते निमित्तकारण विना प्रगटे नहि. ए रीते म्हारी आत्मसम्पदा यद्यपि सत्तारूपें छती छे पण ज्यारे प्रभु श्री वीतराग देव शुद्ध स्वरूपीनो योग मळे, त्यारे

प्रगटे, एटले ते आलम्बी तत्वने आलम्बने वर्त्ते, तो ते निपजे, एम म्हारे आत्मा विशे सत्ता सर्व छे पण श्री अरिहन्त रूप निमित्त मले, त्यारे सिद्धि निपजे ॥३। इति तृतीय गाथार्थः॥

जगतजंतु कारज रुचिरे लाल
साधे उदयें भाण रे ॥ वा० ॥
चिदानंद सुविलासता रे लाल वाधे
जिनवर झाण रे ॥वा०॥तु०॥४॥

अर्थः—सर्व जगत्वासी जीव आहार, विषय, परिग्रह मेलववारूप कार्यना ( रुचि ) अभिलाषी छे, एटले पोतपोताना कार्य करवा रूप परिणाम सर्व जीवोने छे, पण सूर्य उद्योत्रूप निमित्त पाम्या विना कार्य करी शके नहि. सूर्य उद्योतरूप निमित्तकारण पामे,

त्यारे सर्वलोक कार्य करवा लागे, ए रीत प्रगट देखाय छे. तेम म्हारो आत्मा ( चिद् ) ज्ञान, ( आनन्द ) अव्याबाधसुख अथवा सकलज्ञेय ज्ञायकता रूप जे ज्ञान तेनो आन्नद, ते चिदान्नद तेनी ( सुविलासता ) शुद्धपणे ( विलास ) भोगववुं, ते आत्मानन्द भोगीपणुं ते यद्यपि सत्ताने विशे छतुं छे, तोपण ज्यारे श्री जिनराजनो ( वर ) प्रधान अनुष्ठानदोष, तथा एकान्त दोष, तथा अर्थापत्तिदोष रहित ध्यान करियें, त्यारे आत्मान्नद प्रगटे, उपादान छे पण हे प्रभु ! तमारा जेवुं निमित्त मळे प्रगट थाय. माटे म्हारे प्रभुसामन उपकारी कोइ नहि, ते कारणें हे परमेश्वर ! त्हारूं दर्शन मने व्हालु छे, जे अनन्ता भव भमतां न पाम्यो ते जो मळे, तो

म्हारुं अन्तरङ्गनुं अनन्तु अनन्तु अनन्त कालनुं
दरिद्र जाय ॥

॥ उक्तं च ॥

नूनं न मोहतिमिरावृतलोचनेन,
पूर्वंविभोसकृदपिप्रविलोकितोऽसि॥
मर्माविधो विधुरयन्तिहि मामनर्थाः
प्रोद्यत्प्रबन्धगतयःकथमन्यथैते॥१॥

एटले प्रभुनुं दर्शन दुर्लभ छे, ते तेनी
प्राप्तिना अर्थी जे जीव, तेने इष्ट होय ॥ ४ ॥
॥ इति चतुर्थ गाथार्थः ॥

लब्धि सिद्ध मंत्राक्षरें रे लाल,
ऊपजे साधक संगरे ॥वा०॥ सहज

अध्यातम तत्वतारे लाल, प्रगटे तत्वीरंग रे ॥वा०॥तु०॥५॥

अर्थः—वली दृष्टांत कहे छे. जेम आकाशगमन प्रमुख लब्धियो तेनी जे सिद्धि ते विद्याशक्ति मंत्राक्षरमां छे, पण ते तेवो उत्तरसाधक मले, त्यारे नीपजे, तेम सहज स्वभाव रूप जे ( अध्यात्म ) आत्माथी तन्मयपणे रही, जे स्याद्वादरूप ज्ञानदर्शनादि आत्मिकपरिणतिरूप तत्वता, ते यद्यापि वस्तुधर्मे आत्माने विशे छती छे, पण ज्यारे निष्पन्नतत्वी शुद्ध निर्मल, निरावरण, आत्मस्वरूपभोगी, आत्मरमणी, आत्माश्रयी, असंख्यात् प्रदेश पुद्गलसंश्लेषराहित, एवा शुद्धदेवने आलम्बनें एक रङ्ग करे, त्यारे ज्ञानावरणादि कर्मथी

रहित निरावरणरूप प्रगट भावनुं छतापणुं नपिजे ॥५॥ इति पंचम गाथार्थः ॥

**लोह धातु कांचन हुवेरे लाल, पारस फरसन पामिरे ॥वा०॥ प्रगटे अध्यातमदशा रे लाल, व्यक्तगुणी गुणग्राम रे ॥चा०॥तु०॥६॥**

अर्थः—बीजो दृष्टांत कहे छे. लोहधातुमध्ये (कांचन) सुवर्णथवानी सत्ताछे, तोपण पारस पाषाण इत्यादि बाह्य निमित्त पामीने पोतानुं सोनापणुं पामे छे, तेम भव्य जीवनी पण शुद्ध आत्मिकदशा यद्यपि सत्तारूपे छे पण (व्यक्त) प्रगट कर्मावरण रहित जे गुणी अरिहन्त तेना गुणग्राम करतां, स्मरण करतां, आपणो आत्मा गुणानुयायि थई, सम्पूर्ण गुणीपणुं पामे,

त्यारे सत्ता प्रगटे. अहि कोइ पूछशे जे निमित्त विनाज सिद्धपणुं केम न पामे? तेने उत्तर कहे छे. जे आत्मा अनादिनो पुद्गलरूप पर निमित्त पामीने बन्ध प्रवृत्ति करे छे, ते जो पुद्गलरूप परनिमित्त मूके, तो मुक्त थाय, ते पुद्गलरूप परनिमित्त तो अरिहन्तरूप शुद्ध निमित्तने अवलम्ब्या विना टले नहि. माटे श्रीवीतरागदेवरूप शुद्ध निमित्त पामेथी, आपणुं तत्व प्रगटे ६, इति षष्ठम गाथार्थ.

आत्मसिद्धि कारज भणीरेलाल, सहज नियामक हेतुरे ॥ वा० ॥ नामादिक जिनराजनां रे लाल, भवसागरमांहे सेतु रे ॥वा०॥ तु० ॥७॥

अर्थः—ते माटे आत्म सिद्धिरूप जे कार्य,

ते करवाने सहज अकृत्रिम ( नियामक ) निर्धार, (हेतु) कारण जे श्रीवीतराग देव तेने पामीने निश्चें भव्यजीवने मोक्ष नीपजे, ए निर्द्धार थयो (नामादि) नाम निक्षेपादि ते अरिहन्त एवुं नाम तेने श्रवणें, उच्चारणें, स्मरणें करी पण अनेक जीव गुणावलम्बी थइ समकितादि गुण पामीने सिद्ध थया. तथा श्री अरिहन्तनी स्थापना जे मुद्रा समतानो समुद्र, विषय विकार रहित, अतिशयसम्पन्न, एवी जिनस्थापना देखी योग थम्भे गुणीने अवलम्बे स्वगुणावलम्बी थइ अनेक जीव सिद्धि पाम्या, तथा श्री परम प्रभुनो द्रव्य निक्षेपो ते विचरतां शरीर धारी जिनराज, तेना विहार उपदेश समवसरण देखी अद्भूतताने अवलम्बी, गुणावलम्बी थइ अनेक जीव स्वधर्मसम्पदा वरी

सिद्धि पाम्या तथा अरिहन्तनो भावनिक्षेपो ते अरिहन्त द्रव्यना गुण जे केवलज्ञानादि तथा पर्याय ते अगुरुलघुतादि तेनी अनन्त परिणतिनुं जे भासन, श्रद्धान तथा ( रमण ) पोतानुं तत्व तेने अवलम्बतां अनेक जीव मोक्षरूप लक्ष्मी पाम्या; माटे ए श्री अरिहन्तना जे नामादि चार निक्षेपा छे, ते भवरूप महा समुद्र मध्ये ( सेतु ) माहोटा (पाज) पूल समान छे. माटे प्रभुना नामादि चार निक्षेपाने अवलम्बीने आत्मासिद्धि करवी ॥ ७ ॥ इति सप्तम गाथार्थः ॥

स्थंभन इन्द्रिय योगनो रे लाल रक्त वर्ण गुण राय रे ॥ वा० ॥ देवचन्द्र वृन्दे स्तव्यो रे लाल आप अवर्ण अकाय रे ॥ वा० ॥ तु० ॥ ८ ॥

अर्थः—वली श्रीपद्मप्रभ स्वामीनुं रक्तवर्ण शरीर ते सर्व जीवना इन्द्रिय तथा योगनुं स्थंभन छे, एटले इन्द्रियो वर्णादिने अवलम्बीने रहे माटे प्रभुजी राते वर्णे छे, गुणगाम्भिर्यादि ना राजाः छे, देव जे धर्म देव ते साधु, नरदेव ते चक्रवर्ती, भावदेव ते भवनपति प्रमुख, तेमां चन्द्र समान, वली इन्द्र गणधरादि तेना (वृन्द)समूह, तेणे स्तव्यो, पण प्रभु केवा छे ? अवर्ण अगन्ध, अरस, अफरस, एवा अकाय (शरीर रहित) छे, एटले भावकर्म, द्रव्यकर्म, नोकर्मरहित छे, सकल पुद्गलातित छे, एवा श्री पद्मप्रभ देव ते मने आधारभूत छे, परम-शरण छे, एना निमित्ते परम पद नीपजे ॥ ८ ॥ इति अष्टम गाथार्थः ॥

॥ इति षष्ठ पद्मप्रभाजिन स्तवनं सम्पूर्ण ॥

## ।अथ सप्तम श्री सुपार्श्वजिन स्तवन।

हवे श्रीसुपार्श्व प्रभुने सहजधर्मरूप तत्व सम्पदापणे स्तवे छे. जगतना जीव पुद्गलानन्दी छे, ते नवा पुद्गलने लईने आनन्द पामे छे, पण ते पुद्गलसंयोगजन्यसुख, तथा दुःख ते आत्महित नहि, विभाव छे माटे. अने जे आत्मानुं सहज सुख ते आत्मधर्म छे ए रीते आगममध्ये उपदेश छे, ते कहे छे जे आत्माना अनन्त गुण छे, ते गुणगुणनुं सुख जुदुं जुदुं छे, अने एक अव्याबाध सुखरूप आत्मधर्म पण जुदो छे, एक एवी व्याख्या छे तथा आत्माना ज्ञान दर्शनरूप गुण, ते मूलगुण छे, अने वीर्यादिक सर्व ते गुणनी प्रवृत्तिरूप धर्म छे. एक एवी पण व्याख्या छे, अने १ ज्ञान, २ दर्शन, ३ चारित्र, ४ दान, ५ लाभ, ६

भोग, ७ उपभोग, इत्यादिक अनन्त गुण आत्माने विशे छे, तथा विशेष्यावश्यकमांहे कह्युंछे.

"क्षायिक सम्यत्त्व केवलज्ञान केवलदर्शन सिद्धत्वानि पुनः सिद्धावस्थायामपि भवन्ति अन्ये तु दानादिलब्धिपञ्चकं चारित्रासिद्धस्यापीच्छन्ति तदावरणस्य तत्राप्यभावात् आवरणाऽभावेपि च तदासत्त्वे क्षीण मोहादिष्वपित दसत्त्वप्रसङ्गात् ततस्तन्मते चारित्रादीनां सिद्धावस्थायामपि सद्भावः पुनस्तत्वार्थे पुनर प्यादिग्रहणं कुर्वन् ज्ञापयाति ॥ अत्राऽनन्त धर्मात्मकतयाऽशक्याः प्रस्तारयितुं सर्वे धर्माः प्रतिपदमप्रवचनज्ञेन तुं पुंसा यथा संभवमायोजनीयाः क्रियावत्त्वं पर्यायोपयोगिता प्रदेशाष्टक निश्चलता एवं प्रकाराः सन्ति भुयांसः। अपि समुच्चये। एवं प्रकारा अनादिपा-

रिणामिका भवन्ति जीवस्य भावाः ।

इहां जीवने विशे अनन्ता धर्म जुदा जुदा कह्या, तथा रत्नाकरावतारिकामध्ये सप्त भंगय धिकारे ।

नन्वेकस्मिन् जीवादौ प्रतिवस्तुन्यनन्तधर्मात्मकत्वे नानन्तधर्मवत्त्वमेव । स्याद्वादरत्नाकरे । एकत्र वस्तुन्येकैकधर्मपर्यायानुयोग वशादविरोधेन व्यस्तयोः समस्तयोश्च विधिनिषेधयोः स्यात्काराङ्कितः सप्तधा वाक्प्रयोगः सप्तभङ्गीति । नन्वेकस्मिन जीवादि वस्तुन्यनन्ता विधीयमान निषिद्ध्यमानानानाधर्माः स्याद्वादीनां भवेयुः । वाच्येयता यत्त्वाद्वाचकेयतायाः तत्ताविरुद्धैव सप्तभङ्गीति ब्रुवाणं निरस्यति । एकत्र वस्तुनि विधीयमान निषिध्यमानानन्त धर्माऽभ्युपगमेनानन्तभङ्गी प्रसक्तैव सप्तभङ्गी

ति न चेतसि निधेयमिति अत्रहेतुमाह ॥ विधि निषेधप्रकारापेक्षया प्रतिपर्यायवस्तुन्यनन्तामपि सप्तभङ्गीनामेव संभवादिति तथा प्येकैक पर्यायमाश्रित्य विधि निषेधाविकल्पाभ्यां न्यस्त- समस्ताभ्यां सप्तैव भङ्ग्यः संभवति न पुनरन- न्तास्तत्कथमनन्तभङ्गी प्रसङ्गादिसङ्गतत्वं स- प्तभङ्ग्याः समुद्भाव्यते कुतस्तस्तथैव भङ्गाः सं- भवतीत्यत्राहुः । प्रतिपर्यायं प्रतिपन्न तु प- र्यनुयोगानां सप्तानामेव सभादिति अनन्तधर्मा- पेक्षया सप्तभङ्गीनामानन्त्यं यदा याति तद- भिमतमेव ॥

एटले वस्तु विशे धर्म अनन्ता छे. इहां कोइ कहे के धर्म तथा गुणवस्तु जुदी छे, ते अजाण छे, केमके नाम भेद अंशभेदपणुं तो शब्दादिक नय सर्व माने छे, घटकुंभादिने

विशे एक वस्तुना समयीपर्यायमां पण नाम भेदे भेद कहे छे, ए रीते गुणशब्द तथा धर्म शब्दनो भेदार्थ छे, पण विशेष रीते गुण अने धर्म ए बन्ने एकज छे, श्री विशेषावश्यके,–

"जह सो विसेस धम्मो,
चेयण तह मया किरिया"

इहां चेतनागुणने ध कही बोलाव्यो छे. वली भाष्यने विशे कह्युं छे केः–

ननु गुणस्वभावयोर्भेदएव तद्भेदनिबन्धनधर्म भेदाभावात् ॥

वळी कह्युं छे के.

हवे भेद गुणना भांखीजे,
तिहां अस्तिकता लहियें जी ॥

ए पाठ द्रव्यगुणपर्यायना रासमां यशोविजयजी उपाध्यायें पण अस्तिता धर्मने गुण कह्यो छे. वली सिद्धान्तमां पण उपयोगादिक अव्याबाध तथा अवन्नआदि अनेक गुण कह्या छे

तथा तत्वार्थमां

मुक्त आत्मा निष्क्रियः

तथा

क्षायिकसम्यक्त्ववीर्यसिद्धत्वदर्शनज्ञानैरात्यन्तिकैः संयुक्तोनि र्द्वंद्वेनापि सुखेन तथाऽस्तिकायत्वगुणवत्त्वानादित्वासंख्येयप्रदेशवत्त्वनित्यत्वादयः संत्येव जीवस्य.

यद्यपि भगवतीसूत्रमां सिद्धने अवीर्या तथा अचारित्रिया कह्या छे, तेतो करणरूप चलवीर्यनी अपेक्षायें कह्या, पण तेज श्री अनु-

योगद्वारमां क्षायिकलब्धि अधिकारें तथा प-न्नवणासूत्रमां वीर्य ते जीवलक्षण छे, एम कह्युं छे. तथा चारित्र प्रवृत्तिरूपनी ना छे, पण स्थिरतारूपचारित्र तेतो जीवनुं स्वलक्षण छे, ते उत्तराध्ययनना अठ्ठावीशमा अध्ययनथी जोवुं, तथा वसुदेवहिंडमध्ये, वली श्रीपालच-रित्रमध्ये सिद्धस्तुति अधिकारे कह्युं छे

॥ गाथा ॥

जे णंत गुणा दुगुणा,
इगतीस गुणा य अहव अठ गुणा ॥
सिद्धाणंत चउ[illegible]ा,
ते सिद्धा दिंतु मे सिद्धिं ॥ १ ॥

तथा बृहद्कल्पभाष्ये ॥

॥ गाथा ॥

दव्वेण जीवदव्वं,
संखातीतपदे समोगाढं ॥
काले अणाइणिहणा,
भावेणाणाइया णंता ॥ १ ॥

एम द्रव्यार्णव तथा आप्तमीमांसादि अनेक ग्रंथोमां कह्युं छे, माटे आत्मानी ज्यारे भेदव्याख्या करियें, त्यारें गुण अनन्ता, एक एक गुणने विशे अविभाग अनन्ता, एक एक अविभागने विशे अनन्ता पर्याय, ए कम्मपयडीने विशे व्याख्या देखाय छे, अने तेज अविभाग तथा पर्यायनुं एकपणुं पण श्रीभगवतीनी टीकामां देखाय छे. अने संक्षेप व्याख्यायें गुणपर्याय बन्नेने एक पर्यायास्तिक

कही बोलाव्या छे, एम मतिविभ्रम टालीने श्रद्धा राखवी. अहीं श्री अरिहन्त द्रव्यने विशेषे ओलखाववा निमित्तें गुणगुणनी जुदी जुदी व्याख्या जणाववा माटे तथा पोतानी सत्तानी रुचि प्रगट करवा माटे गुणगुणनो जुदो जुदो धर्म कही स्तवना करियें छयें. ए प्रशस्ति थइ.

॥ हो सुन्दर तप सरिखुं जग कोइ नहीं ॥

॥ ए देशी ॥

श्रीसुपास आनन्दमें, गुण अनन्तनो कंन्द हो ॥ जिनजी ॥ ज्ञानानन्दें पूरणो, पवित्र चारित्रानन्द हो ॥ जि० ॥ श्री० ॥ १ ॥

अर्थः—श्री सुपार्श्वप्रभ आनन्दमयी छे, शुद्ध आनन्द ते एने विषे छे, जेमां परनो भेळ नथी,

स्वरूप सुख छे, वळी सुपार्श्वप्रभु केवा छे? के गुण जे सहभावी अथवा 'द्रव्याश्रिता निर्गुणागुणा' एटले द्रव्य जे समुदाय तेने आश्रि रह्या ते गुण, पण तेमां अन्य गुणपणुं नहीं, गुणमध्ये तो पर्याय छे. ॥

॥ सव्वे सपज्जवा गुणा ॥

इति कल्पभाष्यवचनात् ॥ तथा

अपज्जवे जाणणा नत्थि ॥

॥ इति आवश्यकनिर्युक्तिवचनात्

माटे गुणने विशे पर्याय छे, पण गुणने विशे अन्य गुण नथी, श्रीनयचक्रमां कहे छे के गुणने विशे अन्यगुण पणुं होय तो गुण ते द्रव्यपणुं पामे, तेमाटे गुण ते निर्गुण छे, एटले सुपास प्रभुरूप द्रव्य छे, ते ज्ञानादिक

अनन्त गुणनो कन्द छे, एटले मूल छे.त्यां ज्ञान जे आत्मानो विशेषानवबोधरूप सकल विशेष धर्म गुणपर्याय, तेनी (अनन्ती)परिणाति तेनो ज्ञायक नित्यानित्यादि अनन्त धर्मनुं ज्ञायकत्व, वेत्तृत्व, अगुरुलघुत्व अन्तपर्यायनो पिण्ड, ते ज्ञानगुण ते लोकालोक सकल प्रत्यक्षरूप सर्वप्रदेशनिरावरणरूप, तेने आनंदे करी (पावनो) पवित्र छे, पूर्ण छे. वली कषाय तथा पुद्गल फल आसंशारूप दोषरहित एवुं स्वरूप स्थिरतारूप जे चारित्र, अनन्तपर्यायात्मक, अकषायता, अवेदता, असङ्गता, परमक्षमा, परममार्दव, परमआर्यव, (परम आर्जव) परमनिर्लोभतारूप, स्वरूप एकत्वरूप चारित्रधर्म, असङ्ख्यात प्रदेशें व्यापकपणे रह्यो छे,तेनो आनन्द, हे श्रीसुपास प्रभु त्हारे विषेछे,एटले चा-

रित्रानन्दमयि छो, ते माटे पवित्र निर्मल छो ॥ १ ॥ इति प्रथम गाथार्थः ॥

**संरक्षण विण नाथ छो, द्रव्य विना धनवन्त हो ॥ जि० ॥ कर्त्तापद किरिया विना, सन्त अजेय अनन्त हो ॥ जि० ॥ श्री० ॥ २**

अर्थः—वली हे प्रभु ! तमें संरक्षण विना (नाथ) धणी छो, एटले कोई अन्य जीवनी तथा अन्य द्रव्यनी रखवाली करता नथी, केम जे संरक्षणपणुं करवुं ए तमारो धर्म नथी, माटे कोईना तमें रक्षक नथी, पण शरण त्राण आधाररूप छो, मोक्षना हेतु छो, तथा नाथ छो; वली द्रव्य जे धन, कञ्चन, परिजन, गण, मंदिरादि, सर्व परिग्रह रहित छो, तोपण ज्ञा-

नादि स्वगुण पर्यायरूप अनन्त धन, श्रीप्रभुनी पासें छे, माटे धनवन्त छो. वळी हे प्रभु ! तमारे विशे कर्त्ता पद, (कर्त्तापणुं) छे, पण गमन परिसर्पणादि क्रिया विना कर्ता छो, एटले बीजाने कर्त्तापणुं ते क्रियाथकी होय छे, अने तमे तो अक्रिय छतां गमनपरिसर्पणादि क्रिया विना पण कर्त्ता छो, "मुक्तआत्मानिःक्रिय," एम तत्त्वार्थटीकामां कह्युं छे. वळी हे प्रभुजी ! तमें सन्त छो, उत्तम छो, तत्परिणाम रहित छो, (अजय) राग द्वेष परिषह वैरीए अजेय छो, वळी कोई काळें विणसो नहीं, माटे अनन्त छो, अथवा अनन्तपर्याय माटे अनन्त छो ॥ २ ॥ इति द्वितीय गाथार्थः ॥

**अगम अगोचर अमर तुं, अन्वय रुद्धि समूह हो ॥ जि०॥ वर्ण गन्ध**

रस फरस विणु, निजभोगी गुण-
व्यूह हो ॥ जि० ॥३॥

अर्थः—वली हे प्रभु! तमारुं स्वरूप तुच्छ ज्ञानी जाणी शके नहीं, माटे अगम छो. वली हे प्रभु! तमें इन्द्रियगोचर नथी, माटे अगोचर छो. वली आयुःकर्मना क्षयथी प्राण वियोग थाय ते मरण, ते तमे प्राण तथा मरण रहित छो, माटे हे प्रभु! तमें अमर छो. वली हे प्रभु! तमें ( अन्वय ) सहजना व्यापक पोताना ज्ञायकादिक गुण, तेनी प्रवृत्तिसहित जे ज्ञान, दर्शन, चारित्र, वीर्यादिक गुण, ते अन्वयी गुण ते ज रिद्धि सम्पदा तेना समूह छो, अने कषायादि दोषने टलवे करी जे अकषायादि गुण उपज्या, ते व्यतिरक गुण तथा साति सद्भावो एटले जे छते पामियें, ते अन्वयी गुण तेना स-

मूह छो. वली वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, ते पुद्ग-लधर्म छे, तेथी तमें राहित छो, अने ( निज ) पोतानो जे स्वरूप धर्म, तेना भोक्ता छो, गुणना (व्यूह) समूह छो ॥ ३ ॥ इति ॥

**अक्षय दान अचिन्तना, लाभ अयत्नें भोग हो० जिन० ॥ वीर्य शक्ति अप्रयासता, शुद्ध स्वगुण उपभोग हो जि० ॥ श्री० ॥४॥**

अर्थः—वली हे प्रभुजी! तमारा अनन्ता गुणनी प्रवृति केवी रीतें छ? ते कहे छे. वीर्यगुण ते सर्वगुणने सहकार दिये सहाय आपे छे तेम ज्ञान गुणना उपयोग विना वीर्य स्फूरी शके नहीं, तेथी वीर्यने सहाय ज्ञानगुणनुं छे, तथा ज्ञानमां रमण ते चारित्रनुं सहाय छे, अने

पररमण न करे, ते चारित्रने ज्ञाननुं सहाय छे. एम एक गुणने अनन्त गुणनुं सहाय छे. हवे जे गुण सहाय आपे छे, ते तो आत्माना गुणमां दानधर्म छे, एम हे प्रभुजी ! तमे प्रतिसमय अनन्त स्वगुणसहायरूप दान ते अनन्तु द्यो छो, पण कोई वखत क्षय पामो नहीं. बीजा जगत्‌मां दानना आपनार केटले काले क्षय थइ जाय अने तमे सादि अनन्त काल स्वाधीनपणे स्वगुणरूप पात्रने अनन्तु अक्षयपणे द्यो छो, पण कोई वखत क्षीण न थाओ माटे अक्षय थका दान आपो छो. एवो दानगुण तमारे विषे, छे अने जे गुणने जे गुणनी सहायरूप शक्तिनी प्राप्ति, ते लाभ छे, बीजाने जे चिन्तवे, ते लाभ थाय ते पण निर्धार नहीं, अने हे प्रभुजी ! तमारे विषे चित्तना विकल्प रूप

जे लाभार्थीपणुं ते नथी, तोपण लाभ अनन्तो छे, माटे अणचिन्त्या लाभना धणी छो, एवो लाभगुण छे. वली हे प्रभुजी ! तमें पोताना पर्यायने प्रतिसमयें भोगवो छो, पण प्रयास विना भोगवो छो, माटे तमें यत्नाविना प्रयत्नविना भोगमयि छो, जीवना सर्व गुणनी जे प्रवृत्ति तेनुं सहाय जे वीर्य, ते अनन्तु अन्य सहाय विना स्फूरी रह्युं छे, पण ते वीर्यनी स्फूर्णा, विना प्रयासें एटले उद्यम विना वीर्य स्फूरं छे, वली शुद्ध (स्वगुण) स्वाभाविक जे स्वगुण तेनो उपभोग छे, ए पांच अन्तरायनी प्रकृतिना क्षय थयाथी पांच गुण प्रगट्या छे, एटले हे प्रभुजी ! तमने स्वरूपनुं दान, स्वरूपनो लाभ, स्वपर्यायनो भोग, स्वगुणनो उपभोग, स्वसर्वपरिणति सहकार शक्ति, ते वीर्य,

ए रीते धर्म प्रकट थया छे ॥४॥ इति गाथार्थः॥

**एकान्तिक आत्यन्तिको, सहज अकृत स्वाधीन हो ॥ जि० ॥ निरुपचरित निर्द्वन्द्व सुख, अन्य अहेतुक पिन हो ॥ जि० ॥ श्री० ॥ ५ ॥**

अर्थः—वळी हे प्रभुजी ! तमने जे सुख प्रगट्यां छे, ते सुख केवां छे ? ते (एकान्तिक) एकलुं सुख, जे पाछो दुःख पामे नहीं, वळी ( आत्यन्तिको ) जेथी बीजुं वधारे सुख कोइ नथी, एटले सर्वथी अधिक ते पण ( सहज ) स्वभावनुं ( अकृत ) अणकीधुं पण कोइनुं करेलुं नहीं, वळी ते पोताने स्वाधीन पोताने वश पण पराधीन नहीं. वळी ( निरुपचरित ) जे उपचाररूप नहीं, अछतो आरोप ते उपचार,

ते सहज सुखमां उपचारपणुं नथी, संसारमां शातावेदनीनुं सुख, ते उपचारित सुख छे, केमके शातामध्ये सुखधर्म नथी, पण अज्ञानना कारणथी संसारी आत्मा सुख माने छे, पण ( वडेरा ) विद्वानो सुख कहेता नथी, जे संसाराभिनन्दीमां मूढ, परमार्थने अजाणता विषय गृद्ध थका इन्द्रियदेहजनित विषयसुखने सुख माने छे, ते जातें सुख नहीं.

॥ यतः ॥

विसयसुहं दुक्कं चियं,
दुक्क पडियारउ तिगछंव ॥
तं सुयमुवयाराउ,
न उवयारो विणा तच्चं ॥ १ ॥

इति विशेषावश्यक ॥

तथा शातानो उदय, ते पण स्वधर्मरोधक छे, अने पुद्गल कर्मनो विपाक छे माटे ते सुख नहीं ॥

॥ गाथा ॥

सायासायं दुक्खं,
तव्विरहंमि य सुहं जओत्तेणं ॥
देहिं दियेसु दुक्खं,
सुक्खं देहिं दिया भावो ॥ इति ॥१॥

एम औदायिक सुख, ते सुख नहीं, अने जे सिद्धनिरूपम अनन्त आत्मस्वभाव प्राग्भाव भोक्तापणे तेज सुख जाणवुं. वली (निर्द्वंद्व) जेमां अन्य जीव तथा अजीव द्रव्यनो संयोग नहीं, एटले परवस्तुनो भेळ नथी. कदापि परवस्तुनुं कारण पामीने उपज्युं होय ?

त्यां कहे छे के ते सिद्धसुख केवुं छे, के (अन्य) बीजा द्रव्यनुं हेतुपणुं जेमां नथी. वली (पीन)पुष्ट छे,मबल छे, माटे श्री सुपार्श्वजिननुं जे आत्मिक सुख ते महानन्द छे ॥ ५ ॥ इति पञ्चम० ॥ गाथार्थः ॥

एक प्रदेशें ताहरे, अव्याबाध समाय हो ॥ जि० ॥ तसु पर्याय अविभागता, सर्वाकाश न माय हो ॥ जि० ॥ श्री० ॥ ६ ॥

अर्थः—वली हे प्रभु ! तमारा आत्माना एक प्रदेशने विशे अनन्त गुण, अनन्त पर्याय छे, तेमां हे प्रभुजी ! त्हारे एक प्रदेशें जे अव्याबाध गुण समाइ रह्यो छे, ते अनन्तो छे, ते अव्याबाध सुखना पर्याय तेना अविभाग ते

केवलीनी बुद्धियें जेना एक खण्डना बे खण्ड न थाय, ते अविभाग, ते अविभाग लोक तथा अलोकाकाशना एकेका प्रदेशें एकेको सुखनो अविभाग राखियें, तोपण ( सर्वाकाश ) लोक अलोकरूप सर्व आकाशमां समाय नहीं, एटले आकाशना प्रदेशथी पण तमारे एक प्रदेशें रह्युं जे अव्याबाध सुख, तेना अविभाग अनन्त गुणा छे ॥ यतः ॥

खित्ताउ ज्ञावधम्मा अणंतगुणा

॥ इति ॥

सदा क्षेत्रधर्मथी भावधर्म अनन्त गुणा छे ।६॥ इति ॥ षष्टम गाथार्थः ॥

एम अनन्त गुणनो धणी, गुण गुणनो आनन्द हो ॥ जि० ॥ ज्ञो-

गरमण आस्वादयुत, प्रभु तुं परमानन्द हो ॥ जि० ॥ श्री० ॥ ७ ॥

अर्थः–( एम ) ए रीतें हे प्रभुजी ! तमें अनन्त गुणना धणी छो, ज्ञान, दर्शन, चारित्र, वीर्य, अव्याबाध, अमूर्त्तता, अगुरुलघु, दान, लाभ, भोग, उपभोग, कर्त्ता, भोक्ता, पारिणामिकता, अचल, अविनाशी, अनन्त, अज, अनाश्रयी, अशरिरी, अणाहारी, अयोगी, अलेशी, अवेदी, अकषायी, असंख्यप्रदेशी, अचल, आक्रिय, शुद्धसत्ताप्रागभावरूप, नित्य, आनित्य, एक, अनेक, सत्, असत्, भेद, अभेद, भव्यत्व, अभव्यत्व, सामान्य, विशेष, इत्यादि अनन्त अनन्त गुण पर्यायरूप धर्मना धणी छो. ते गुण गुणनो जुदो जुदो आनन्द

छे, त्यां दृष्टान्त कहे छे. जेम संसारी जीवने धननुं सुख भिन्न, रूपनुं सुख भिन्न, भोजननुं सुख भिन्न, देखवानुं सुख भिन्न, स्थानकनुं सुख भिन्न तेम सिद्ध आत्माने पण गुण गुणनुं सुख भिन्न भिन्न छे, तेथी अनन्तो अनन्त रीतें आनन्द छे, एटला सर्व गुणनो आनन्द छे, ते सर्वनो भोग पण छे, केमके भोगव्या विना आनन्द थतो नथी, एटले अनन्ता गुणना आनन्दनो भोग अनन्तो छे, तेमज ते सर्व गुणने विशे अनन्तु रमण पण छे, तेम अनन्ता आस्वाद पण छे, केमके अनन्ता गुणने आस्वादीने भोगी थयो थको आनन्दने विलसे छे, माटे अनन्तो आस्वाद पण छे, तेथी हे प्रभु! तमें परमानन्द छो. इहां गुणगुणीनो अभेद उपचार बोलाव्यो, जे

परमानन्दमायि तेज परमानन्द, एवा परमदेव छो ॥ ७ ॥ इति सप्तम गाथार्थः ॥

**अव्याबाध रुचि थइ, साधे अव्याबाध हो ॥जि० ॥ देवचन्द्र पद ते लहे, परमानन्द समाध हो ॥ जि० ॥ श्री० ॥ ८ ॥**

अर्थः—एवा परमानन्दरूप अव्याबाध सुख श्रीपरमात्मप्रभुने विशे छे ते में निर्धार कर्यो, त्यारें जाण्युं के जेवुं अव्याबाध सुख श्री सुपार्श्वप्रभुने विशे छे, एहवुंज सुख म्हारे विशे पण छे, एवुं जाणपणुं प्रगटयुं, तेथी भव्य जीवने उपयोग आव्यो, हुंपण ज्ञानादि अनन्त गुणीछुं, हवे म्हारे शुद्धानन्द भोग केवारें प्रगटे? एवा उपयोगें जे जीव ज्येष्ठ महिनामां जेम बपैयो तृषा-

तुर थइने वरसादने अभिलाषें वरते, तेनी पेठें जे जीव, अव्याबाध सुखनो रुचि अभिलाषी थइने पुद्गलसंयोगजन्य जे सुख तेतो विषभक्षण समान आत्मस्वरूपनां घातक जाणीने तेथी उभग्यो थको एक आत्मानन्द केवारें प्रगटें? एवा परिणामे वर्ते, पछी तेना साधक जे मुनिराज तेनां चरण सेवतां उदासीन थइने साधे, (निपजावे), आत्मिक अव्याबाध सुख प्रत्यें. एटले उत्तम जीव स्याद्वाद आगम श्रवण करी पांच आश्रवथी विरमी शुद्धसंयमी थइ, देह निस्पृही थइ मोक्षने साधे.

गाथा. उक्तं च

पंचासव्व विरता,
विसय विजुत्ता समाहि संपत्ता ॥

राग दोस विमूत्ता,
मुणिणो साहंति पर मह्वं ॥१॥
आउस्स खीणमाण,
सुप्पाण वियोगे त्रि जे समाहिपया॥
सावय दह्ववयावि हु,
मुणिणो साहंति परमह्वं ॥ २ ॥

एवा मुनिराज त्रिकाल विषयना अवांछक, तत्वगवेषी, तत्वरासिया, तत्वानन्द रुचि, पोतानुं तत्व, अनादिनुं कर्मसङ्गे दबाणुं ते प्रकट करवा माटे सकल पुद्गलभावथी विरक्त थइने जे आत्मा निपजावे छे, ते जीव, निमित्तावलम्बनी थइ स्वरूपावलम्बन करतां स्वरूपमध्ये एकत्व पामीने क्षपकश्रेणि आरोहण करी घनघाति कर्म खपावीने सयोगी केवली थइ, पछी

शैलेशीकरण करी निःकर्मा थइने देव जे धर्मदेव मुनिराज, तेमां चन्द्र समान एवुं सिद्ध पद ते जीव पामे, जेमां परमानन्दनी समाधि छे, अने सकर्मारूप अवस्था ते महाव्याधि छे, माटे निरावरण निःकर्मावस्था ते परम समाधिरूप छे, ते अवस्था श्रीसुपार्श्व परमात्माने अवलम्बतां जीव पामे, माटे श्री सुपार्श्व प्रभुनी सदा सेवना करवी. एज आधार, त्राण, शरण छे ॥ ८ ॥

इति अष्टम् गाथार्थ

---

## ॥अथअष्टमश्रीचन्द्रप्रभजिनस्तवन॥

॥ श्री श्रेयांसजिन अन्तरजामी ॥ ए देशी ॥

श्रीचन्द्रप्रभ जिनपद सेवा, हेवायें जे हलिया जी ॥ आतमगुण

अनुभवथी मलिया, ते भवभयथी टलिया जी ॥ श्री० ॥ १ ॥

अर्थः—हवे श्रीचन्द्रप्रभ भगवान्नी स्तवना कहे छे. अने सेवना पण ओळखावे छे, ते श्री चन्द्रप्रभनामा आठमा प्रभुजी(पद)चरणनी सेवा अथवा अरिहन्तपदनी सेवना तेनी जे (हेवा) चाल रीत; तेमां जे (हलिया) तेवी टेव पडी छे, तेने प्रभुसेवन विना काल जाय नहीं, जेने असङ्ख्यात प्रदेशें श्रीप्रभु परमात्मा परमपूज्यनुं आराध्यपणुं छे, ते जीव आत्मा चेतना लक्षण असङ्ख्यात प्रदेशें स्वधर्मना कर्त्ता, स्वधर्मना भोक्ता, पोताना गुण ज्ञानदर्शनादि, तेनुं (अनुभव) भोगववुं, तेथी मल्या छे, एटले आत्मगुणभोगी थाय छे, तेज जीव (भव चार गतिरुप संसार तेनो जे भय, जन्म मरण स्व-

रुपरोधक कर्माधीनतारुप तेथी टल्या छे, एटले यथार्थ रीतें जे परमात्माने सेवे, ते अवश्य असंसारी थाय; तेमाटे टलवा योग्य थया ते टल्या ए न्यायें, हर्षनुं वचन छे, जो कारण मले, तो कार्य नीपजे. तेम उत्तम जीव अरिहन्त सेवन परिणम्या प्रभु मल्याना हर्षे संसार समुद्रने (गोपद) गायनी खरी समान माने छे ॥ १ ॥ इति प्रथम गाथार्थः ॥

**द्रव्यसेव वन्दन नमनादिक, अर्चन वली गुणग्रामो जी ॥ भाव अभेद थावानी इहा, परभावें निःकामो जी ॥ श्री० ॥ २ ॥**

अर्थः—ते सेवना चार प्रकारनी छे. १ नामसेवना, २ स्थापनासेवना, ३ द्रव्यसेवना,

४ भावसेवना. तेमां नाम तथा स्थापना, ए बे सेवना तो सुगम छे, अने द्रव्य निक्षेपाना बे भेद छे. एक आगमथी द्रव्यनिक्षेपो, अने बीजो नोआगमथी द्रव्यनिक्षेपो, त्यां जे आगमथी द्रव्यनिक्षेपो, ते तो जे सेवनापदनो अर्थ विधि जाणे, पण ते काळें ते अर्थनो उपयोग नथी, ते आगमथी द्रव्यनिक्षेपो कहेवाय छे. ।

" अणुवउगो दव्वं " ॥

इति अनुयोगद्वार वचनात्.

हवे बीजो नोआगमथी द्रव्यनिक्षेपो, तेना त्रण भेद छे, ज्ञशरीर, भव्य शरीर, अने तद्व्यतिरिक्त, त्यां जे जे सेवना भावरूपें परिणम्या हता, पण प्राणमुक्त थया. तेनां शरीर, ते ज्ञशरीर, द्रव्य निक्षेपे छे, ए पहेलो भेद. तथा जे जीव हमणां

तो सेवनापणे परिणम्या नथी, पण अनागत कालें भावसेवनापणे परिणमशे, ते भव्यशरीर द्रव्यनिक्षेप ए सर्व द्रव्यनिक्षेप ते नैगमनयनें मतें छे, ते बीजो भेद. तथा जे सेवनानी प्रवृत्ति अन्तरङ्ग भावसेवनाने कारणपणे वर्ते, ते तद्व्यतिरिक्त द्रव्यनिक्षेप सेवना ए त्रीजो भेद कह्यो.

तेमां जे योगनी वन्दन नमनादिक प्रवृत्ति ते व्यवहारनयें द्रव्यसेवना, अने जे अन्तरङ्ग विकल्पें बहुमानादि ते रुजुसूत्रनयें द्रव्यसेवना. ए रीतें द्रव्यसेवनानुं स्वरूप कह्युं, एटले जे अरिहन्तना चार निक्षेपरूप कारण दृष्टिगोचर, श्रवणगोचर, स्मरणगोचरपणुं पामीने जे जीव वन्दन, करजोडन, नमन, (मस्तक नमाववुं,) इत्यादि अभ्युथ्थान अञ्जालि, आधिनतादि

करण, चन्दन पुष्पादिक वडे करीने अर्चन, वली गुणग्राम जे मुखथी मधुर ध्वनियें गुण कहेवा, ते द्रव्यसेवा जाणवी, अने जे आत्मा संसार पराङ्मुख अरिहन्तना गुणनुं अत्यन्त बहुमान, असङ्ख्यात प्रदेशें अरिहन्तनी अरिहन्ततानुं आश्चर्यता (अद्भुतता), तथा अरिहन्त निमित्तना विरहें अक्षमता, अने अरिहन्त ईहा रूप परिणाम तेथी (अभेदपणे थवानी) भावपणे निपजाववानी ईहा, ते द्रव्यसेवा लेखे छे, परन्तु भावरुचिपणा विना द्रव्यप्रवृत्ति ते बालक्रीला समान छे, ते माटे इहां कह्यो जे भाव तेथी अभेद थवानी ईहा सहित जे सेवा ते द्रव्यसेवा जाणवी, वली द्रव्यप्रवृत्ति विना एकला भावधर्मने पण तत्त्वार्थ टीकामां आचार्ये साधन कह्युं छे. तथा सम्मतिग्रंथे।

चरण करण प्पहाणा,
ससमय परसमय मुक्कवावारा ॥
चरणकरणस्स सारं,
नह्नि य सुद्ध न याणंति ॥ १ ॥

नाणाहि उवरतरं,
हीणोवि हु पवयणं पभावंतो ॥
नयदुक्करं करंतो,
सुहुवि अप्पागमो पुरिसो ॥ २ ॥

इत्यादिक वचनें भावधर्म ते मुख्य छे. द्रव्य विना पण भाव ते गुणकारी छे, पण भाव साध्यरुचि विना एकलुं द्रव्य ते कामनुं नथी, ए परम्परा छे. वली परभाव जे आत्म-

धर्मथी अन्य पुण्यबन्ध शुभ कर्मनो विपाक तेनी कामना (अभिलाषा) विना जे द्रव्य सेवना, ते कामनी जाणवी ॥८॥ इति द्वितीय गाथार्थः ॥

**भावसेव अपवादें नैगम, प्रभु गुणने संकल्पे जी ॥ संग्रह सत्ता तुल्यारोपें, भेदाभेद विकल्पें जी ॥ श्री० ॥ ३ ॥**

अर्थः—हवे भावनिक्षेपना बे भेद कहे छे, एक आगम भावनिक्षेप बीजो नोआगम भावनिक्षेप त्यां भावसेवनाना पदना अर्थने जाणीने तेवा उपयोगें प्रवृत्ते, ते पुरुषने आगमथी भावसेवना कहेवाय ए आधाराधेयनो अभेद ग्रही, निक्षेप कर्यो, तथा जे जीव भाव सेवनायें परिणम्या, तेनी भक्ति, साधना,

परिणति, ते नोआगमथी भावसेवना, इहां मूळ वस्तुधर्मे विचारतां आत्मद्रव्यने विशे सेव्य सेवक भाव नथी, सत्तायें सर्वद्रव्य समान छे, अने कोइ द्रव्य कोईनो धर्म लेतां तथा देतां नथी, पण जे संसारी जीव ते अनादिनो अढार पापस्थानकें परिणम्यो, विभावभावित थको कर्ममयी थईने संसारी पुद्गलनो भिखारी तत्वनो चूक्यो, मोहने बन्धीखाने दुःखमयि थयो छे, ते ज्यारे स्वरूपने पामे, त्यारे सिद्ध परमेश्वर थाय. तेतो श्री अरिहन्त निःकर्मा तत्वभोगीने पूज्यपणे अविलम्बतां निपजे, माटे स्वकार्य करवाने जे परमात्मा निष्पन्न सिद्ध तेने निमित्त कारणपणे अवलम्बीने अन्तरङ्ग परिणतिथी सेवे, ते ज्यां सुधी एनी शुद्ध सत्ता सम्पूर्ण पदे न थाय, त्यां सुधी ए सेवक अने

संपूर्ण शुद्धानन्दमयि थया, ते सेव्य जाणवा, ए निमित्तावलम्बी सेवा, ते अपवाद सेवा, अने ते सेवा करतां पोतानुं साध्य निपजाववुं, गुण प्रगट करवा ते उत्सर्ग सेवा कहिये.

॥ उक्तं च ॥

उक्कोसो उस्सग्गो,
जस्स संपुन्न ममलसभ्भावो ॥
अववाउ तस्सहेण,
तव्वुद्धि करो अणेगविहो ॥ इति॥१॥

जे जेनो उत्कृष्टो सम्पूर्ण निर्मल निर्दोष स्वभाव थयो, जेथी आगल बीजी अवस्था नहीं, ते उत्सर्ग अने ए उत्सर्गने निपजाववा

माटे कारणरूप जे मार्ग अंगीकार करवो, ते अपवाद सेवा, इहां सेवा मध्ये जे आत्मसाधन निपजाववाने जे कारण अवलम्ब्यां जोइए, ते सर्व अपवाद तेमां अरिहन्तनी सेवना ते आत्मसाधननुं कारण छे, तेथी ए अपवाद सेवना सात नयें करी सात भेदें सात नयनुं संक्षेपें स्वरूप बतावे छे.

१ अनेके गमाः संकल्पारोपांशाश्रयाद्या यत्र स नैगमः".

अर्थः–ज्यां अनेक नामादि गमा ग्रहवाय तथा संकल्पे, आरोपे, अने अंशें पण वस्तुने माने, ते नैगमनय.

२ "संगृह्णाति वस्तुसत्तात्मकं सामान्यं स संग्रहः"।

अर्थः—जे सर्वने संग्रहे, सर्वनुं ग्रहण करे, वस्तुनी छती सामान्यपणे ग्रहे, ते संग्रहनय

३ " संग्रहगृहीतं अर्थविशेषेण विभजतीति व्यवहारः ।

अर्थः—संग्रहनयें ग्रह्युं जे सामान्य, तेने अंश अंशभेदे जूदुं जूदुं व्हेंचे, ते व्यवहारनय.

४ " रुजु अतीतानागतवक्रत्व-परिहारेण रुजु. " सरल वर्त्तमानं सूत्रयतीति रुजुसूत्रः ।

अर्थः—जे रुजु सरल वर्त्तमान अवस्थाने ग्रहे, अतीत अनागतनी वक्तव्यताने ( लखे ) ध्यान आपे नहि, ते रुजुसूत्रनय.

५ " शब्दार्थरूप तत्तद्धर्मरूपप-रिणतिः इति शब्दः " ।

अर्थः—प्रकृति प्रत्ययादि व्याकरण व्युत्पत्तिए सिद्ध थयेलो शब्द, तेमां जे पर्यायार्थ बोले, ते पणे परिणमे वस्तुने वस्तु माने.

"तत्त्वार्थवृत्तौ" शब्दवशादर्थप्रतिपत्तिरिति शब्द नयश्च शब्दानुरूपं अर्थमिच्छति. ॥

अर्थः—ते शब्दनय कहिये.

६ सम्यक् प्रकारेणार्थपर्यायवचनपर्यायताः सकलभिन्न वचन भिन्नभिन्नार्थत्वेन तत्समुदाययुक्ते ग्राहक इति समभिरूढनयः

अर्थः—जे वस्तुना विद्यमान पर्याय तथा जे नामना यावत् वचनपर्याय छे, ते सर्व शब्दें

भिन्न छे. यथा घट कुंभ इत्यादि. जे शब्दें भिन्न तेहनो अर्थ पण तद्भावरूपपणे भिन्न छे, ते सर्व वचनपर्यायरूपपरिणमती वस्तुने वस्तुपणे ग्रहे, ते समभिरूढनय.

## ७ सर्व अर्थपर्याय स[illegible]कार्यपूर्णत्वेन एवं यथार्थतया भूतः

अर्थः—सर्व अर्थपर्याय अनंता ते स्वधर्म सम्पूर्ण पोतानी क्रिया कार्यपूर्ण जे वस्तुनो धर्म छे, ते तेमज सम्पूर्णपणे थयो, ते एवंभूत नय कहिये.

इहां श्री जिनभद्रगणिक्षमाश्रमणें १ नैगम, २ संग्रह, ३ व्यवहार. ४ रुजु सूत्र. ए चार नयने द्रव्यार्थिकपणे द्रव्यनिक्षेपे मान्या छे, अने शब्दादिक त्रण नयने पर्यायार्थिकपणे भावनिक्षेपें मान्या छे, तथा सिद्धसेन दिवा-

करें आदिना त्रण नयने द्रव्यार्थिकपणे कह्या छे, तथा रुजुसूत्रादि चार नयनें भावपणे कह्या छे जे, वस्तुनी अवस्था त्रण छे, १ प्रवृत्ति, २ सङ्कल्प, ३ परिणति, ए त्रण भेद छे. तेमां जे योगव्यापार सङ्कल्प, ते चेतनाना योग सहित मनना विकल्प, तेने श्री जिनभद्रगणिक्षमाश्रमण प्रवृत्तिधर्म कहे छे. तथा सङ्कल्पधर्मने औदयिक मिश्रपणा माटे द्रव्यनिक्षेपें कहे छे, अने मात्र एक परिणति धर्मने भाव निक्षेप कह्यो छे.

अने सिद्धसेनदिवाकरे विकल्प ते चेतना माटे भावनय गवेष्यो छे, अने प्रवृतिनी सीम, व्यवहारनय छे, अने सङ्कल्प ते रुजुसूत्रनय छे तथा एक वचनपर्यायरूप परिणति ते शब्दनय छे, अने सकल वचन पर्यायरूप परिणति ते

समभिरूढनय छे, तथा वचन पर्याय अर्थ प-र्याय रूप सम्पूर्ण ते एवम्भूत नय छे, माटे ए शब्दादि त्रण नय ते विशुद्धनय छे,भावधर्म मध्ये मुख्यभाव अने ऊत्तर ऊत्तर सूक्ष्मताना ग्राहक छे, ए रीते नयनो अधिकार संक्षेपे कह्यो. हवे ए सातें नये करी अपवाद भावसेवनाना सात भेद कहे छे.

१ श्री अरिहन्त रूप स्वजाति अन्यद्रव्य तेना स्वरूपने चिन्तववे जे चेतनानो अंश प्रभु-ना गुणने अनुयायी सङ्कल्प पहेलां क्यारे पण न थयो हतो, ते सङ्कल्प विषयादिथी निवा-रीने प्रभुगुणे जोडयो, ए निमित्तावलम्बीपणा माटे अपवाद अन्तरङ्ग परिणाम ते भावसेवना सङ्कल्परूप एक गमे माटे नैगमनयें अपवाद भावसेवना. ए आत्मासिद्धि नीपजाववानुं कारण छे.

२ श्री अरिहन्तदेवना निष्पन्न असङ्ख्यात प्रदेश निरावरण सर्व स्वशक्तिने चिन्तवे पोतानी सत्ता पण तेवी विचारे, उभयनो तुल्यारोप करे, अने अणनिपज्यानो पश्चात्ताप करे, निपज्यानुं परमात्मधर्मनुं बहुमान करे, तथा ( भेद ) द्रव्यथी, क्षेत्रथी, कालथी, भावथी श्री प्रभुजी तथा माहरुं द्रव्य भिन्न छे, अने सत्तासाधन अभेद छे, एवा सापेक्षपणे जे बहुमान युक्त सत्ता प्रगट करवानी रुचिवन्तने एवा विकल्प ते सङ्ग्रहनये अपवाद भाव सेवना ॥ ३ ॥ इति तृतीय गाथार्थः ॥

**व्यवहारे बहुमान ज्ञान निज, चरणें जिनगुण रमणा जी ॥ प्रभु गुणआलम्बी परिणामें, रुजुपद ध्यानस्मरणा जी ॥ श्री॥ ॥ ४ ॥**

३ अर्थः—पोताना क्षयोपशमभावि जे ज्ञान, दर्शन, चारित्र, वीर्य, ते मध्यें प्रतिसमयें (भासन) श्री अरिहन्तनी शुद्धस्वरूप सम्पदा, केवल ज्ञानादि अने उपकार सम्पदा जे (देशना) धर्मकथन, ते शुद्ध उपकारीपणुं छे. तथा चोत्रीश अतिशय, पांत्रीश वचनातिशय, आठ प्रातिहार्यरूप सम्पदा, त्यांज उपयोग राखे, अने क्यारे पण श्री प्रभुजीनी प्रभुता विसारे नहीं. बहु मानमध्यें श्री वीतराग ते सर्वथी अधिक म्होटापणे सद्दहे[१], वीर्य ते जिनभक्तिने विशे फोरवे[२], तथा ( चरण ) चारित्र ते श्री अरिहन्तना गुणने विशे रमण एकत्व तन्मयतापणुं पामीने रहे, अहीं जे क्षायोपशमीक आत्मगुणनी प्रवृति भासनादि ते सर्व श्री अरिहन्त

(१) माने. (२) स्फुरावे.

अनुयायि थइ, ते माटे ए व्यवहार नयें अपवाद भावसेवना.

४ प्रभु श्री परमात्मा अयोगी, अलेशी, तेना गुणने ( अवलम्बीने ) आदरीने परिणाम जे अन्तरङ्ग आत्मद्रव्यनी क्षयोपशमीक परिणति सामान्यचक्र भावरूप, तेम तन्मयपणे जे नहीं वीसरे, एवा स्मरणपणे तदुपयोग रहे, ते ज्यां सुधी धर्मध्यानरूपें आलम्बी साधे, त्यां सुधी, रूजुसूत्र नयें अपवाद भावसेवना ते पण आत्मसाधनरूप उत्सर्ग भावसेवा तेनुं कारणपणुं छे. तेथी ए अपवादसेवा कही ॥ ॥ ४ ॥ इति चतुर्थ गाथार्थः ॥

**शब्दें शुक्ल ध्यानारोहण, समभिरूढ गुणदशमे जी ॥ बीय शुक्ल अविकल्प एकत्वें, एवंभूत ते अ-**

ममे जी ॥ श्री० ॥ ५ ॥

५ अर्थः—हवे श्री प्रभुरूप शुद्ध द्रव्यने आलम्बीने जे जीव भावमुनि तत्व रुचि थइ दर्शन ज्ञान, चारित्र, ए रत्नत्रयमायि परिणमीने जे प्रथक्त्व वितर्क सप्रविचा-ररूप शुक्ल ध्यानपणे परिणम्यो, त्यारे ए जीव शब्द नयें भावसेवनावंत थयो, एटले रुजुसूत्र-नयमां तो प्रशस्त औदयिक सहित अरिहन्त गुणनी इष्टतादि परिणामने सहकारें हतो. अने ज्यां शब्दनय थयो, त्यां प्रशस्तालम्बनीनुं कार्य पडे नहीं, साधक जे भव्यजीव, तेना गुण ते सर्व प्रभुगुणथी एकत्र थइ स्वरूप एकत्वता पाम्या शुक्लध्याननी शुद्धताये परि-णम्या, त्यारे शब्दनये, अपवाद भाव सेवना

कहेवाय, अहीं पण निमित्तपूर्वक मण्डाण छे, ते माटे अपवादें भावसेवना कही, अथवा साधनपणा माटे अपवाद कहि बोलाव्यो.

६ ज्यारे साधक जीव दशमे सुक्ष्मसम्पराय गुण स्थाने चड्यो शुक्लध्याનના प्रथम पायाने अन्तें आव्यो, परम निर्मळ भाव वर्यो, ते वेळाएं जेटली आत्मगुणनी साधना करतां योगवीर्यनी सहायें साधकता थाय, ते सर्व अपवादे छे, अने उत्सर्गमार्गे तो योगधर्म पण आत्माने तजवा योग्य छे, ते पण ते काळें साधनारूप छे, ते माटे अहीं कारणिक ग्रह्यो, पण स्वरूपमध्ये नहीं. अने जेटलुं कारणरूप लहियें, ते सर्व अपवाद छे, माटे दशमे गुण स्थाने समभिरूढनयें अपवाद भावसेवना छे ए पण साधकनां आसन छे.

७ ज्यारे शुक्लध्याननेे बीजे पाये एकत्व-वितर्क अप्रविचाररूपें चडयो भाव मुनिपणानी निर्विकल्प समाधि ( वर्यो ), पाम्यो स्वरूप एकत्वें परिणम्यो, त्यारे साधनानुं पूर्णपणुं थयुं. ते माटे एवम्भूतनय सेवना थइ. तो कोइ पूछे जे अयोगी गुणठाणा सुधी साधना छे, तो अहीं क्षीणमोह गुणस्थाने सेवनानो एव म्भुत केम कहो छो ? तेने उत्तर कहे छे. जे अयोगी सुधी तो उत्सर्गसाधना छे, अने अ-हीं तो अपवाद साधनानो अधिकार छे, तेथी अपवाद साधना अहीं पूरी थइ. वली कोइ पूछे जे अप्रम निर्मोह अवस्थामां शुं अपवाद-पणुं छे ? तेने उत्तर. जे शुक्ल ध्याननो बीजो पायो पण हजी सेवनानुं एक आत्मधर्मे राखवुं, ते प्रयोग छे. हजु संयोगवीर्य औदयिकानु

गतनुं सहाय छे, तथा श्रुतज्ञाननुं आलम्बन छे, अने क्षयोपशमी श्रुत ते उत्कृष्ट उत्सर्गे मूल आत्मिक वस्तु धर्म नथी अने तेनुं आलम्बन छे. त्यां सुधी अपवाद छे. ते माटे निर्मोही बारमे गुण स्थानके एवम्भूतनयें अपवादें भावसेवा जाणवी. ए अपवाद भावसेवनाना सात नयें करी सात भेद कह्या ॥ ५ ॥ इति पंचम गाथार्थ० ॥

उत्सर्गें समकितगुण प्रगटयो, नैगमप्रभुता अंशें जो ॥ संग्रह आतम सत्तालम्बी, मुनिपद भाव प्रशंसें जी ॥ श्री० ॥ ६ ॥

अर्थः—हवे उत्सर्गमार्गे भावसेवनाना सात भेद सात नयें कहे छे. अहीं जेटलुं आत्मधर्म-

रूप स्वकार्य नीपजे छे, ते उत्सर्ग सेवा एटले करवा योग्य जे कार्य ते उत्कृष्ट करवुं, पण तेमां जेटली ऊणता[1] होय, तेथी नय फलाववा जोइये, ते फलावी देखाडे छे.

१ ज्यारे आत्मानो शङ्कादि पांच अतिचार रहित क्षायिक आत्मिक तत्व निर्धाररूप शुद्ध समकित गुण प्रगट्यो, त्यारे ए साधक आत्मानो एक अंशें प्रभुतानो गुण प्रगट्यो, तेथी आत्मानुं एक अंशें कार्य थयुं, तेथी नैगमनये उत्सर्गभाव सेवा थइ. अहीं कोइ पूछे जे गुण निपन्यो तेने सेवा केम कहो छो ? तेने उत्तर के तन्मयपणे थइ रहेवुं एज सेवनानो अर्थ छे, ते अहीं तन्मयपणुं थयुं छे, अथवा जो पण गुण प्रगट्यो पण हजी आ-

---

( १ ) ओछापणुं.

त्माना अनन्ता गुणनो साधक छे माटे एने सेवना कही छे. जेटलुं उपादान कारणपणुं तेटलुं उत्सर्ग साधन छे, ते माटे एने उत्सर्ग भावसेवा गवेषी [1]छे,

आप्तमीमांसायां ॥

॥ उक्तंच ॥

उवयाणं उस्सग्गो ।

निमित्तमववाय सुद्धदेवोत्ति ॥

उपादान ते उतसर्ग अने निमित्त ते अपवाद ए प्रमाणे शुद्ध देवनुं वचन छे.

ए टीकामां छे, तेथी उपादान निष्पत्ति ते उत्सर्ग सेवा जाणवी. अहीं आत्माना अनन्त गुण छे, तेमांथी एक समकित गुण प्रगटयो,

---

१ मानी.

ते आत्मानो एक अंश प्रगटयो, तेथी ज ए नैगमनयें उत्सर्ग भावसेवा थइ, अने ए ज उत्सर्ग आत्मगुणप्रभुता पण प्रकटी.

२ ज्यारे ते भावमुनियें यद्यपि पोतानी आत्मसत्ता आवरी छे, तोपण जे छती हती तेने निर्धार करीने भासनगत करी, ते हवे स्वसत्तालम्बी शुद्ध धर्ममयि थयो, ते ज आत्मसत्ताभासन रमण, एकत्वसत्तासन्मुख रहे, एटले ए जीव आज सुधी स्वसत्तालम्बी थयो हतो नहीं, ते थयो. एटलुं उपादान समर्थु, माटे संग्रहनये उत्सर्गभावसेवा कहेवाय.

३ ज्यारे ते साधकजीव, अप्रमत्त मुनिराज अवस्था पामीने उपादानकारणता सर्व स्वरूपालम्बी करी, ते अवस्था आत्मानी परिणाम प्रवृत्ति, ग्राहकता, व्यापकता, भोक्तता, कर्त्तृता

आदि सर्व स्वरूपें वलगी, त्यारे अन्तरङ्ग वस्तुगत जे व्यवहार, ते वस्तुस्वरूपें थयो, ते व्यवहारनये उत्सर्ग भाव सेवना कहेवाय. ए मुनिपदनो जे भाव, तेने (प्रशंस) वखाणे ॥६॥ इति षष्ठ गाथार्थ.

**रुजुसूत्रें जे श्रेणिपदस्थें, आत्मशक्ति प्रकासे जी ॥ यथाख्यात पद शब्दस्वरूपे, शुद्धधर्म उल्लासें जी ॥ श्री० ॥ ७ ॥**

४ अर्थः—जे आत्मा क्षपकश्रेणिपदे रहीने पोतानी आत्मिक शक्ति ( प्रकासे ) प्रगट करे ते रुजुसूत्रनये उत्सर्ग भावसेवना कहेवाय.

५ ज्यारे आत्मानें यथाख्यात क्षायिक चारित्र प्रकट थयुं, त्यारे जे चारित्र सहकारी

आत्मशक्ति प्रकटे, शुद्ध अकषायि, असङ्गि, निस्पृहरूप शुद्ध धर्म उल्लास पामे, चरित्र सहकारी जे विर्यादि ते पण जे कषायानुयायि फरता हता, ते सर्व आत्मरमणी थया, ए धर्म जेटलो उल्लास पामे, ते सर्व शब्दनयें उत्सर्गे भावसेवना जाणवी. अहीं स्वरूपरमणी असहायि थयो, ते जेटलुं अन्यअसहायिपणुं नीपज्युं, तेटलुं उत्सर्गसेवन जाणवुं ॥ ७ ॥ इति॥ सप्तम् गाथार्थ.

**भाव सयोगी अयोगीशैलेसें, अंतिम दुग नय जाणो जी॥ साधनताए निजगुण व्यक्ति, तेह सेवना वखाणो जी ॥ श्री० ॥८॥**

८ अर्थः—ज्यारे ए आत्माए सर्व घनघा-

तियांकर्म क्षय करीने अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन अनन्त चारित्र, अनन्त वीर्य, ए चार म्होटां अनन्तक प्रकट कर्यां, एचार गुणने सङ्कर तथा सहकारें जे बीजा वक्तव्य तथा अवक्तव्य अनन्त स्वधर्मीगुण प्रकट थया, आत्मिक आनन्दि थया, त्यारे समभिरूढ नयें उत्सर्ग भावसेवा थई.

७ जे काले शैलेशीकरण करे, आत्मप्रदेशनो घन करे, अयोगी केवलीपणुं थाय, त्यारे एवम्भूतनयें उत्सर्गभावसेवना थइ. अहीं कोइ पूछे के एवम्भूत मोक्षने विशे केम कहेता नथी तेने उत्तर. के मुक्त आत्मा तो सिद्ध छे, तेने नवुं कांइ नीपजाववुं नथी, अने अयोगीने तो सिद्धता निपजाववी छे, माटे जेटलुं कार्य अधुरुं, तेटलुं साधन कहेवाय, अने जे साधन ते

सेवा छे, माटे साधनानो अन्त अयोगीकेवली गुणस्थाने छे, एटले साधनानो एवम्भूत अयोगी केवली छे, तेथी उत्सर्ग भावसाधना ते अयोगी केवली गुणस्थाने कही, अने सिद्धनो एवम्भूत ते मुक्त आत्मा छे. ए रीते साधना ओलखावी. ए उत्सर्ग सेवनाना सात नय कह्या.

हवे एनुं स्वरूप बतावे छे, के ए ( साधनता ) साधना करतां जे (निजगुण) पोताना आत्माना गुणनुं (व्यक्ति) प्रकटपणुं, ते ( सेवना ) आत्मसेवना, ( वखाणो ) कहो, एटले जेटली साधना तेटली अपवादसेवा जाणवी, अने ते साधना करतां करतां जेटली जेटली नवी आत्म शक्ति प्रकटवानी कारणता सहित जे आत्मशक्ति प्रकटे, ते उत्सर्ग भावसेवा जाणवी, अने शुद्ध निष्पन्न सिद्ध अवस्था ते सा-

ध्य छे, अने जे (प्रगटे) शुद्ध आत्मधर्म पण आत्म संपूर्णताने कारणपणे थती सेवा, ते उत्सर्ग भावसाधना जाणवी. जे उत्सर्गभावसाधना ते कार्य छे, अने निमित्तालम्बी अपवाद भावसेवा ते कारण छे, शेष सर्व द्रव्यसेवनानुं कारण छे. ए रीते कारण कार्य भाव जोडवो ॥ ८ ॥ इति अष्टम गाथार्थः ॥

**कारण भाव तेह अपवादे, कार्यरूप उत्सर्गे जी ॥ आत्मभाव ते भावद्रव्य पद बाह्यप्रवृत्ति निःसर्गे जी ॥ श्री० ॥ ए ॥**

अर्थः—अहीं जेटलो कारणभाव, ते सर्व अपवादें जाणवो, अने जेटलुं कार्य जे स्वगुण निष्पत्ति, तेटलो उत्सर्ग जाणवो. ए उत्सर्ग

तथा अपवादनां लक्षण तथा फलावणी सर्व "बृहत्कल्पभाष्यमांथी" तथा तेनी टीकाथी विस्तारपणे जोवी, अने जेटलो आत्मिकभाव धर्म प्रकट्यो, ते भाव निक्षेप जाणवो, अने जेटलुं बाह्य प्रवर्तन ते द्रव्य निक्षेप जाणवो. ए द्रव्य भावनो निःसर्ग कहेतां सहज जाणवो. एवी श्रीचंद्रप्रभस्वामीनी सेवा यें जे हलिया, ते आत्मधर्म संपूर्ण वरे ॥९॥ इति नवम गाथार्थः

**कारण भाव परंपर सेवन, प्रकटे कारजभावो जी ॥ कारज सिद्धे कारणता व्यय, शुचिपारिणामिक भावो जी ॥ श्री० ॥ १० ॥**

अर्थः—हवे कारणभाव जे श्रीअरिहन्त देव तेनी परम्परायें द्रव्य सेवना करतां भावसेवा

प्रकटे, अने भावसेवाथी उत्सर्ग धर्म प्रकटे, अने उत्सर्ग धर्म प्रकटयो, त्यारे पोतानुं कार्य शुद्ध स्वरुप अनुभवरुप प्रकटे अने कार्य जे शुद्ध सिद्धतारूप ते (सधे) निपजे, ते कार्य निपजे, कारणता जे हती तेनो ( व्यय ) नाश थाय; केमके कार्यनी उंणतायें[1] कारणता छे, परन्तुं कार्य निपजे त्यारे कारण धर्म रहे नहीं त्यारे शुं रहे? ते कहे छे. जे शुचि केतां पवित्र भावकर्म, द्रव्यकर्म, नोकर्मरूप हेतुना सद्भाव रूप मल रहित जे आत्मानो पारिणामिक भाव ( जे पणे एनुं मूल लक्षण छे ) स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल, स्वभाव स्वरूप ते रहे, परमानन्द, अविनाशी अवस्था वरे ॥१०॥इति॥ दशम गाथार्थ ॥

---

१ गेर हाजरीमां.

परमगुणी सेवन तन्मयता, निश्चय ध्यानें ध्यावे जी। शुद्धातम अनुभव आस्वादि, देवचंद्र पद पावे जी ॥ श्री० ॥ ११ ॥

अर्थः—ए रीतें (परम) उत्कृष्ट गुणी जे श्री अरिहन्त शुद्धदेवनी सेवा अति दुर्लभ छे, ते पामीने तेमां तन्मय थईने जे जीव ( निश्चय ) निर्धार, अथवा ( निश्चय) पोताने स्वरूपध्यानें एकत्वतारूपें जे ध्यावे. ते जीव, शुद्ध निष्कलंक जे आत्मा चिदानंद धन, तेनो (अनुभव) यथार्थ ज्ञान वेद्य संवेद्य पद सहित आस्वादिने देव जे निर्ग्रंथ अथवा भुवनपति प्रमुख चार निकायना, तेमां चंद्रमा समान भाव उद्योत, समता, शीतलतानां कारण जे अरिहन्त ते रूप(पद)स्थानकने पामे, एटले अहो भव्यजीवो!

जो तमे पोताना आत्मसुखना इच्छक थया छो, अने शुद्धानंदने विलसो, एवी अभिलाषा जो तमने छे, तो श्री चंद्रप्रभस्वामी शुद्धदेव, अशरणना शरण, जगदाधार, जगत्जीवना परमोपकारी. मोह तिमिरनो ध्वंस करवाने भावसूर्य जेना, कर्मरोगना परम वैद्य, महा माहण, महा गोप,[१] महानिर्यामक,[२] महासार्थवाह[३], सम्यक्दृष्टिजीवना प्राण, देशविरतिने तो महामंत्रनी परे जपवा योग्य, साधु निर्ग्रंथ जेनी आज्ञायें चाले छे, उपाध्यायना हृदयरूप सरोवरना हंस, आचार्यजीना नाथ, गणधरना साक्षात् मोक्षहेतु, अने स्याद्वादधर्मना उपदेशक एवा श्री अरिहन्तदेव तेनी सेवा करो, एज आधार छे, ए श्रीचंद्रप्रभनी सेवा ज्यां सुधी अमारी

(१) गोवाळ (२) वहाण वटी. (३) संघपति

संपूर्ण सिद्धता न थाय, त्यां सुधी अखण्ड रहेजो एज सार छे ॥ ११ ॥

॥ इति एकादश गाथार्थ ॥

## ॥ अथ नवम श्री सुविधिनाथ जिन स्तवनं ॥

थारा म्हेला उपर मेह जरुखे वीजळी हो लाल ॥ जरुखे० ॥ ए देशी ॥

दीठो सुविधि जिणंद, समाधि-रसें भर्यो हो लाल ॥ स० ॥ जा-ण्यो आतमस्वरूप, अनादिनो वी-सर्यो हो लाल ॥ अ० ॥ सकल विभाव उपाधि, थकी मन उसर्यो

हो लाल ॥ श्र० ॥ सत्तासाधन मार्ग, भणी ए संचर्यो हो लाल न० ॥ १ ॥

अर्थः हवे श्रीसुविधिनाथ परमात्मानी स्तुति करे छे. कोइक भव्य जीव अनादिकालनो मिथ्यात्व असंयम कषाययोगरूप द्रव्यभाव हेतुपणे परिणम्यो, एकेंद्रिय, सूक्ष्म, बादर तथा बेंद्री, तेंद्री, चौरिंद्री, पचेंद्रीपणे अनन्त भव सुधी भवचक्रमां फरतां अनेक कुदेवनी वासनायें वासित थको कुदेवने देवबुद्धिए मानतो अथवा सुदेव जे श्रीवीतराग तेने कर्त्तृत्व प्रमुख दोषे मानतो तेणे कोइ काळें श्रीवीतराग प्रभुनी प्रभुता दीठी नहीं, ते कोइ वखत भवस्थीतिनो परिपाक करी, कोइक पुण्यना उदयें

श्रीसुविधिनाथ परमेश्वरनी मुद्रा दीठी, ते पण अरूपी अनंतगुण प्रभुता पणे श्रद्धान् भासन गोचर थई. ते श्रीअरिहंतनी प्रभुता देखीने उल्लासितचित्तें ते भव्यजीव श्री वीतरागनी उपकारता पाम्यो त्यारे ते प्रते हर्षथी बोले छे, के ( दीठो ) भासनपणे प्रतीत सहित सुविधिनाथ प्रभुजी तने दीठो, पण ते केवो दीठो? के आत्मगुणनुं विपरीतप्रवर्त्तन विषय कषायने अनुयायि प्रवर्त्तन, तम उद्धत वक्रता परिणामादि सर्व विभाव, ते उपाधि तेनी निवृत्ति थवाथी सकलगुण स्वरूप परिणामी थये आत्मगुणनी वस्तुगतें स्थिरता ते समाधि तेना रस वडे ( भर्यो) संपूर्ण एटले परमसमाधिमयि श्रीसुविधिनाथ दीठो, ते दीठाथी एक मोटो लाभ थयो, ते शुं लाभ थयो? तोके

( भास्यो ) जाणपणामां आव्युं, ( पोताना आत्मानुं स्वरूप ते शुद्ध चिदानंदलक्षण जाण्युं ). जे अनादि अतीत कालनो ( विसर्यो ) भूली गयो हतो, ते श्रीप्रभु दीठां भास्युं, तेथी ( सकल ) सर्व जे विभाव दोष आत्मिक अशुद्धतारूप जे उपाधि तेथी (मन) चित्त (उसर्यो) पाछो हठ्यो, कारण के ए विभाव परिणति ते हुं नहीं, तथा विभाव परिणतिनो हुं कर्त्ता पण नहीं, ए मुने करवुं भोगववुं परिणमवुं घटे पण नहीं एमजाण्युं तेथी जेटली क्षयोपशमीआत्मपरिणति ते सर्व राग द्वेष असंयमथी निवृत्तवा लागी, अने ( सत्ता ) जे अनन्तगुण रुप आत्मानी सत्ता तेना साधननी (रीत) चाल (मार्ग) ते सम्यक् ज्ञान, सम्यक्दर्शन, सम्यग्चारित्ररूप जे आत्मिक कार्यना मार्गे ए भव्यजीव

परिणम्यो, एटले जेथी आत्मसत्ता प्रगट थाय, ते मार्गे ए आत्मा (संचर्यो) प्रवर्त्यो ॥ १ ॥ इति प्रथम गाथार्थः ॥

तुम प्रभु जाणंग रीति, सर्व जग देखता हो लाल ॥ स० ॥ निजसत्तायें शुद्ध, सहुने लेखता हो लाल ॥ स० ॥ पर परिणति अद्वेष, पणे उवेखता हो लाल ॥ प० ॥ भोग्य पणे निजशक्ति, अनन्त गवेखता हो लाल ॥ अ० ॥ २ ॥

अर्थः—वळी हे प्रभुजी ! तमें षट्द्रव्यात्मक जगत्‌ने केवळ ज्ञान, तथा केवळदर्शनें देखो छो, पण ( जाणंग रीतें ) राग द्वेष रहित जे एक

आत्मानो जाणंग गुण छे, तेथी सर्वभाव जाणो छो, परन्तु तेमां शुभपरिणामी वस्तुना ग्राहक नथी, अने अशुभपारिणामी वस्तुना द्वेषी नथी, यथार्थ रीते जगत्ना जाण छो, कर्त्तापणुं भोक्तापणुं ग्राहकपणुं स्वामिपणुं एटला वानां टालीने अहंबुद्धि रहित सर्वभावना जाणंग छो, वली हे प्रभुजी! तमें केवा छो? जे सर्वद्रव्यने पोताना सत्ताधर्मे शुद्ध, निर्दोष, निःसंग लेखो छो, एटले पंचास्तिकायमां त्रण अस्तिकाय तो परसंग विना छे, अने पुद्गलनुं संयोगीपणुं ते भेदसंघात[1] धर्म छे, पण कर्त्तापणे नथी, तेथी स्वसत्ता ने लोपतो नथी, अने जीवने यद्यपि अनादि विभाव छे, परन्तु सत्तारूपें मूलधर्मेन छे, ते प्रभुजी! तमें जीव-

---

१ जुदा पडवुं तथा एकठा थवुं ते.

पणुं ग्लसच्चार्येज लेखवो[1] छो तेमां परपरि-
णति भावअशुद्धता, ज्ञानावरणादि कर्म, काम-
क्रोधादिक सर्वने अद्वेषपणे आत्मधर्मथी भिन्न
माटे (उवेखो) तेनो आदर करता नथी द्वेषीपणुं
जे तजे, ते (त्याग) ए समता माटे त्याग वर्ण-
व्यो छे, केमके द्वेषीपणुं तो परपरिणति छे.
वली हे प्रभु ! तमें भोगपणे पोतानो भोग भो-
गवो छो, निजशक्ति जे अनन्तगुणपर्याय रूप
परमचैतन्यरूप, परमानन्दरूप, सहज सुखरूप
एवी जे अनन्ती तत्त्वविलासता तेने भोगपणे
गणो छो, स्वधर्मने ज भोग्य जाणो छो, माटे
हे सुविधि परमेश्वर ! तमें परमात्मतारूप परम
धर्मना भोगी छो जी ॥२॥ इति द्वितीय गाथार्थः

दानादिक निज भाव, हता जे

---

१ मानो छो.

परवशा हो लाल ॥ ह० ॥ ते निजसन्मुख भाव, ग्रही लही तुझ दशा हो लाल ॥ ग्र० ॥ प्रभुनो अद्भुत योग, सरूप तणी रसा हो लाल ॥ स० ॥ भासे भासे तास, जास गुण तुझ जिसा हो लाल ॥ जा० ॥ ३

अर्थः—दानादिक आत्मधर्म जे क्षयोपशमी छे, ते सर्व परानुयायी छे, पुद्गलानुयायी छे, ते अनादि परवश थई रह्या छे, ते सर्व, हे प्रभु। त्हारी शुद्ध वीतराग दशा (लही) पामीने ते क्षयोपशमीभाव सर्व आत्म सत्ताने सन्मुख पणे ग्रहे, आत्मावलम्बनी थाय, एटले अरिहन्तालम्बनी थया पछी एज सर्वगुण ते

स्वस्वरूपावलम्बनी थाय, गुणावलम्बनी थाय अने हे प्रभुजी! त्हारी ( योग ) रत्नत्रयिना स्वरूपनी ( रसा ) भूमिका ते अद्भुत छे. निर्विकार, निःसहाय, निःप्रयत्न, निर्मल, निरंतर, ( सकलाववोधक ) सर्व जाणपणुं ते ज्ञान अने यथार्थ सर्व सापेक्ष अदूषितपणे सकल पदार्थने निर्धार करतो ते दर्शन तथा नीराग, निश्चल निरामय, तत्त्वैकथिरतापरिणामरूप ते चारित्र धर्म, ए रत्नत्रयि ते अनन्त स्वभाव अनन्त पर्याय उत्पाद, व्यय, ध्रुव, भेदाभेद, अस्ति नास्तिरूप स्वरूपने लीधे वर्ते छे, एवी रत्नत्रयि, हे परमेश्वर! त्हारे विशे परिणमी छे, तेनी प्रतीत ते वासना तथा ओलखाण ते भासन ते तेने थाय, जेने (तुज) तुमारा जेवा गुण प्रगटया होय, एटले हे नाथ! हे सर्वज्ञ! हे त्रैलोक्य-

दीपक ! त्हारी रत्नत्रयि ते तुज समान (गुणी)[1] होय, तेनाज भासनमां आवे ॥ ३ ॥ इति त्रतिय गाथार्थ ॥

मोहादिकनी घूमि, अनादिनी उतरे हो लाल ॥ अ० ॥ अमल अखंड अलिप्त, स्वभावज सांभरे हो लाल ॥ स्व० ॥ तत्त्वरमण शुचि ध्यान, भणी जे आदरे हो लाल ॥ भ० ॥ ते समतारस धाम, स्वामिमुद्रा वरे हो लाल ॥स्वा०॥४॥

अर्थः—हे प्रभु ! त्हारी मुद्रा ते परम समतानुं धाम छे, एवी बीजा कोइनी न होय केमके एवी सकल परभाव रहित परिणाति, तो

(१) गुणवाळी.

जेणें एम कर्युं होय, तेनेज निपजे, पण जे मोहे मुंज्या परिणाम तेनी (घूमि) स्वरूप अग्राहकता, परभावग्राहकता, परभावरमणतारूप विभावता ते अनादि कालनी आत्माने विशे छे.

अहीं प्रश्न. के ए विभावता अनादिनी छे, ते आत्मानो स्वपरिणाम छे किंवा परपरिणाम छे ? जो स्वपरिणाम छे, तो विभाव शा वास्ते कहो छो ? अने जो परपरिणाम छे तो अनादि केम कहेवाय ? तेने उत्तर के ( आदि ) पहेलो जीव अने पछी कर्म एम कहिये तो पहेला सिद्ध पछी कर्म लागे, अथवा पहेला कर्म अने पछी जीव, एम कहियें तो कर्त्ता विना कर्म केम संभवे ? ए पक्ष उत्पन्न थाय माटे "अनादि सहजातसंयोग छे." त्यां कोइ पूछे के उभय संयोग एकठो कहो, तो कारण

कार्यनो सबन्ध केम रहे? तेने उत्तर. के उपादान धर्मे एक समयमां एकठीज कार्यकारणता छे, जेम "सम्यगदर्शन, सम्यगज्ञानने छे," तेनी पेठे अहीं पण श्री विशेषावश्यकथी जाणवुं.

यदुक्तं ॥ गाथा ॥

नय कम्मस्स य पुव्वं,
कत्तुरभावे समुप्भवो जुत्तो ॥
निक्कारणाउ सोविय,
तह जुगवयुप्पत्ति भावे य ॥१॥

इत्यादि गाथाथी जाणवो. कोइ पूछशे के अनादिनो मळेलो तेनो वियोग केम थाय? तेने कहे छे के.

॥ गाथा ॥

जह चेह कंचणोवल,
संयोगो णाइ संतय गउंवि ॥
वुछ ऊई सोवायं,
तह जोगो जीव कम्माणं ॥१॥

इति पूज्यवाक्यात्. एटले ए विभावपरिणाम यद्यपि अनादिनो छे, तो पण परकृतिक छे. स्वरूप नथी, माटे एनो वियोग कर्यो थाय. त्यारे कोइ कहेशे के ए विभावनुं कर्त्तापणुं केम छे ? तने कहे छे. के आत्मा स्वरूपकर्त्ता तेने स्वरूपआवर्णे परभावसंयोगे परकर्त्तापणुं थयुं छे. ते विभावमोहनी घूमि उतरे, मिथ्यात्वनी भूल टले, त्यारे (अमल) राग द्वेष रहित (अखंड) क्यारे पण खण्डाय नहीं, (अक्लिप्त)

परसङ्गना लेपरहित पोतानो सहजस्वभाव सांभरे (भासन गोचरमां आवे), यद्यपि कर्मे लेपाणो छे, तो पण स्वभावे अलिप्त छे, निरामय छे, कर्म सबन्ध छे पण कर्मथी न्यारो छे, निःसङ्ग छे, एवो आत्मा ज्यारे ओलखाणमां आवे, पछी साधक आत्मा पोतानुं तत्व जे शुद्धनिश्चयनयथी वस्तुस्वभाव तेमां रमे, अनादि पौद्गलिक अशुद्धवर्णादि रमण तजिने, पोताना ज्ञानादि अनंतगुणमां रमे, एज तत्वचारित्रता प्रकटे, पछी ( शुचि ) पवित्र निर्मल ध्यान ते प्रथम अरिहन्तादि गुणीना गुण स्वरूपमां तन्मयतारूप धर्मध्यान ध्यायीने पोताना अनन्त पर्यायनी परिणति प्रागभाव अनुभवैकत्व सत्तागत तिरोभावीनुं भासन एकत्व शुक्लध्यान जे पुरुष ( आदरे ) अङ्गिकार करे, ते पुरुष

सर्व विभाव क्षय करीने परम समतारसना धाम एवा स्वामी श्री जिनेन्द्रदेवनी ( मुद्रा ) वीतरागावस्था पामे, निर्मल पूर्णानंदी थाय ॥४॥

॥ इति चतुर्थ गाथार्थ ॥

प्रभु हो त्रिभुवन नाथ, दास हुं ताहरो हो लाल ॥दास०॥ करुणानिधि अभिलाष, अछे मुज ए खरो हो लाल ॥अ०॥ आतमवस्तु स्वभाव, सदा मुज सांभरो हो लाल ॥स०॥ भासन वासन एह, चरण ध्याने धरो हो लाल ॥ च० ॥ ५ ॥

अर्थः—हवे प्रभुथी विनाति करी पोतानो मनोरथ कहे छे. हे प्रभु ! तमें त्रिभुवनना

नाथ छो, सम्यग्दर्शनादि गुण पमाडवाना तथा रखवालवाना[1] परम कारण छो, अने हुं तमारो दास छुं, अहीं श्री वीतरागनुं दासपणुं तो सम्यक्त्वि, देशविरति, तथा सर्वविरतिने विशे छे पण अहीं तो भद्रकपणानुं उपचार वचन छे, माटे हे करुणानिधि ! हे करुणाना समुद्र ! मुजने ए खरो अभिलाष छे, ते कहुं छुं, के म्हारो आत्मानो वस्तुस्वभाव.

" सेण दोहेण हस्सेण, वट्टेण तंसेण चउरंसेण परिमंडलेण किए-हेण नीलेण लोहीएण हालिद्देण सु-क्किलेण सुरहिण दुरहिण तित्तेण कडुएण कसाएण अंबिलेण महुरेण

(१) रक्षण करवाना.

कक्कडेण मडुएण गुरुएण लहुएण सोएण उण्हेण णिद्धेण लुक्खेण काऊण रुहेण संघेण इच्छीण पुरिसेण अन्नहापरिणेसण्णे उवमाणविज्जती अरूवी सत्ता अपयस्स पयं नच्छी सेण सद्देणं रूवेणं गंधेणं फासेणं इति आचारांगोक्तं."

तथा शुद्ध स्वसत्ता स्वरूपी, अनन्तज्ञान, दर्शन, चारित्र, वीर्य, अनन्त स्वरूपकर्त्ता, स्वरूपभोक्ता स्वरूपपरिणामी, असङ्ख्यातप्रदेशी, प्रतिप्रदेशें अनन्तपर्यायथी नित्यानित्यादि अनन्तस्वभावी, स्वकीयकारक चक्रपरिणामीरूप म्हारो स्वभाव, ते सदा निरन्तर मने सांभळो

( भासनमां रहो ) वासना, प्रतीत, भासन, ज्ञान, चरण, तेमां रमणध्यान तेज स्वभावमां तन्मयता धरो. ए मनोरथ सदा म्हारो छे. साधकभावें साध्य करीने सिद्धावस्थायें सिद्ध रीतें सदा रहेज्यो ए अभिलाष छे ॥ ५ ॥

॥ इति ॥ पंचम गाथार्थः ॥

प्रभुमुद्राने योग, प्रभु प्रभुता लखे हो लाल ॥ प्र० ॥ द्रव्यतणे साधर्म्य, स्वसंपत्ति उंलखे हो लाल ॥ स्व० ॥ उंलखतां बहु मान, सहित रुचि पण वधे हो लाल ॥ स० ॥ रुचि अनुयायी वीर्य, चरण धारा सधे हो लाल ॥ च० ॥ ६ ॥

अर्थः—अहीं कोइ पूछे के तुं त्हारा आत्मधर्मनो रुचिवन्त थयो, त्यारे प्रभुजीनुं शुं काम छे? तेने उत्तर. आत्मस्वभाव विसरी, परभावरङ्गि थइ, ए म्हारो आत्मा शरीरसङ्गि, व्यासंगी, अनंगी,[1] कुलिंगी, तथा लिंगी[2]पणे ममतालिंगी थइ रह्यो छे. स्वसत्ता धर्म विसरी गयो छे. ते हवे अनन्त ज्ञानी, परम अमोही, प्रभुनी मुद्रा थापना निक्षेपरूप तेनो योग मले, त्यारे अनन्तगुण रूप, सकल ज्ञायक, शुद्धात्मरुप श्री प्रभुनी प्रभुता ( लखे ) ओलखे, ते ओलख्या पछी जीवद्रव्यपणाना ( साधर्मे ) सरखापणे सिद्ध थया, ते पण जीव अने हुं पण जीव माटे सत्तायें सरखा छियें, गुणपर्याय स्वभावे तुल्य छियें. तो जेवी

( १ ) कामी. ( २ ) वेषधारी.

सम्पदा श्री सुविधिनाथ परमेश्वरने प्रगट थइ छे, तेटलीजं सम्पदा म्हारी सत्तामां पण छे, तेथी हुं पण ते परमेश्वर जेटली सम्पदानो धणी छुं, एम ओळख्या पछी ते सम्पदा उपर बहुमान आवे, तेथी ते सम्पदानी रुचि प्रगटे, एवी सम्पदा म्हारे क्यारे नीपजशे ? अने जेनी रुचि होय, तेनो उद्यम थाय, त्यारें वीर्यगुणनुं स्फुरण रुचिने अनुयायि छे, अने जे दिशें वीर्य स्फुरे, तेमांज रमण थाय. एटले तेनुंज नीपजवानुं आचरण थाय, एटले प्रभु दीठे प्रभुनी प्रभुता भासे, ते प्रभुता पोतामां जाणे, पछी ते प्रगट करवानी रुचि उत्पन्न थाय तेथी रुचिनुं वीर्य तथा चारित्र जे रमण, ते पण ते दिशें सधे, त्यारें ते सिद्धता प्रगटे, तेथी जिनमुद्रानो योग ते बधुं साधन छे, ए मार्ग कह्यो ॥ इति षष्ठ गाथार्थः ॥

क्षायोपशमिक गुण सर्व, थया तुऊ गुणरसी हो लाल ॥ थ० ॥ सत्ता साधन शक्ति, व्यक्तता उल्लसी हो लाल ॥ व्य० ॥ हवे संपूरण सिद्ध, तणी शी वार छे हो लाल ॥ त० ॥ देवचंद्र जिनराज, जगत आधार छे हो लाल ॥ज०॥७॥

अर्थः—पछी क्षयोपशमिकगुण चेतना वीर्य, दानादि सर्व, ज्यारे ( तुझ ) तारा गुणना रसी थया, त्यारें ते निष्पन्नगुणरसी चेतना थवाथी अनन्तगुणरूप सत्तानुं साधन निपजाववानी आत्मशक्ति ढंकाणी हती, ते ( व्यक्त ) प्रकटपणे ( उल्लसी ) उल्लास पामी. हवे निमित्त कारण प्रके उपादान कारण प्रकटे,

आत्मिक रुचि तात्विक तत्वालंबी थाय, तो संपूर्ण अविनाशी सिद्धता निपजतां शी वार छे ? एटले पुष्टकारणें नियमा ( निश्चे ) कार्य निपजे, तेमाटे देवचंद्र स्तुति कर्त्ता, अथवा सर्व देवमां चंद्रमा समान ते जिनराज, श्रीवीतराग, ते सर्व जीवना आधार छे, एटले जिनमुद्राने आलम्बनें अनन्त जीव सिद्धि वर्या, तेथी अरिहन्तालम्बने सिद्धता निपजे, ए नियमिक छे, माटे अरिहन्तस्मरण, वन्दन, नमन, स्तवन, ध्यान करो. हे भव्य जीवो ! तमने एज आधार छे ॥ ७ ॥ इति श्रीसुविधि जिनस्तवन ॥ सम्पूर्ण.

---

## ॥ अथ दशम श्रीशीलनाथ ॥ जिन स्तवनं ॥

॥ आदर जीव क्षमागुण आदर ॥ ए देशी ॥

शीतल जिनपति प्रभुता प्रभुनी मुझथी कहीय न जाय जी ॥ अनंतता निर्मलता पूर्णता, ज्ञान विना न जणाय जी ॥शी० ॥१॥

अर्थः—हवे दशमा परमेश्वर श्रीशीतलनाथजीनी स्तवना करे छे. श्रीशीतलनाथनी अनन्त अविनश्वर आत्मिक प्रभुता ते प्रत्यक्ष तो केवलीने गम्य छे, अने सम्यग्दृष्टि तत्वरुचिने तो श्रद्धामां छे, ते कहे छे. के हे शीतल जिनपति! तमने कषाय, तृष्णा, नोकषाय, ताप-

रहित परम वीतरागता, निस्पृहता, परम पर-भाव अभोग्यता रूप, शीतलता प्रकटी छे अने पति केतां क्षीणमोही प्रमुखना पतिनी प्रभुता ठकुराइ अनन्त सहज सम्पदा मुज अल्पज्ञानी-थी तो कही न जाय. कारणके सिद्धना अ-भिलाप्य, अनभिलाप्य, सर्वपर्याय निरावरण प्रकट थया छे, तेमां अनभिलाप्य पर्याय श्री-केवली जाणे, पण वचने अगोचर छे, माटे कहि शके नहीं. अने अभिलाप्य पर्याय अन-न्त छे, ते पण वचननो क्रम प्रवर्त्तन छे माटे, मित आउखें[1] कहेवाय नहीं. त्यां अनन्त जी-वद्रव्य, ते एकेका द्रव्यना प्रदेश असङ्ख्याता छे, ते वली एकेका प्रदेशें ज्ञानादि गुण अन-न्त छे, ते वली एकेका गुणना पर्याय अनन्त छे, ते मध्ये स्वभाव अनन्त छे.

---

(१) परिमित आयुषमां.

॥ उक्तंच ॥

जीवापुग्गल समया, दव्वपएसा
य पज्जवा चेव ॥ थोवाणंताणंता,
विसेसमहिया दुवेणंता ॥१॥ इति॥

तथा निर्मलता ते ए सर्वपर्याय निरावरण, निःसङ्ग, निस्सहाय छे, अने (पूर्णता) सर्व शक्ति प्रकट भावे पूर्ण छे, ते सर्व केवलज्ञान विना जणाय नहीं ॥१॥ इति प्रथम गाथार्थः ॥

चरम जलधि जल मिणे अं-
जलि, गति झींपे अतिवाय जी ॥
सर्व आकाश उलंघे चरणें, पण
प्रभुता न गणाय जी ॥ श्री०॥२॥

अर्थः—त्यां दृष्टांत कहे छे के जेनी साधिक

तीन रज्जु, बाह्य परिधि छे, एहवो (चरम छेल्लो जलधि ) स्वयंभूरमण समुद्रनुं प्रबळ जल, तेने कोइ अंजलियें मापी शके अथवा कोइ एवो पण होय के जे अत्यन्त प्रलय कालना म्होटा वायरानी गतें चाले, तथा कोइ अनन्त लोकालोक मली सर्व आकाश तेने (चरणे) पगे करी उलंघे एवो तो कोइ होय नहीं, परन्तु दृष्टांत मात्र दीधो छे के जे एहवा शक्तिवानथी पण निष्पन्न श्रीसिद्धपरमेश्वरनी प्रभुता ते क्षायोपशम शक्तिवाळाथी गणी शकाय नहीं, अने श्रीवीतराग सर्वज्ञनी प्रभुता सम्पूर्ण ज्ञानी जाणे, परन्तु ते पण वचनयोगें कहि शके नहीं, ते माटे अनन्त छे ॥ २ ॥ इति द्वितीय गाथार्थः ॥

सर्वद्रव्य प्रदेश अनंता, तेहथी

गुणपर्याय जी ॥तास वर्गथी अनंत गणुं प्रभु, केवलज्ञान कहाय जी ॥ शी० ॥ ३ ॥

अर्थः—हवे ते अनन्तता कहे छे. सर्व जीवद्रव्य तथा अजीवद्रव्य अनन्ता छे, तेथी सर्व द्रव्यना प्रदेश अनन्ता छे, तेमां आकाशप्रदेशनी अनन्तता अति मोटी छे तेथी वली गुणनी अनन्तता घणीज म्होटी छे, तेथी वली पर्याय अनन्त गुणा छे, ए अधिकार अल्प बहुत्वपदथी जोइ लेवो, यद्यपि पर्याय जे छे, ते मूलधर्मे गुणथी भिन्न नथी, वस्तुमां पर्याय परिपाटी छे, ते पर्यायनो समूह मली जे कार्य करे, ते प्रवृत्तिने गुण कहे छे; परंतु पर्यायनीज प्रवृत्ति छे, अने द्रव्य ते आधार छे, परन्तु

संज्ञा, सङ्ख्या, लक्षण, कार्यभेदे पर्यायथी गुण भिन्न छे, ते माटे गुणनी भिन्न व्याख्या उत्तराध्ययनादि सूत्रें छे.

॥ उक्तंच ॥

दव्वाण य गुणाण य, पज्जवाण नाणेणं॥नाणे नाणेहिं दंसियं॥इति॥ पुनः ॥ गुणाणामासउ दव्वं, एगदव्वस्सियागुणा ॥ लरकणं पज्जवाणं तु, उन्नउ निस्सिया नवे ॥ १ ॥

इत्यादिकथी भिन्न व्याख्या छे, त्यां पन्नवणासूत्रें कह्युं छे.

ए सेणं भंते जीवाणं पुग्गलाणं सव्वदव्वाणं सव्वपएसाणं सव्वपज्जवाणय

कयरे कयरे हिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा सव्व थोवा जीवा पुग्गला अणंतगुणा अद्धास मया अणंतगुणा सव्वदव्वा विसेसाहिया सव्वपएसा अणंतगुणा सव्वपज्जवा अणंतगुणा ॥ इति गण-धरवाक्यात् ॥

एटले श्रीप्रभुजीनो केवळज्ञानगुण तेनी अनन्तता ते आवी रीतें छे के छ द्रव्यना गुण पर्याय सर्व अस्तिपणे रह्या छे, ते सर्वने जाणे, तथा तेनी परस्परनी अपेक्षायें नास्तिपणुं अनन्तु रह्युं छे, ते सर्वने पण श्री प्रभुनो केवलज्ञान गुण जाणे, तथा ए सर्वथी अनन्त गुणा

वली बीजा भाव होय, तो तेने पण जाणे, एम अनन्त शक्ति छे, तेम दर्शननी पण तेटलीज शक्ति छे, तेमाटे द्रव्यना प्रदेश पर्याय तेना वर्ग करियें, तेने वली अनन्तगुणो गुणाकार करियें, एटलुं हे प्रभु ! हे परमेश्वरजी ! तमारुं केवलज्ञान कहेवाय छे. ते श्री भगवतीसूत्रे.

॥ अमियं नाणं केवलिस्स ॥

एम कह्युं छे ॥ ३ ॥ इति तृतीय गाथार्थः ॥

केवलदर्शन एम अनंतु, ग्रहे सामान्य स्वभाव जी ॥ स्वपर अनंतथी चरण अनंतु, समरण संवर भाव जी ॥ शी० ॥४॥

अर्थः–एटला सर्व विशेष भाव ते सर्व सामान्य युक्त छे. ते सर्व केवल ज्ञानगम्य छे,

अथवा सामान्याश्रयी छे, जे विशेष ते सामान्य विना नाहिं, अने सामान्य ते विशेष विना नहि. सर्वपदार्थ सामान्य विशेष रूप छे ॥

न सामन्न तउं नह्मि, विशेसो खपुप्फं वा ॥

तथा च ॥ समतौ ॥

दव्वं पज्जाव विउअं, दव्व विउत्ता य पज्जावा नह्मि ॥ उप्पायठिइ ज्जंगा, हवइ दविय लख्कणं एवं ॥ १ ॥ इति ॥

अर्थ—ते माटे सर्वद्रव्यने विशे सामान्य धर्म अनन्त छे, ते सर्व केवलदर्शनगुणे देखे छे, तेथी पण अनन्तगुणा सामान्य धर्मने देखी

शके एवी शक्ति छे, तेथी एटला पर्यायमयी केवलदर्शन गुण छे.

उक्तं च विशेषावश्यके ॥

**यावंतो हि ज्ञेयस्य पर्यायास्तावंतस्तदवभासकत्वेन ज्ञानस्याप्येष्टव्याः ॥**

तथा भगवत्यांगे

**अणंता दंसण पज्जवा इति**

अर्थ—माटे केवलदर्शन पण अनन्तु छे, ए दर्शन, सर्व पदार्थना अस्तित्व सत्त्व वस्तुत्व प्रमेयत्वादि सामान्य द्रव्यास्तिकने देखे छे. एम चारित्र गुण ते पण अनन्तपर्यायि छे, पोताना आत्माना सर्व पर्याय ते सर्वस्व धर्म छे, तथा पोताथी भिन्न अनन्त जीवद्रव्य तथा

सर्व अजीवद्रव्य तेना धर्म ते परधर्म छे, एटले सर्वस्व धर्ममां रमण, परधर्ममां अरमण, ए सर्वे पर्याय चारित्रना छे, एटले स्वरूपरमण, परभावनिवृत्ति, ए चारित्रनी परिणति छे, अने अनादिनुं ज पररमणीयपणुं भूलथी थयुं हतुं, ते निवारीने स्वशक्ति चेतनावीर्यादिनी परिणति, ते परभावथी रोकीने स्वरूप विशे राखवी ए संवरभाव ते चारित्रनी अनन्तता छे. ते संयमश्रेणि श्री व्यवहारभाष्यें कही छे, जे सर्व जीवथी अनन्त गुणा चारित्रना उघाडा विभागनी एकवर्गणा करियें, तेवी असङ्ख्यात् वर्गणायें एक स्पर्द्धक थाय. तेवा असङ्ख्यात् स्पर्द्धकें एक संयमस्थानक थाय. ते सर्व जघन्य संयमस्थानक ते वली असङ्ख्य षट्गुण रीतें अस-

द्रव्य षट्गुण करतां सर्वोत्कृष्ट असङ्ख्यातमु संयमस्थान थाय. ए चारित्रनी अविभागीनी अनन्तता देखाडी, ते सर्व चारित्रगुण हे प्रभु ! तमारा निरावरण छे, ते माटे चारित्र अनन्तु छे ॥ ४ ॥ इति चतुर्थ गाथार्थ ॥

द्रव्य क्षेत्र ने काल भाव गुण, राजनीति ए चार जी ॥ त्रास विना जड चेतन प्रभुनी, कोइ न लोपे कार जी ॥ शी० ॥ ५ ॥

अर्थः—एम वीर्यादि गुणनी स्वधर्मे अनन्तता जाणवी, एवी अनन्त स्वगुण सम्पदामयि छो. वळी हे नाथ ! हे परमेश्वर ! तमे जगत्मां जीव तथा अजीव तेना जे गुण, स्वभाव, पर्याय, ते सर्व १ द्रव्य, २ क्षेत्र, ३

काल. ४ भाव. ए रीतें चार परिणमनपणे छे, अने तमारा ज्ञानादि गुण, ते पण द्रव्यादि चार परिणमे छे, अने स्वपररूपधर्मनुं जाणपणुं करे छे, ते पण चार प्रकारे परिच्छेदन करे छे. ते चार प्रकार कहे छे. १ समुदाय ते द्रव्यधर्म जाणवो. २ आधारता ते क्षेत्रधर्म जाणवो. ३ वर्त्तना उत्पादव्ययरूपभाव, ते कालधर्म जाणवो, निश्चे विचारतां तो काळ द्रव्य भिन्न नथी, केम के पंचास्तिकायनी वर्त्तना ते कालधर्म छे, ए तत्त्वार्थ तथा धर्मसंग्रहणी अने विशेषावश्यकमध्ये घणी चर्चा छे. अनपेक्षित द्रव्यास्तिकनयें एने द्रव्य कह्युं छे, परन्तु जातें द्रव्यास्तिकपणुं एमां नथी, तेथी द्रव्यनी वर्त्तना ते काळ, ४ तथा द्रव्यनो मूलधर्म ते भाव, ए रीते सर्व परिणमन छे. ए

श्री वीतराग निष्पन्नतत्त्वी प्रभुनी राजनीति चार प्रकारनी छे, वली श्री प्रभुनी आज्ञा सर्व द्रव्य माने छे, एटले स्तवनापदें आरोप माटे कहे छे, के अन्य राजानी आणा कोई माने, कोइ न माने, पण हे प्रभु ! जे रीतें तमो तमारा ज्ञानमां जाणो छो ते रीते तमारुं ज्ञान परिणमे छे, ते रीते सर्व द्रव्य परिणमे छे, जे रीतें तमें प्ररूपणा करो छो, तेज रीतें सर्व द्रव्यनी परिणति छे, माटे तमें कोईने कहेता नथी, तथा कोइने त्रास करता नथी, भय पमाडता नथी, परन्तु ते तमारा ज्ञाननी परिणति लोपी चालता नथी, आज्ञा लोपता नथी, एवी सहज आणा[१] सम्यक दृष्टि, देशविरति, सर्वविरतिने इष्ट छे, माटे निःप्रयास अखंड आणा छे ॥ इति पंचम गाथार्थ ॥

---

(१) आज्ञा

शुद्धाशय थिर प्रभु उपयोगें
जे समरे तुझ नाम जी ॥ अव्या,
बाध अनन्तु पामे, परम अमृतसुख
धाम जी ॥ शी० ॥ ६ ॥

अर्थः—हवे प्रभुसेवानुं फल कहे छे. जे साधकजीव, शुद्ध निर्दुषण आशये करीने क्षुद्रादिक आठ दोषने टालिने एटले क्षुद्रादिक दोषसहित जे करे, ते कार्यनो साधक थाय नहीं. श्रीहरिभद्रसूरि पुज्ये कह्युं छे.

॥ श्लोक ॥

क्षुद्रो लोभरतिर्दीनो,
मत्सरी भयवान् शठः ॥

अज्ञो भवाभिनंदो च,

निष्फलारंभसाधकः ॥ १ ॥

तथा दग्धादि दोषरहित तथा विषनुष्ठान ते इह लोक फळनी आशा, अने गरलानुष्ठान ते परभवें इंन्द्रिय सुखनी वांछा वली अन्योऽन्य अनुष्ठान ते साध्य शून्यसापेक्षता विना जे करवुं, इत्यादि दोष टाळी जिनआज्ञा प्रमाणे, विधिसहित, प्रीति, भक्ति, वचन, असङ्गरीतें, ( तद्हेतु ) जे एक तेहीज साचुं करवाने अर्थे ( मोक्ष निपजाववा माटे ) साधन, अने ( अमृत ) ते त्रिकरण योगनी एकता हर्षसहित तन्मयपणे निरामय साधन, ए रीतें थिर थईने शङ्कादि चपलतारहित श्रीप्रभुजीना स्वजाति ( स्वभाविक ) गुणें करी उपयोग

प्रभुगुणे जोडीने जे भव्यजीव आत्मार्थी थइने श्रीशीतलनाथ परमसमतामयी प्रभुनुं ध्यान करवाने तेनुं नाम समरे ( संभारे, ) ते जीव अनुक्रमे गुणीने अवलम्बने आत्मोपादानी थईने निष्कर्मा थाय, त्यारें ते अनन्त अव्याबाध सुख परसङ्गरहित आध्यात्मिक सुख पामे. ते सुख केवुं छे ? तोके परम उत्कृष्ट अमृत अविनाशी सहज ज्ञानानन्दादि अनन्त सुखनुं धाम छे.

॥ उक्तं च ॥

सिव मयल, मरुय मणंत
मक्खय मव्वाबाह मप्पुणरावित्ति
सिद्धगइ नामधेयं ठाणं संपत्ताणं,

तथा संमतिग्रंथे ॥

अह सुइय सयल जगसिहर,
मरुव निरुवम सहाव सिद्धिसुहं ॥
अनिहण मव्वाबाहं
तिरियणसारुं अणुहवंति ॥ १ ॥

एहवां सुख पामे ॥ ६ ॥ इति षष्ट गाथार्थः ॥

आणा ईश्वरता निर्भयता, नि-
र्वाञ्छकतारूप जो ॥ भावस्वाधी न
ते अव्यय रीतें, एम अनन्तगुण
भूप जो ॥ शी० ॥ ७ ॥

अर्थः—तथा प्रभुतानां लिङ्ग आणादि
छे, ते कहे छे. बीजानी आज्ञा तो स्वार्थे तथा
भयथी कोइ माने, अने प्रभु श्री अरिहन्तनी

आज्ञा तो सहेजें कोइ द्रव्य लोपतुं नथी, तथा जे लौकिक प्रभुताना धणी, तेतो पौद्गलिक मानोपेत सम्पदाना धणी छे, अने श्रीतीर्थङ्कर तो जगदुपकारी अनन्त सहज सम्पदाना ईश्वर छे, तेथी ईश्वरता अद्भुत छे. बीजा राजादिक तो मात्र पोताना सेवकोथीज भय पामे नहीं, एटलुं परन्तु परचक्र तथा मरणादि भय सहित छे, अने म्हारो परमेश्वर निर्मलानन्द कारण शुद्धदेव तो सर्वकाल सर्वभय रहित छे, स्व अखंडण अविनाशी सम्पदा परमनिर्भयता वन्त छे, तथा जगत्मां इन्द्र चन्द्र, चक्रवर्त्ती, ते तृष्णाने उदयें इच्छादोषमयी छे, इच्छाथी सम्पदा अपूर्ण छे, अने श्रीवीतराग तो स्वसम्पदापूर्ण भाग्भानना भोगी छे, तेथी समस्त परसम्पदाने अवाञ्छे, माटे निर्वाञ्छकतामयि

छे. वळी श्रीप्रभु परमात्मा तेना जे (भाव) भावधर्म शुद्ध चिदानन्दादि, ते सर्वस्वाधीन छे. पराधीन नथी. वळी ते (अव्यय) अविनाशीपणे ध्वंसरहित छे. ए रीतें अनन्तगुण जे पूर्वे कह्या तेना राजा छे ॥ ७ ॥ इति सप्तम गाथार्थः ॥

**अव्याबाध सुख निर्मल ते तो, करणज्ञाने न जणाय जी ॥ ते हज एहनो जाणंग भोक्ता, जे तुम सम-गुण राय जी ॥ शी० ॥८॥**

अर्थः—हे प्रभुजी ! जे अव्याबाध अतीन्द्रिय सुख ते अनन्त स्वभोगीपणे तमे भोगवो छो, ते अव्याबाध सुखनुं (ज्ञान) जाणपणुं ते (करण)इन्द्रियोने आधीन जे मतिज्ञान तथा श्रुत-

ज्ञान छे, तेणें करी जणाय नहि तथा अवधि मनःपर्यवज्ञान ते यद्यपि इन्द्रियोने आधीन नथी, तो पण ते रूपीभावना जाणंग छे, पण जीवस्वरूपने जाणी शके नहि, जे माटें क्षयोपशम ज्ञानें अव्याबाधनुं स्वरूप जाण्युं न जाय, पण जे जीव तुझ समान गुणना (राय) स्वामी थया, तेज परमात्मा, ए अव्याबाध गुणनुं स्वरूप जाणे तथा भोगवे, बीजाने प्रगट नथी, केमके आत्मधर्म अतीन्द्रिय छे, माटे तेना भोगी सिद्ध भगवन्त छे, बीजाथी ए भोगवाय नहि ॥ इति अष्टमि गाथार्थ ॥

एम अनंत दानादिक निजगुण, वचनातीत पंडूर जी ॥ वासन न्रासन भावें दुर्लभ, प्रापति तो अति दूर जी ॥ शी० ॥ ए ॥

अर्थः—एम अनन्त (दानादि) दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य, सिद्धत्व प्रमुखगुण, हे प्रभुजी! त्हारे प्रगट छे, तोपण वचने गम्य नथी, (पण्डुर) म्होटा छे, एवा आत्मगुणनी (वासना) श्रद्धा, (भासन) जाणपणुं, ते पामवुं दुर्लभ छे, तो प्रगटपणे एवी सिद्धता प्रामवी सिद्धतानी प्राप्ति थवी तेतो घणीज वेगळी छे ॥ ९ ॥ इति नवम गाथार्थः ॥

सकल प्रत्यक्षपणे त्रिभुवनगुरु, जाणुं तुज गुण ग्राम जी ॥ बीजुं कांहिं न मागुं स्वामी, एहिज छे मुज काम जी ॥ शी० ॥ १० ॥

अर्थः—हे त्रिभुवनगुरो! त्हारी अनन्त गुण-सम्पदा ते सर्व हुं प्रत्यक्षपणे जाणुं एज मागुं

छुं, एज इच्छा छे, म्हारे एज काम छे, जे त्हारी सम्पदा ते केवलीने प्रत्यक्ष छे, माटे केवलज्ञान मागुं छुं. परन्तु हे प्रभुजी ! हुं बीजुं (कांहिं) कइ पण मागतो नथी ॥ १० ॥ इति दशम गाथार्थः ॥

एम अनन्त प्रभुता सर्द्दहतां, अर्चे जे प्रभु रूप जी ॥ देवचंद्र प्रभुता ते पामे, परमानन्द स्वरूप जी ॥ शी० ॥ ११ ॥

अर्थः—एम अनन्ती प्रभुनी प्रभुता. परमात्मता, सर्वप्रदेश निरावरणता अनन्त पर्याय, निरावरणता सकलज्ञानादि गुण निरावरणता, तेने सर्द्दहतां सम्यक्त्व गुण प्रगटे, ते प्रभुना

गुणनी बहु मानसहित प्रतित करतां जे जीव श्री शीतलनाथना गुणने योगें प्रभुने अर्चे, ते प्रभुने अर्चवानो अधिकार श्रीरायप्पसेणी सूत्र मध्यें कह्युं छे.

अह्वेगइया वंदणवत्तियाए पूयण वत्तियाए सक्कारवत्तियाए सम्माण वत्तियाए सुअं,सुणिस्सामो वागरणं पुछिस्सामो अह्वे गइया जिणभत्तिए धम्मोत्ति अह्वेगइया जीय मेयंति ॥

ए आलवानी टीकामां अर्थ कर्यो छे, के जो प्रभुजीनो योग न मळे तो प्रभुनी स्थापना ते पण प्रभु समान छे. जे श्रीअरिहन्तने वांदवानुं फळ सूत्रे कह्युं छे.

हियाए सुहाए निस्सेसाए, अ-
णुगामियत्ताए ॥

अने जिनप्रतिमाने वांदवानुं फल पण एज आलावे कह्युं छे, तथा साधुने अधिकारें महाव्रत पालवानुं फल पण एहीज कह्युं, एम सूत्रें अनेक अधिकार कह्या छे, तेमाटे प्रभुना रूपने पूजवानो मोटो लाभ छे, कोइ द्रव्य हिंसा देखीने भय पामे, तेणें उपयोग देवो जे सूत्रें परजीवनी दयानुं फल शातावेदनी कही छे, अने आपणो आत्मा ज्ञानादि गुणें जोडीयें, तो भावदया थाय ते मोक्षहेतु छे, अने भाव हिंसा ते हिंसा छे. तथा द्रव्यहिंसा ते भावहिं-सानुं कारण छे, परंतु हिंसा नहीं. इहां श्री भाष्कारनुं वचन लखे छे ॥

एवमाहिंसा न्नावो,
जीव घणंति नयतजिउंन्निह्यिं॥
सब्बोवह्वयमजोवं,
नयजीव घणंतितो हिंसा ॥ १ ॥

नन्वेवं सति लोकस्यातीव पृथिव्यादिजीव घनत्वात्‌हिंसाऽन्नावः संयतैरपि अहिंसाव्रतमिति निर्वाह्यितुमशक्यमिति ॥

माटे पांच थावर बादरनी बहुलतायें साधुने पण आहार, वन्दन, विनय, वैयावच्चादि करतां, अहिंसाव्रत केम रहे? त्यां कहे छे.

जीवाकुले लोके अव-यमेव जी-

वघातः संभाव्यते जीवांश्च घ्नन् कथं हिंसको न स्यादिति ?

उत्तरं नय घायजत्ति हिंसो,
घायतोत्ति निच्छिय माहिंसो ॥
नविरलजीवमाहिंसो,
नय जीव घणंति तो हिंसो ॥ १ ॥

अहणंतोविहु हिंसो,
दुठत्तणुउ मउ अहिमरोव्व ॥
बाहिंतो नवि हिंसो,
सुद्धत्तणुउ जहा विज्जो ॥ २ ॥

नहि घातक इत्येतावता हिंस्रः नवा घ्नन्नपि निश्चयमतेन हिंस्रः,

नापि विरलजीवमित्येतावन्मात्रेणा हिंस्त्रः

पुनः ॥ गाथा ॥

असुन्नो जो परिणामो,
सा हिंसा सोउ बायरनिमित्तं ॥
कोवि अवेखि जानवा,
जंम्हाणेगित्तिया वज्जं ॥ १ ॥
अशुन्न परिणाम हेऊ,
जीवाबाहो त्तितो मया हिंसा ॥
जस्स उ नसो निमित्तं,
संतोविन तस्ससा हिंसा ॥ २ ॥

जीव वधो अशुन्नपरिणाम हेतुः

तदा हिंसा यदि अशुभ परिणाम-
हेतुर्न तदा हिंसा न इति ॥

सद्दादउरइफला,
नविय मोहस्स जाव सुद्धाउ ॥
जह तह जीवाजावो,
न सुद्धमणसो विहिंसाए॥१॥इति॥

एम आगमप्रमाणें द्रव्यहिंसा ते कारणरूप छे, ते विषयकषायना अर्थीने हिंसा छे, परंतु जिन गुणनुं बहुमान करनारने जिनपूजा कालें पुष्पादिनी हिंसा ते हिंसानुं कारण नथी, श्री भगवतीसूत्रें पण क्रियाने अधिकारें एमज कह्युं छे, वनस्पति हणवाना पच्चख्खाणीने पृथ्वी खोदतां वनस्पति हणाय तो पच्चख्खाण भांगे नहीं. तो जिनपूजाए जिनस्वरूप अवलम्बन

करतां आत्मगुण निर्मल करे, गुणीने स्मरणें अनेक गुणी थया छे, ते माटे मुनिने अनुमोदवा योग्य जिनभक्ति, रायप्सेणी सूत्रें सूर्याभें नाटक कर्युं परंतु गौतमादि श्रमणगणें दीठुं, ते सज्जाय जेटलो लाभ हतो, तो ते स्थानकें बेठा रह्या, तेथी जिनभक्ति ते मोक्षसाधन छे एम जे प्राणी जिनना रूपने अर्चे, पूजे, ते सर्व देवमां चन्द्रमा समान श्रीअरिहन्त देव तेनी प्रभुता पूर्णानन्दमय सम्पदा पामे, एवुं परमानन्दनुं कारण श्रीशीतलनाथ प्रभुनुं सेवन छे, ते सर्व जीव करो, अने स्तुतिकर्त्ता पण देवचन्द्र छे, तेणें पोतानुं नाम पण सूचव्युं, ए शीतल प्रभु अनन्त गुणी छे, परन्तु भद्रकपणायें जे जे गुण जाण्या, ते ते गुणनी स्तवना करी ॥ ११ ॥ इति शीतलनाथ० ॥ सम्पूर्ण.

## ॥अथ एकादश श्रीश्रेयांसजिन स्तवनं॥

॥ प्राणी वाणी जिनतणी, तुमें धारो चित्त मझार रे ॥ ए देशी ॥

श्री श्रेयांस प्रभुतणो, अति अद्भूत सहजानन्द रे॥ गुण एक विध त्रिक परिणम्यो,एम गुण अनन्तनो वृन्द रे ॥ मुनि चन्द जिणन्द अमन्द दिणन्द परें, नित्य दीपतो सुखकन्द रे ॥ १ ॥

अर्थः—श्री श्रेयांसप्रभु परमेश्वर निष्पन्न निरावरण स्वस्वरूप भोगीनो अति अत्यन्त उत्कृष्ट ( अद्भुत ) आश्चर्यकारी ( सहजानन्द ) अकृत्रिम सहज स्वभावनो आनन्द छे. श्री

श्रेयांसप्रभुजी ते जीवद्रव्य छे, साधनरत्न त्रयी परिणमीने सिद्ध थया छे, ते सिद्धपणे असङ्ख्यात प्रदेशी छे, अनन्त गुणी छे, अनन्तपर्यायि छे, ते प्रभुनो एक एक गुण ते त्रण त्रण परिणतिरूप छे, सर्वद्रव्यनुं अर्थ क्रियाकारीपणुं ते गुणपरिणतिथी छे, ते मध्ये असाधारणपणुं विशेषगुणनी मुख्यतायें छे, अने साधारण गुणनी परिणति पण कर्त्ता द्रव्यनी कर्त्ताने हाथ छे, कर्त्ता करे तो प्रवृत्ते, कर्त्ता न करे तो न प्रवृत्ते, पांच अकर्त्ता द्रव्यनी गुणपरिणति सदा परिणमे छे, ए रीत छे, अने जीवद्रव्यनी गुणपरिणति, सिद्ध अवस्थायें सदा प्रवर्त्ते छे, पण कारक चक्रना वर्त्तनथी प्रवृत्ते छे, तेमाटे आत्मद्रव्यना ज्ञानादि जे गुण छे, ते त्रिविधें परिणमे छे. ए

रीते त्रिविधता ते कारण, कार्य, अने क्रिया, ते गुणनी। तेज गुणमां छे ए त्रण परिणामनो कर्त्ता ते आत्मा छे, त्यां उपादानपणे प्रकृष्ट कारण ते करण अने ते करणनुं फल साध्य ते कार्य तथा ते करवारूप प्रवृत्ति ते क्रिया, कर्त्तानो व्यापार ते सिद्ध अवस्थायें अभेदरूप छे, जेम ज्ञान गुण ते करण जाणवुं, अने ते ज्ञानगुणथी जे ज्ञेयपदार्थोनुं ज्ञान थाय ते एनुं साध्य फल छे माटे ए कार्य जाणवुं तथा ते कार्य जाणवाने जे ज्ञाननी स्फुरणा एटले प्रवृत्ति ते क्रिया जाणवी, ए त्रणे अभेद छे, ए त्रिविध परिणामे परिणम्या, एवा अनन्तगुणना वृन्द छे, ए श्री श्रेयांस प्रभुना सर्वगुण व्यापकपण स्वकार्यताने करे छे ॥

॥ उक्तं च विशेषावश्यके ॥

जं कज्ज कारणाई,
पज्ञाया वत्थुणो जउ तेण ॥
अन्नेणन्नेण मया,
तो कारण कज्ज नयंणेज्ज ॥ १ ॥

इति वचनात् ॥

एम कारण कार्य क्रियानी अभेदता पण छे, तथा भेदता पण छे, काले अभेदता छे सत्व, प्रमेयत्वें अभेदता छे, अने संज्ञा सङ्-ख्या लक्षणें भेदता छे, माटे एवी व्याख्या छे ॥ मुनिचन्द केतां मुनि जे त्रिकाल अविषयि तत्व रमणीमां चद्रसमान अथवा मुनिचन्द जि-णन्द ते जिन सामान्यकेवलीमां चन्द्र समान,

वली ( अमन्द ) देदीप्यमान ( दिणन्द ) सूर्य तेनी पेठे दीपतुं छे, तेज जेनुं तथा ( सुखकन्द ) सुखनो समूह छे जेने एहवा श्री श्रेयांसप्रभु तेना सर्व गुणव्यक्तपणे स्वकार्यने करे छे ॥ १ ॥

हवे आत्माना अनन्त गुण छे, तेमां मुख्यगुण ते उपयोग छे

सव्वाउ लद्धिउ सागरोव उत्तस्स उववज्ज इतो अणगारो वउत्तस्स इति ॥

ते उपयोगमां प्रथम ज्ञान गुण छे, माटे प्रथम ज्ञानगुणनी त्रिविधता कहे छे ॥ इति ॥

निजज्ञाने करी ज्ञेयनो, ज्ञा-

यकज्ञातापद ईश रे ॥ देखे निज-
दर्शन करी, निज दृश्यसामान्य
जगीश रे ॥ मु० ॥ २ ॥

अर्थः—लोकालोकमां जे वर्त्तमान छे, तथा अतीतकालें हतुं, अने आगामिककालें थशे, ते सर्व पोताना तथा परना भावप्रमेय-त्वपणा माटे ते ज्ञेय छे, एटले जाणवा योग्य छे, तेनुं जाणवुं ते आत्माना असङ्ख्यात् प्रदेश निष्ठित ज्ञानगुण छे, ते ज्ञान, आत्मानो स्वधर्म छे, सर्व विशेषनो जाणंग छे, तेथी ( निज ) पोताना ज्ञानगुणें करीने जाणे एटले ज्ञान ते जाणवा रूप कार्यनुं कारण थयुं, उपादानकारण कार्यता एक समय छे, अने ते जाणवारूप कार्यनी प्रवृत्ति, ते वीर्यने सहकारें

क्रिया थाय छे, जो गुणनी प्रवृत्ति विना जा-णवारूप कार्य मानियें, तो दर्शनोपयोग काले ज्ञानगुणनुं निरावरणपणुं छतुं छे, पण क्रिया विना उपयोग नथी, तेमाटे कारणभूत ज्ञानें करी सर्वज्ञेयने जाणो छो, पोताना ज्ञानगुणें करी सर्वज्ञेयना ( ज्ञायक ) जाणनार छो, तथा हे प्रभु ! तमे जाणंगपणा माटे ज्ञातापदना ईश छो, स्वामी छो, ज्ञानमायि छो, सर्व जाण छो, तेथी ज्ञाता छो.

हवे दर्शनगुणनी त्रिविधता कहे छे. हे प्रभुजी ! तमें पोताना दर्शनगुणें करीने (निज) पोताना (दृश्य) देखवा योग्य जे सर्व आस्ति-कायनी सामान्यता, अस्तित्व वस्तुत्व द्रव्य-त्व, प्रमेयत्वादि, नित्यत्वाऽनित्यत्वादि, सा-मान्यपणे जे ( जगीश ) सम्पदा एटले आ-

स्माने विशे अनन्त सत्त्व द्रव्यत्वादि सामान्य सम्पदा छे, तेने दर्शनगुणें देखे, ते.

" दर्शनेन दृश्यन्नावानां दर्शनं करोति आत्मा "

अहि आत्मा ते देखणहारो दर्शनगुणें करणभूते देखवा योग्य जे पदार्थ, ते सर्वने देखे छे, एटले देखवुं ते कार्य, दर्शनगुण ते कारण, दर्शनगुणनी प्रवृत्ति ते क्रिया, देखणहारो आत्मा ते कर्त्ता, ए दर्शनगुणनुं त्रिविध परिणमन जाणवुं ॥ २ ॥ इति द्वितीय गाथार्थः॥

निजरम्यें रमण करो, प्रभु चारित्रे रमता राम रे ॥ भोग्य अनन्तने न्नोगवो, भोगे तेणें न्नोक्ता स्वामरे ॥ मु० ॥ ३ ॥

अर्थः—हवे चारित्रगुणनी त्रिविध परिणति कहे छे. हे प्रभुजी ! हे परमेश्वर ! हे परमानन्द पूर्णानन्दी ! त्हारो अनन्त आत्मधर्म ते तमने रम्य छे, रमवा योग्य छे, ते शुद्धात्मपरिणति रूप निजरम्य विशे तमें रमण करो छो. चारित्रगुणें करीने एटले चारित्रगुण करणें स्वरम्यने विशे जे रमण ते रूप कार्य अने चरण गुण प्रवृत्तिरूप क्रिया तेने करो छो, तेमाटे हे प्रभुजी ! तमें रमता राम छो, पोताना स्वरूपमां रमता छो तेथी स्वरूप रमणी स्वरूपानुभवी स्वरूप विश्रामी छोजी ॥

हवे भोगगुणनी त्रिविधता कहे छे(भोग्य) भोगववा योग्य जे प्रगट आत्मस्वरूप अनन्त ज्ञानादि गुण, तेने तमें भोगगुणें करी भोगवो छो, ते केम ? जे भोगांतरायकर्मनो क्षय तमने प्रगट थयो, ते भोगगुणवडे तमें पोताना भोग्य

योग्य जे अनन्तआत्म संम्पदा तेने भोगवोछो, माटे हे स्वामी ! तमे भोक्ता छो. बीजा जीव क्षयोपशम भोगी पुद्गलादि अशुद्ध परिणतिने भोगवे छे, तेतो अशुद्धभोक्ता छे, अने तमे (शुद्धभोक्ता छो.) भोगगुण करणें निजभोक्तापणारूप कार्यने करोछो, भोगगुणनी प्रवृत्ति, रूप क्रिया करोछो.

अत्ता सहावन्नोई,
ते असहावाउ अत्तपरिणामा ॥

इति वाक्यात् ॥

माटे भोक्ता गुणना स्वामी छो ॥ ३ ॥
इति तृतीय गाथार्थः ॥

देय दान नीत दीजते, अति

दाता प्रभू स्वयमेव रे ॥ पात्र तुमें निज शक्तिना, ग्राहक व्यापकमय देव रे ॥ मु० ॥ ४ ॥

अर्थः—हवे दानगुण, जे दानांतराय कर्मना क्षयथी प्रगटयो छे माटे ते दानगुण तथा लाभगुणनी त्रिविधपरिणति कहे छे. अही दान ते सिद्धतामां स्वगुणनां प्रवृत्तनने स्वकीय क्षायिक वीर्यनी सहकारतानुं देवुं ते दान, अने सहकारतानी प्राप्ति जे गुणने थई ते लाभ, ए रीतें दान तथा लाभ गुण प्रवृत्ते छे, ( देय ) देवा योग्य जे गुण तेने सहकार ते दान, ते दान ( नित्य ) सदा दीजें, तेथी हे परमेश्वर! तुमें अति दाता छो, अनन्तगुणनें सहकाररूप अनन्त दान दियो छो, (स्वयमेव) पोताथीज

पोताने आपो छो, एटले दानगुण ते करण, अने दानगुणनी प्रवृत्ति ते क्रिया तथा सहकाररूप दान दीधुं ते कार्य, ए सर्वनो स्वामी आत्मा ते दाता छे, आत्माने ए शुद्ध दान छे, तथा शुद्ध लाभ छे, अने जे परभावनुं देवुं तथा लेवुं तेतो विभाव छे, ते आत्माने घटतो नथी. वली हे स्वामी! तमें (निज) पोतानी शक्ति अनन्तगुणपर्यायरूप तेना (पात्र) आधार छो, तथा ते आत्मशक्तिना ग्राहक तमें छो, अने ए आत्मशक्तिना व्यापक तन्मयता रूप अवस्थानवन्त पण तमेंज छो ॥ ४ ॥ इति चतुर्थ गाथार्थः ॥

परिणामी कारजतणो, कर्त्ता गुण करणें नाथ रे ॥ अक्रिय अ-

क्षय स्थितिमयी, निकलंक अनंतो आथ रे ॥ मु० ॥ ५ ॥

अर्थः—वली हे देव ! हे परमेश्वर ! तमारा अनेक अभिलाप्य तथा अनभिलाप्य गुण सर्व प्रागभाव थया, तेनी त्रण परिणति कहे छे. पारिणामिकपणे जे अव्याबाधादि अनन्त गुणनु कार्य, तेना कर्त्ता छो, गुणरूपकरणे करीने एटले गुण ते करण अने ते करणनुं जे फल ते कार्य, तथा गुणनी प्रवृत्ति ते क्रिया, ए करण कार्य, क्रियाना कर्त्ता हे नाथ ! तमेंछो, जे तमारुं सर्व पारिणामिकपणुं तेना तमेंज कर्त्ता छो, बीजा द्रव्यमां कर्त्तापणुं नथी. वली हे प्रभुजी ! तमें अक्रिय छो, क्रिया ते चलयोगी पणे छे, अने सिद्ध तो अचल छे तेथी

अक्रिय छो. वली हे प्रभुजी ! तमे अक्षय स्थितिमयि छो, जे आउखानी स्थीति तेतो सयोगीभावनी छे, अने श्री सिद्धभगवन् ते तो सहजगुणी छे, तेथी अविनाशी स्थीति तमारी छे. वली (निकलङ्क सर्व कर्मकल्ङ्क रहित छो, तथा निरावरणी एवी जे अनन्त (आथ) संपदा तेना तमे धणी छो ॥५॥ इति पंचम गाथार्थ

परिणामिक सत्तातणो, आविर्भाव विलास निवास रे॥ सहज अकृतिम अपराश्रयी, निर्विकल्पने निःप्रयास रे ॥ मु० ॥ ६ ॥

अर्थः—हवे कदाचित् कोइ कहेशे जे कोइ गुण अधुरो हशे ? माटे तेने पुर्णता कही देखाडे छे.पारिणामिकपणुं ते (सत्ता) छती तेनो

( आविर्भाव ) ( प्रगटपणुं ) एटले प्राग्भाव ते अनन्तगुणपर्याय निरावरण सकल पूद्गल सङ्ग रहित थत्रे सम्पूर्ण सत्ता तिरोभावीपणे हती, ते प्रकट थइ छे, ते प्राग्भावी सत्ताना विलासना अनुभवनो हे प्रभुजी ! तूं (निवास) [केतां घर] छो. स्वगुणभोगी छो, स्वस्वभावना अनुभवी छो. वली हे प्रभु ! तमें [ सहज ] स्वभावनो जे मूलधर्म तेना अकृत्रिम ते पण ( अपराश्रयि ) परवस्तुना आधार विना, ते वली ( निर्विकल्प) मनोचिंतना विना, ते वली ( निःप्रयास ) प्रयास उद्यम विना जे आत्मधर्म, तेनो अनुभव ते तमें भोगवो छो ॥ ६ ॥ इति षष्ठम गाथार्थः ॥

**प्रभु प्रभुता संभारतां, गातां करतां गुणग्राम रे ॥ सेवक साधन-**

ता वरे, निज संवर परिणति पाम
रे ॥ मु० ॥ ७ ॥

अर्थः—एवा प्रभुनी सेवनानुं जे फल थाय, ते कहे छे. प्रभु जे श्री श्रेयांसनाथ निष्पन्नतत्वी, निरामयि, निरावरणी, तेनी प्रभुता अनन्तज्ञानमयि सर्व संवरी अनन्तानन्दरूप परमेश्वरता, असहायता, सर्व शक्ति निरावरणता, अनन्तपर्याय स्वकीय कार्य कर्त्तापणारूप निःकर्मता, निःसङ्गता, प्रभुत्व, विभुत्व, ग्राहकत्व, व्यापकत्व, आधारत्व, कारकत्व, कारणत्व, कार्यत्व, इत्यादि प्रभुता एक एक प्रदेशें अनन्तगुण पर्याय प्राग्भाव परिणमनरूप स्वरूप सम्पदाने संभारतां, चित्तमां स्मरण करतां, तथा ( गातां ) स्वर योगें गावतां गुणनो ( ग्रा-

म ) समूह करतां सेवक तत्वरुचि आत्म सि-
द्धतानो अर्थी ते निष्पन्न परमेश्वरना बहुमान-
थी जीव अनादिनो बाधक, स्वरूप पराङ्मुख
थइ रह्यो छे, ते जीव साधनता ते आत्मस्वरूप
निरावरण करवारूप साधन अवस्था, उत्स-
र्ग अपवाद समकितथी मांडी अयोगी चर्म
समयरूप गुणस्थानारोहण, दोषत्याग, गुण-
प्रागभाव अधिक गुणनी रुचि, पूर्णतत्त्वनी ई-
हारूप साधनापणुं पामे, ते ( निज ) पोतानी
संवरपरिणतिने पामी प्रभुगुण उपयोगें वर्त्त-
तो चेतना गुणीना गुणने अनुयायि थाय,
त्यारें स्वरूपईहारूप दर्शनगुण परिणमे, तेथी
पोतानी संवरपरिणतिने पामे, ते जीव तत्त्वता-
ने साधे, अने साध्यरसीनी जे साधकता ते प-
रमानन्दनुं कारण छे ॥७॥ इति सप्तम गाथार्थः॥

प्रगटतत्त्वता ध्यावता, निजतत्त्वनो ध्याता थाय रे ॥ तत्त्व रमण एकाग्रता, पूरणतत्त्वे एह समाय रे ॥ मु० ॥ ८ ॥

अर्थः—तेहीज भावना कहे छे. के आत्माने पोतानी जे सम्पदा तेतो कर्म आवृत छे, ते भासनमां आववी दुर्लभ छे, अने निष्पन्न परमेश्वरनी तत्त्वता तो प्रगट छे, ते श्रुतोपयोगें भासनमां आवे, तेमाटे प्रकटतत्त्वी जे श्री अरिहंत सिद्ध, तेनी निरावरण आत्मसम्पदा तेने ध्यावतां थकां, जीव पोतानी सत्तागत द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक तत्वतानो ध्याता थाय छे, "द्रव्यस्य तुल्यता" माटे ॥ इति ॥ एम स्वतत्वने ध्यावतो तत्वरमण तथा तत्वनी

अनुभूति करे, तत्व जे स्वगुणपर्यायरूप ते मध्यें एकाग्रता तन्मयता थाय, त्यारें ए सेवक जे श्रेयांसप्रभुनो गुणावलम्बी, तेज पूर्णतत्व· रूप तत्वी थई, पूर्णानन्द निरावरण स्वस्व-भावनी पूर्णताने पामे, पोतानी पूर्णप्रागभावी तत्वतामां सिद्ध बुद्ध थाय. एज मोक्षनो उपाय छे. अहीं भावना कहे छे, के अनादि मिथ्या-त्व असंयम कषाययोग हेतु परिणति गृहीत कर्म विपाक क्वाथ्यमान विसंस्थुलात्मशक्तिमं-तने अनेकांत शुद्धात्मस्वरूपनुं श्रवण करवुं ते पण दुर्लभ छे, ते जीवने श्रीजिनसेवनथी, जिननुं स्वरूप ओलखाय, तेथी स्वरूपरुचि उपजे. पछी स्वधर्मपणा माटे रुचिवन्त जीव ते उद्यमे वर्ततो आत्मधर्म निपजावे, अनुक्रमे निर्विकल्प समाधि भजी, शुद्धात्म पूर्णता पामे

एज मोक्षमार्ग छे ॥८॥ इति अष्टम गाथार्थः ॥

प्रभु दीठे मुज सांभरे, परमातम पूर्णानंद रे ॥ देवचंद्र जिनराजना, नित्य वंदो पय अरविंद रे ॥ मु० ॥ ए ॥

अर्थः—ते माटे प्रभु दीठे एटले प्रभुनो स्थापना निक्षेपो दीठे मुने ( सांभरे ) स्मरणमां आवे, शुं स्मरणमां आवे ? तो के परमात्मा, सिद्ध, भगवान्, अचळ, असङ्गि, अभोगी, अयोगी, तेनो पूर्ण अनन्तपर्यायि त्रिकाळ अविनाशी ( आनन्द ) गुणानन्दादि ते सांभरे, अने जे प्रभु स्वरूपाश्रित चेतना करवी, तेज पोतानी आत्मता साधवानो परम उपाय छे, तेमाटे देव जे निर्ग्रंथादि तेमां च-

न्द्रसमान जे जिनराज वीतराग श्रीश्रेयांस परमेश्वर, तेना पदरूप ( अरविन्द ) कमल तेने नित्य वन्दो, सदा प्रणमो, तथा स्तुतिकर्त्तानुं नाम पण देवचन्द्र छे, ते पोताने पण कहे छे, जे श्री अरिहन्तना चरण नित्य सेवो, अरिहन्तसेवन तेज संसार महासमुद्र मोहावर्त्त अज्ञानान्धकार मिथ्यात्वकर्दममग्न जीवने ( निस्तार ) पार करवानो पुष्ट उपाय छे. अरिहन्त आलम्बने अरिहन्त प्रतिमाने आलम्बने अनन्त जीव पूर्णानन्दी थया. वळी जे यथार्थ ओळखाणें पुद्गलाशंसा रहितपणे श्री अरिहानुं सेवन करशे, ते परमसुख पामशे. एज शरण त्राण आधार छे ॥ ९ ॥ इति एकादश श्री श्रेयांसजिन स्तवन संपूर्ण ॥११॥

# ॥ अथ द्वादश श्रीवासुपूज्य-जिन स्तवन ॥

हवे प्रभुसेवन जे पूजना तेनां द्रव्यभाव ओलखाववारूप बारमा प्रभु श्री वासुपूज्यजी तेमनी स्तुति करियें छियें. त्यां निक्षेपा चार लखियें छियें. १ नाम, २ स्थापना, ३ द्रव्य, ४ भाव. तिहां नामनिक्षेपाना लक्षणनी गाथा ॥

पज्जायाणभिधेयं,
ठियमण्णत्थे तयत्थ निरविक्खं ॥
जा इच्छियं च नामं,
जाव दव्वं चपायेणं ॥ १ ॥

तथा स्थापनालक्षणं गाथा

जं पुण तयत्थ सुन्नं,

तगाने प्याएण तारिसागारं ॥
कीर इव निरागारं,
इत्तर मियरं च सा ठवणा ॥२॥

द्रव्य लक्षणं गाथा।

दवए डुवएदो रवयवो,
विगारो गुणाणं संदावो ॥
दवं नवं नावस्स,
नुयनावं च जं जोगं ॥ ३ ॥

अथवा यच्च कारणं तत् द्रव्यं ॥ नूतस्य नाविनो वा, नावस्य हि कारणं तु यल्लोके तत् ड्रव्यं, इत्यादि ॥

भावलक्षणं हारिभद्रसूरिपूज्यैः

॥ भावो विवक्षितक्रियानुभूतियुक्तोहि विधिः समाख्यातः सर्वज्ञैरिंद्रादिव इंदनादिक्रियानुभवात्

अर्थः—ए रीतें चार निक्षेपा छे तथा कोइ नामादि निक्षेपा उपचारे माने छे तेने कहियें के भिन्न वस्तुने नामादि करिये, ते भिन्न छे, परंतु पोत पोतानी वस्तुनां नामादि चारे ते वस्तुमांज छे, ते माटे कह्युं छे, श्री जिनभद्रपूज्यैः

इह भावोच्चिय वत्थु,
तयत्थ सुनेहिं किंच सेसेहिं ॥
नामादओ विभावा,
जं तेवि हु वत्थुपज्जाया ॥ इति ॥

यद्यस्मात् तेपि नामादयो व- स्तुनः पर्याया धर्मा स्तथा ह्यप्रवि- ष्टइंद्रवस्तुन्युच्चरिते नामादयोपिभा- वविशेषाः ॥

एवं वली भाव निक्षेपाने अंते कह्युं छे,

तदेवं भिन्नवस्तुषु विशेषतश्चिं- त्यमानानां नामादीनां प्रधानेतर- भावोदर्शितः सामान्यतः पुनश्चिंत्य- मानानां सर्ववस्तुषु प्रत्येकं चतुर्णा- मप्यमीषां सद्भाव प्राप्यतएवेति दर्शयन्नाह ॥ अहवा वत्थुन्निहा णां नामं ठवणा य जो तयायारो॥ कार-

णयासेदव्वं, कज्जाय वन्नं तयं न्नावो १

ए गाथायें चार निक्षेपा एक वस्तुमां कह्या, तथा वली नामादि नयनें परस्पर विवादे मिथ्यात्वीपणुं पूज्यें कह्युं छे.

॥ एवं विवयंति नया, मिछ्छान्निनिवेसउ परोप्परउ ॥ इतिवचनात् ॥

वली पूज्यनुं ज वचन छे जे,

नामाइन्नेयसह्ह,
बुद्धिपरिणामन्नावउ नियमं ॥
जं वछ्छअछ्छिलोए,
चउपज्जायं भयं सवं ॥ १ ॥

इति—ए रीतें नामादिक चारे निक्षेप ते वस्तुना स्वपर्याय छे, एम श्रद्धा करवी. ए

निक्षेपानुं स्वरूप विस्तारे श्री विशेषावश्यकमां छे, त्यांथी ए गाथाओ लखी छे॥इति प्रशस्तिः॥

॥ पंथडो निहालुं रे बीजा जिन तणोरे ए देशी ॥

पूजना तो कीजेंरे बारमा जिन तणीरे, जसु प्रकटयो पूज्य स्वभाव ॥ परकृतपूजा रे जे इछे नहीं रे, साधक कारज दाव ॥ पू० ॥१॥

अर्थः—हवे बारमा श्री वासुपूज्य स्वामीनी स्तवना करे छे. हे भव्य जीवो ! तमारे जो आत्माने सुखी करवानुं मन छे, तो बारमा जिन वीतराग श्रीवासपूज्य पुरुषोत्तमनी पूजना कीजे, एटले सकलगुणनिरावरण, परम चारित्री परमज्ञानी, आयोगी, अभोगी, अलेशी, असहायी, अकषायी, अरूपी, शुद्धस्वरूपी जे सि-

द्ध सकलपरभाव अभांगी पुद्गलोपचाररहित एवो पूज्यस्वभाव जेनो प्रकटयो छे, तेनी पूजा कीजें, जे भक्तिना रागी नहीं. अने द्वेषी नहीं, एवा सर्वज्ञ तेज पूजवा योग्य छे ॥

उक्तं च आप्तमीमांसायां

॥ अनुष्टुपव्रतम् ॥

देवागम नभोयान,
चामरादिविभूतयः ॥
मायाविष्वपि दृश्यंते,
अत स्त्वमसि नो महान् ॥ १ ॥
सूक्ष्मांतरितदूराथ,
प्रत्यक्षाः कस्यचित् यथा ॥
अनु मे तत्त्वतोज्ञान,

मिति सर्वज्ञशंसितम् ॥ २ ॥

॥ गाथा ॥

अइ सय पाडिहेरा,
सब्व कम्म उदयसंभूआ ॥
तेणं न विम्हउ मे,
विम्हउ वीयरागत्ते ॥ १ ॥

इत्यादि ॥

वली प्रभुनुं पूज्यपणुं कहे छे. जे परकृत देवता मनुष्य गुणरागी अनेक प्रकारनी भक्ति, पूजा करे छे, परंतु परमेश्वर, कोइनी पुजा इच्छता वाञ्छता नथी, इच्छादोष रहित छे, माटे परभावनो सङ्ग, तथा परकृतपूजाने वाञ्छता नथी, ते पूज्य जाणवा. अने साधक

जे मोक्षना अर्थी, मार्गानुसारी, समकिती, दे-शविरति, संवेगपक्षी मुनिराज, तेनुं कार्य, जे सम्पूर्णसिद्धता, तेना (दाव) उपाय छे, तेज नि-मित्तयोगे अनन्त सिद्ध निपना, माटे पोतें पू-जाना अवाञ्छक, अने पूजे तेने परमानन्द पू-र्णता निपजे ॥ १ ॥ इति ॥ प्रथम गाथार्थ

द्रव्यथी पूजा रे कारण भावनुं रे, भाव प्रशस्तने शुद्ध ॥ परम इष्ट वल्लभ त्रिभुवन धणी रे, वासुपू-ज्य स्वयं बुद्ध ॥ पू० ॥ २ ॥

अर्थः—ते पूजाना बे भेद छे, एक द्रव्य-पूजा, बीजी भावपूजा, त्यां न्हवण विलेपनादि जे बाह्य उपचार, योग समारवाने करियें, ते

द्रव्य पूजा जाणवी त्यां अढार पापस्थानक छे, ते सर्व आत्माने दुःखहेतु छे, ते पलटाववाने पूजामां प्रशस्त राग करिये, ते आत्माने तज्जातीय तजवायोग्य जे कर्म ते कर्म निर्ज्जरवानी नीति छे, माटे जिनपूजा ते संवर छे, तेथी अवश्य करवा योग्य छे, तेमां बाह्यथी जे फूल, केसर प्रमुखनी पूजा, ते द्रव्य रूप छे, ते भावपूजा जे गुणगुणी एकत्वतारूप तेनुं कारण छे, माटे द्रव्य निक्षेपो ते तेनेज कहियें, के जे भावनुं कारण होय. हवे भावनिक्षेपें पूजा ते बे प्रकारनी छे. प्रथमप्रशस्तभावनिक्षेपें पूजन, बीजुं शुद्धभावनिक्षेपें पूजन. तेमां भाव ते आत्मानी परिणति, अने प्रशस्त ते गुणी उपर राग जाणवो.

॥ उक्तं च ॥ गाथा ॥

अरिहंते सुयरागो,

रागो सुमुणीसु पवयणेसु य ॥

ए सुपसत्थो रागो,

......................॥ १ ॥

चउसरणपयन्नामां कह्युं छे ॥

सुकयाणराय समुप्पन्न, पुन्न पुण्यं कुरु करालो॥ इति वचनात्॥

हवे प्रशस्तनुं स्वरूप लखे छे. तेमां जे विषय परिग्रह उपर राग छे, तेथी तो कर्मबन्ध उपजे, अने अनुकम्पा ते शातावेदनीयनी हेतु छे, ते तो सर्व निर्गुणी जीव उपर पण छे, तथा गुणी उपर अनुकम्पा करवी, ते निंदामां रहेवा योग्य छे.

॥ उक्तं च आवश्यके गाथा ॥

सुहिएसु अ दुहिएसु अ,
जा मे असंजएसु अणुकंपा ॥
रागेणव दोसेण व,
तं निंदे तं च गरिहामि ॥ १ ॥

इति वाक्यात् ॥

तथा जे अरिहन्तादि पंच परमेष्ठी अने आगम, साधर्मिक उपर पक्षपात विना गुणीपणा माटे जे राग, ते प्रशस्त राग जाणवो. ते यद्यपि पुण्यबंधनो हेतु छे, तथापि छता आत्मगुणने स्थिर थवानो तथा नवा प्रगट करवानो हेतु छे. पुण्यानुबंधी पुण्यनो हेतु छे, ए श्री हरिभद्र सूरि पूज्यें पंच वस्तुग्रन्थमां कह्युं छे.

॥ गाथा ॥

नाणाइ गुणरुइ खलु,
तास्सीय गुणसंपयं संपत्तो ॥
धन्नो गुणसंपत्तो,
पसढ रागं तिहिं कुणई ॥ १ ॥
गुणरुइ मूलं एयं,
तेणं गुणवुड्हिहेउयं भणियं ॥
जह इलाइपुत्तो,
पसढरागेण गुणपत्तो ॥ २ ॥

इति वचनात् ॥

इहां कोइ पूछे जे, श्री गौतमस्वामीने त्रिभुवन दयाल, त्रिशलानन्दन, श्रीवीरपरमा·

त्मा उपर राग हतो, तें केवळज्ञाननेरोधक केम थयो ? तेने उत्तर कहे छे. जे श्री गौतमनो प्रशस्त राग, क्षयोपशम रत्नत्रयीनो तो दीपक हतो, पण श्रीवीर विद्यमान छतां, रागनी मन्दता थइ नहीं, केम के छते कारणे राग टळवो दुःक्कर छे, पण ज्यारे कारण मट्युं तेथी रागनी अवस्था अटकी, त्यारें श्रेणी थई, तेम प्रशस्त राग सर्व जीवाने क्षयोपशमी रत्नत्रयीनो विरोधी नथी, क्षायकतानी ईहायुक्त, क्षायकताने नजीक करे, परंतु क्षायक रत्नत्रयी थवा दिये नहीं.

॥ उक्तं च श्रीसंविङ्गमुख्यैः

श्रीजिनेश्वरसूरिपूज्यैः संवेगरंगसालायां गाथा ॥

सिद्धे रत्तो तग्गुण,
ईहाए लप्पए गुणे सव्वे ॥
तेणं अरिहंताई,
सुगुण सुरागं समाहिउ ॥ १ ॥

ते माटे प्रशस्त भावपूजा ते पण साधकतामां छे.

हवे शुद्धभावपूजा ते, जे आत्मानुं सामान्य चक्र, विशेषचक्र, क्षयोपशमी चेतनावीर्य, ते सर्व, श्री अरिहन्तपरमात्माना क्षायक सिद्धत्वादिगुणानुयायि प्रवृत्ते, ते शुद्धभावपूजा एटले गुण रागी थईने गुणबहुमानी थवुं. पछी स्वस्वरूपमां तन्मय थवाथी स्वरूपपूर्णता निपजे, ए मोक्षनो मार्ग छे.

हवे प्रशस्त भावपूजानुं स्वरूप कहे छे.

श्री अरिहन्त वासुपूज्यस्वामी, ( स्वयं ) पोताथी बुद्ध थयेला त्रिभुवननाथ ते ( परम ) अत्यन्त ( इष्ट ) रळियामणा ( वल्लभ ) वाल्हा लागे, ते प्रशस्तरागरूप भावपूजा जाणवी ॥२॥ इति द्वितीय गाथार्थः ॥

अतिशय महिमा रे अति
उपगारता रे, निर्मल प्रभु गुणराग ॥
सुरमणि सुरघट सुरतरु तुंठते रे,
जिनरागी महाभाग ॥पू० ॥ ३ ॥

अर्थः—वळी प्रशस्तरागीपणुं ओळखावे छे. जे श्री अरिहन्त अतिशयना महिमा उपर ( अद्‌भुतता ) आश्चर्यना तथा आठ प्रातिहार्यनी विस्मयता इत्यादि देखीने अथवा सांभळीने जे राग उपजे, ते सर्व प्रशस्तराग जाण

वो, तथा जगत्‌ना जीवोने महामोहांधकार नि-
वारवारूप धर्मदेशना देईने (विसरी) भूलि गएला
जे आत्मधर्म, तेने देखाडे सर्व सन्देह टाले ए
उपकारे, भावआजीविकाना दातार, तत्वथी
भूले पडया जीवोने तत्वना देखाडनार, एवुं
उपकारीपणुं श्रीअरिहन्तनुं छे, ते उपकारीपणा
उपर जे इष्टता, तथा निर्मल कर्म आवरणे
रहित केवलज्ञान, केवलदर्शन, वीतरागता,
असङ्गता, स्वरूप भोगी प्रमुख गुण उपर राग
ते पण प्रशस्त राग वली (सुरमणि) चिन्ता-
मणि रत्न अने ( सुरघट ) कामकुम्भ तथा
( सुरतरु ) कल्पवृक्ष ते सर्व तुच्छ भासे; केम-
के एतो इहलोकसुखना हेतु, तथा भावअशुद्ध-
ताना वधारवा वाला छे, तेने असार जाणीने
तुच्छ गणे, अने श्रीअरिहन्तनो राग ते परम्प-

रायें आत्मसुखनो हेतु छे, आत्माना गुणनी वृद्धि करवानुं पुष्ट निमित्त छे, ते माटे श्री जिनराज, परमदयाळ, स्वगुणभोगी, महागोप परमोपकारी, म्हारी तत्व सम्पदाना उपदेशक, ते उपर जे जीवने साची ओलखाणे राग प्रकटे, ते जीव महाभाग्यवान्, तथा पवित्र जाणवा. जे जीव कामराग, दृष्टिराग, स्नेह रागनी भीड टालीने, श्री पुरूषोत्तम, परमानन्दी श्री वासुपूज्य प्रभु उपर रागी थयो, तेने धन्य छे. ते ( महन्त् जीव ) म्होटा भाग्यनो धणी जाणवो. ए सर्व प्रशस्त राग भाव पूजा कही. ॥ इति तृतीय गाथार्थः ॥ ३ ॥

दर्शन ज्ञानादिकगुण आत्मना रे, प्रभु प्रभुता लयलीन ॥ शुद्ध

स्वरूपी रूपें तन्मयोरे, तसु आस्वादन पीन ॥ पू० ॥ ४ ॥

अर्थः–हवे शुद्धभावपूजा कहे छे त्यां जे आत्माना क्षयोपशमभावी दर्शनगुण, तथा ज्ञानादिगुण, ते सर्व प्रभुनी प्रभुताथी लयलीन थया छे, बहुमान श्री अरिहन्तनुं छे, भासन पण अरिहन्त गुणनी अनन्ततानुं छे, रमण श्री अरिहन्त गुणनां स्वरूप भासननुं छे, अनुभव पण अरिहन्त गुणना भासननो छे. एम जेटली आत्मशक्ति प्रगटी छे. ते सर्व अरिहन्त गुणने अनुयायी करीने, तन्मयतारूप करे, ते शुद्ध भावपूजा, ते आवी रीतः– प्रभुतानो निराधार भासननुं आस्वादन, ते आनन्दतायें मग्न रहेवुं. शुद्धस्वरुपी परमात्मानुं स्वरूप जे वस्तुधर्म, ते मध्ये तन्मयी थईने, ते-

ना आस्वादने अनुभवे, (पीन) पुष्ट रहे, ते भावथी भक्ति जाणवी, तथा वन्दन नमनादि ते योग भक्ति, तथा प्रभु उपर इष्टता ते राग भक्ति, तथा हुं सहुथी म्होटो म्हारे अरिहन्त परमेश्वर जेवो धणी छे, हुं मोक्षना मार्गने पाम्यो, अने पोताना आत्मगुणने प्रभुनी प्रभुताने अनुयायिपणे वर्त्तावे, एवो लीन थइ रहे, ते तत्वभक्तिवन्त एवा समकिती देशविरति, सर्वविरति, जेणें पोतानी मूलपरिणति प्रभुताथी मेलवी छे, आत्मपरिणतिरूप उत्सङ्गें प्रभुनी प्रभुताने रमावी रह्या छे, महानुभाव छे, ते शुद्धभावपूजा जाणवी ॥ ४ ॥ इति चतुर्थ गाथार्थ ॥

शुद्धतत्व रस रङ्गी चेतना रे,

पामे आत्मस्वभाव ॥ आत्माल-

म्बी निजगुण साधतोरे, प्रगटे पूज्यस्वन्नाव ॥ पू० ॥ ५ ॥

अर्थः—एम शुद्ध निर्मल तत्वी श्री अरिहन्तदेव सिद्ध भगवान् तेना रसेंगङ्गाणी तेना गुणनी भोगी ज्यारे चेतना थई, अन्य विकल्प टाली अनुभवभावना सहित प्रभुस्वरूपे रसीली थई त्यारे ते चेतना पोताना आत्मस्वभावने पामे, आत्मस्वभावरुचि, आत्मस्वभावोपयोगी, आत्मस्वभाव रमणी, आत्मानुभवी थयो, एटले उपादानावलम्बी अवस्था पामे अने ज्यारे ए भव्यजीव आत्मावलम्बी थाय, त्यारें पोताना गुणने साधतो निपजावतो, सम्यक् दर्शनादि गुणने प्रकट करतो, गुणस्थान क्रमे दोषनी हानी गुणप्राग्भाव स्वरूपएकत्वता स्व-

रूपानुभवी थतो, तल्लीनताने निपजावता पोताना अनादिकालना सत्तागतपज्य स्वभावने प्रकट करे. एटले पहेला हूं परमपूज्य अनन्तगुणी छुं, ए निर्धाररूप सम्यक् दर्शन प्रकटे, स्याद्वादसत्तानुं भासन थाय, पछी जे सत्ता प्रगटी, तेनो रमण अनुभवरूप चारित्रगुण प्रगटे, पछी शुक्लध्यान प्रगटे, पछी निरावरण केवलज्ञान नीपजे, ए परमपूज्य श्रीअरिहन्तने पूजवाथी पोतानो पूज्यस्वभाव प्रगटे ॥ ५ ॥

इति पंचम गाथार्थ.

आप अकर्त्ता सेवाथी हूवे रे, सेवक पूरणसिद्धि ॥ निजधन न दीए पण आश्रित लहे रे, अक्षय अक्षर ऋद्धि ॥ प० ॥ ६ ॥

अर्थः—श्री वीतराग पोते परजीवनु मोक्ष-कार्यना अकर्त्ता छे, कारण के परकर्त्तापणुं जीवद्रव्यनो धर्म नथी, तेथी पोते परजीवनी सिद्धिना कर्त्ता नथी, पण श्रीप्रभुजीनी सेवाथी ( सेवक ) भक्त, ने ( हूवे ) थाय, शुं थाय ? तो के सम्पूर्ण सिद्धता निपजे, ( निज ) कहेतां पोतानो धन जे अनन्त ज्ञानादि गुण ते प्रभु कोइ बीजाने आपता नथी, एटले कोइ पोतानो गुण बीजाने आपे नहीं, अने ते गुण पण पोतानी द्रव्यने मूकी बीजामां वर्त्ते नहीं, अने कोइ द्रव्य कोइ द्रव्यनो गुण ग्रहे पण नहीं, सर्व द्रव्य पोतें पोतानी सत्ताना स्वामी छे, ते माटे अरिहन्त पोते कांइ आपताज नथी; परन्तु जे अरिहन्तने आश्रित सेवे, ते निश्चे पामे ( अक्षय ) जेनो क्षय न थाय तथा जे विनाश

न पामे, तथा ( अक्षर ) खरवुं जरवुं जेमां नथी, एवी अविनाशी अक्षर अनन्त आत्मसम्पदा पूर्णानन्दादि रूद्धि ( लहे ) पामे, माटे जिनभक्ति तेज सिद्धता नीपजाववानो पूर्ण उपाय छे ॥ ६ ॥ इति षष्ठ गाथार्थः ॥

जिनवर पूजा रे ते निजपूजना रे, प्रकटे अन्वयशक्ति ॥ परमानन्द विलासी अनुभवे रे, देवचन्द्र पद व्यक्ति ॥ पू० ॥ ७ ॥

अर्थः—जे जिनराजनी पूजा भक्ति करवी, ते पोताना आत्मानी पूजना करवी छे, आत्मगुण वधारवा छे, आत्मसम्पदानी पुष्टि करवी छे, कारण के जिनसेवनाथी पोताना अन्वयी गुण जे सहजज्ञानानन्दादि अनन्तश-

क्ति ते पोषे, वधे, प्रकटे, निरावर्ण थाय, ते जीव परमानन्दनो विलासी थई, ( अनुभवे ) भोगवे, सर्वदेवमां चन्द्रमा समान जे पद परमात्मता, पूर्णता, निरावर्णता, निरामयता, तत्त्वभोगता, स्वरूपानन्दतारूप, तेनी (व्यक्ति) प्रकटता जे कर्मावर्णे अनादिनी आवृत्त छे, ते सर्व कर्मक्षय थये अक्रिय, अनवाच्छिन्नता, शक्ति प्रकटे शुद्ध थाय, तेमाटे निष्पन्न जिननी भक्ति ते परमात्मता रूप आत्मसिद्धतानुं कारण छे, तेमाटे हे मोक्षार्थी जीवो तमे श्रीवीतराग अरिहानी पूजना ते विधि सहित निरभिलाषे तत्वसाध्यतायें करो, एज उत्तम उपाय छे ॥ इति श्रीवासपूज्यजिन स्तवनं समपूर्ण ॥

## ॥ अथ त्रयोदश श्री विमलजिन स्तवनं ॥

॥ दास अरदास सीप करेजी ॥ ए देशी ॥

विमल जिन विमलता ताहरी
जी, अवर बीजे न कहाय ॥ लघु
नदी जिम तिम लन्घीयें जी, स्व-
यम्भुरमण न तराय ॥ वि० ॥ १ ॥

अर्थः—हवे श्री विमळनाथ प्रभुजीनी स्तुति कहे छे. हे विमलजिन! हे परमेश्वर! त्हारी (विमलता) निर्मळता केवी छे? जे समस्त द्रव्यकर्म भावकर्म परानुयायितादि दोष रहित पणे छे एवी निर्मळता ते (अवर) बीजा कोइ छद्मस्थ जीवने न (कहाय) कहि शकाय नहीं ॥

सिद्धस्वरूपस्य अनन्तत्वात् वाचकमपरिणितत्वात् आयुष्याल्पत्वात्, तेनवक्तुंनशक्यते केन इति भाष्यवचनात् ॥

ते माटे कहेवाय नहीं तेना उपर दृष्टांत कहे छे. जेम ( लघुनदी ) नान्ही नदी तेने जेम तेम ( लन्घीयें, ) उतरियें, पण असङ्ख्यात् कोडी योजननो स्वयम्भूरमण नामा समुद्र, ते कोइ पामरजनथी तर्यो जाय नहीं, अने प्रभुना गुणतो स्वयम्भूरमण समुद्रथी पण अनन्त गुणा छे, ते सर्व वचने कह्या जाय नहीं ॥ १ ॥ इति प्रथम गाथार्थ ॥

सयल पुढवी गिरि जल तरु जी, कोइ तोले एक हाथ ॥ तेह

पण तुज गुणगण नणी जी, भाखवा नहीं समरथ ॥ वि० ॥ २ ॥

अर्थः—तथा ( सयल ) सर्व पृथ्वी, गिरि ते पर्वत, जळ ते पाणी, तरु ते वनस्पति, ए सर्वने कोइ एक हाथें ( तोले ) उपाडे, एवो बलवन्त पण ते बाल वीर्यवन्त होय तेथी ते पण प्रभुजी ! त्हारा गुणना ( गण ) समूह तेने (भाखवा) कहेवाने समर्थ नहीं, कारण के तेमां बाळवीर्यनी शक्ति छे, अने तमारुं निर्मल स्वरूप ते केवल ज्ञानी क्षायक वीर्यवन्तने गम्य छे, तेने पण सर्व वचने गोचर थायेज नहीं, तो बालवीर्यवन्तथी केम केहेवाय ! ॥ इति द्वितीय गाथार्थः ॥

सर्व पुद्गल नभ धर्मना जी, तेम अधर्म प्रदेश ॥ तास गुण

धर्म पर्याय सहुजी, तुझ गुण एक तणो लेश ॥ वि० ॥ ३ ॥

अर्थः-सर्व पुद्गल द्रव्य, तथा ( नभ ) आकाश द्रव्य, ( धर्म ) धर्मास्तिकाय द्रव्य, तेमज अधर्मास्तिकायना प्रदेश, एटले ए पंचास्तिकायना प्रदेश अनन्त तेना गुण अनन्त ते गुणधर्म नित्यत्वादि ते पण अनन्त तेना पर्याय वली तेथी अनन्तगुणा छे, ते सर्व मली पण हे प्रभुजी ! त्हारो एक गुण जे केवलज्ञानरूप तेनो लेशमात्र छे, कारण के ए सर्व पञ्चास्तिकायना भाव वर्त्तमान काले छे, अने केवलीतो ए सर्वना अतीत, अनागत, अने वर्तमान, ए त्रणे कालना पर्याय उत्पाद्, व्यय, ध्रुवरूप तेने एक समयमां जाणे, तथा एथी

अनन्तगुणा बीजा धर्मने पण एक समयमां जाणे, ते माटे केवलज्ञाननी शक्ति अनन्तगुणी छे

॥ उक्तं च विशेषावश्यके ॥

ये हि केवलस्य निःशेषज्ञेयगता विषयभूता पर्यायास्ते ज्ञानाद्वैतवादिनयमतेन ज्ञानरूपत्वादर्थापत्त्यैव स्वपर्यायाः प्रोक्ता नतु परपर्यायापेक्षया इत्यविशेषकेवलत्वविरोधो नाशंकनीय इति ॥ ३ ॥

एम निजभाव अनन्तनी जी, अस्तिता केटली थाय ॥ नास्तिता स्वपरपद अस्तिताजी, तुझ सम

काल समाय ॥ वि० ॥ ४ ॥

अर्थः—ए रीतें जेम केवलज्ञान गुण अनन्तपर्यायि छे, तेमज केवल दर्शनादि (निज) पोताना भाव गुणपर्याय अनन्त छे, तेनी अनन्तता केटली थाय छे जे स्वद्रव्य खेत्र काल भाव रूप आस्तिपणुं ते अनन्त छे, तेम परपर्याय जे बीजा जीवद्रव्य तथा पुद्गलादि अजीव द्रव्य तेना प्रदेश तेना स्वभाव तेना गुण पर्यायनी जे अनन्तता ते सर्वनुं नास्तिपणुं तमारामां छे, ते पण अनन्त छे,

ते तस्ससपज्जाया, सेसा परज्जावा सवे ॥ इति श्री पूज्यपादाः

तथा च हेम सूरिः

ये यस्य समवेता स्ते तस्य स्व-

पर्यायाः प्रोच्यंते, अस्तित्वेन संबं-द्धास्ते च अनंता येच घटादिगताः आस्य पर्यायास्तेभ्यो व्यावृत्तित्वेन नास्तित्वे ससंबद्धा इति ॥

ए नास्तिपर्याय ते पण द्रव्यनिष्ठित छे,

तेषामपि व्यावृत्तिरूप तया परमा-र्थिकं स्वपर्यायत्वेन विरुद्धयते,

एटले नास्तिपणुं ते पण वस्तुना पर्याय छे, एम नास्तितानी पण अन-न्तता छे, ते (स्वपदें) पोताने पदे ज्ञानगुणना अमूर्तत्व, चेतनत्व, सर्ववेतृत्वमतिपातित्व नि-रावर्णत्वादय केवलज्ञानस्यस्वपर्याय एम केव-लज्ञानना स्वपर्यायें अस्तिरूप अनन्त छे, हवे

केवलदर्शनादि अनन्त गुणना जे पर्याय छे, ते सर्व केवलज्ञानमां नास्तिपणे रह्या छे, ते जेम केवलज्ञान अस्तिनास्तिपणे छे, तेमज केवलदर्शन तथा चारित्र सुख, अरूपता, अगुरुलघुता, परम दानादि अनन्तगुण, ते सर्व पोतानी जाति एक जीवद्रव्य मिश्रित अनन्त गुणनी नास्तिताने लीधे रह्या छे, तेमज बीजा जीवद्रव्य तथा पुद्गलादि अजीवद्रव्य, ते सर्वना गुणपर्यायनी पण नास्तिताने लीधे रह्या छे, एम स्वपदें नास्तिता तथा परपदे पण नास्तिता छे, ते सर्व नास्तितापणुं ते द्रव्यमांज अस्तितापणे रह्यो छे, नास्तिधर्मनी अस्तिता ते द्रव्यमांज छे, त्यां भावना कहे छे के जीवने विशे ज्ञानादि गुणनी अस्तिता तेम वर्णादिनी नास्तिता छे, ते वर्णादिपणुं जीवमां नथी पण

तेनी नास्तिता जीवमां रही छे, एम तत्त्वार्थमां कह्युं छे ॥

यदि परनास्तित्वाजीवादिषु न स्यात् तदा जीवादीनां परत्वपरिणतिः स्यात् इति "

माटे जीवमां अस्तिपणुं तथा नास्तिपणुं ते बेहु अस्तिपणे रह्या छे,

उक्तं च विशेषावश्यके.

" द्विविधं हि वस्तुनः स्वरूपं अस्तित्वं च नास्तित्वं च ततो ये यत्रास्तित्वेन प्रतिबद्धा स्ते तस्य स्वपर्यायाः येतु नास्तित्वेन संबंद्धास्ते तस्य परपर्यायाः प्राति पाद्यंते इति

निमित्तत्वेदख्यापनपरावेव स्वपर-
शब्दौ नत्वेकेषां तत्र सर्वथा सम्ब-
न्ध निराकरणपरौ अतो अस्तित्वे
न सम्बन्धा इति परपर्याय उच्यन्ते
न पुनः सर्वथा ते तत्र न सम्बद्धाः
नास्तित्वेन तत्र सम्बद्धा इति व-
चनात्. ”

ते माटे नास्तिपणानो वस्तुथी सम्बन्धज छे, ते ( स्वपद ) स्वद्रव्यना गुणांतरनी विवक्षित, गुणमां नास्तिता तथा ( परपद ) परद्रव्यना गुणनी नास्तिता ए नास्तिता सर्व वस्तुधर्मे पारिणामिक भावे रही छे, ते सर्व निरावर्णपणे हे श्री विमलप्रभु ! तमारी परिणामिकतामध्ये

तथा कर्तृतामध्ये भोक्तृतामध्ये ( समकाळे ) प्रतिसमये समाये छे, एटली अनन्तता तमारे विशे छे. हे प्रभुजी ! तमारी निर्मलता ते समकीति जीवने श्रद्धागोचर छे. तथा पूर्वधरने परोक्षभासन गोचर छे, अने केवलीने प्रत्यक्ष छे, ए रीतें अभिलाप्य तथा अनभिलाप्यनी अनन्तता छे, ते बीजा कोइथी कहाय नहीं, माटे हे नाथ त्हारूं ज्ञान, दर्शन, सुखधर्मनी अनंन्तता ते जे भव्यजीवने स्याद्वादोपेत भासन प्रतीत गोचर थइ, ते जीवने पण धन्य छे, तो हे प्रभुजी ! तमारी शी वात कहुं. तमे तो महापूज्य छो, म्होटा छो ॥४॥ इती चतुर्थ गाथार्थ

ताहरा शुद्धस्वभावने जी, आदरे धरी बहु मान ॥ तेहने तेहिज

नीपजे जी, ए कोई अद्भुत तान ॥ वि० ॥ ५ ॥

अर्थः—हे प्रभुजी ! त्हारो जे शुद्धनिर्दोष स्वभाव, अनन्तानन्दादिरूप अक्रिय, अक्षय, तेने जे ( आदरे ) अङ्गिाकार करे, वन्दन, सेवन, स्मरण, ध्यानादिपणे आदरे, वली ( बहुमान ) अत्यादरपणे जे ग्रहे, ते साध्यार्थी सेवकनो तेवोज पोतानो स्वभाव शुद्ध थाय, निःकर्मता नीपजे, प्रभुना जेवो स्वभाव निर्मल थाय, माटे हे प्रभो ! ए कोई ( अद्भुततान ) अरिहंत प्रभुनुं शुद्धस्वरूप चिंतवतां ध्यान करतां, पोतानुं स्वरूप नीपजे, ए ज आश्चर्य छे ॥ ५ ॥ इति पंचम गाथार्थः ॥

तुम प्रभु तुम तारक विभुजी,

तुम समो अवर न कोय ॥ तुम दरिसणथकी हुं तर्यो जी, शुद्ध आलम्बन होय ॥ त्रि० ॥६॥

अर्थः—माटे हे श्री विमलनाथ! म्हारा प्रभु अधिपति तमेज छो. वली मुजने संसारमांथी तरवा वाला परमनिर्यामक परमसामर्थवन्त तमे छो. हे देव! हे नाथ! हे कृपासिन्धु! हे ज्ञानभानू! तुमसमान म्हारे बीजो कोई नथी, त्रिभुवनमां तमेज दयाल छो, हे जगत्वत्सल ताहरो (दर्शन) देखवुं अथवा दर्शन ते समकित तेने पामीने हुं तर्यो, संसार समुद्रने उलङ्घि पार थयो, अहीं कारण पामेथी भक्तिना हर्षे उपचार वचन कह्युं, एम शुद्ध निर्मल स्वरूपनो आलम्बी थयो थको हे नाथ! त्हारा स्वरूपने अव[illegible]वे, में माहरुं स्वरूप ओलख्युं, तेओ-

लक्ष्यार्थी स्वरूप रुचि उपनी, पछी स्वरूप-विश्रामी अनुभवध्यानी थये तवो ए भावी कार्यनो वर्त्तमानारोप नैगमनयनुं वचन छे ॥ ६ ॥ इति षष्ठ गाथार्थ ॥

प्रभुतणी विमलता उलखो
जो, जे करे स्थिर मन सेव ॥ देव
चंद्र पद ते लहे जो, विमल आ-
नन्द स्वयमेव ॥ वि० ॥ ७ ॥

अर्थः—ए रीतें प्रभुजीनी (विमलता) निर्मलता तेने ऊलखीने जे प्राणी (स्थिरमन) द्रढ मने सेवा भक्ति करे, ते समकिती, देशविरति सर्व विरति जीव, सर्वदेवमां चंद्रमा समान पद परमात्मपद (लहे) पामे. अनादि

संततिसंयोगी द्रव्य भावकर्म उपाधी क्षय करीने, निर्मल सिद्ध बुद्ध आत्मतत्त्वनी पूर्णताते पामे इहां स्तुतिकर्तानुं नाम पण देवचंद्र छे, ते सूचव्युं ए पद केवुं छे जे मध्ये ( विमल ) निर्मल आनन्द ते ( स्वयमेव ) पोतेज छे, ते पोतानो आनन्द पोते भोगवे एवा अनन्त धर्म प्रागभाव रूप श्री विमलनाथजीनी सेवना करो, मोक्षार्थी जीवने श्रीअरिहंत सेवना तेहिज मोटुं कारण छे, अनादिनी भ्रान्ति टालवानुं पुष्ट निमित्त छे. ॥ ७ ॥ इति त्रयो दशम श्री विमलजिन स्तवनं संपूर्ण ॥

# ॥ अथ चतुर्दश श्री अनंत-जिन स्तवनं ॥

॥दीठीहो प्रभु दीठी जग गुरु तुज ॥ए देशी॥

मुरति हो प्रभु मुरति अनन्त जिणंद, ताहरी हो प्रभु ताहरी मुझ नयणे वसी जी॥ समता हो प्रभु समता रसनो कन्द, सहेजें हो प्रभू सहेजें अनुभव रस लसी जी ॥ १ ॥

अर्थः—हवे चौदमा प्रभु श्री अनन्तनाथजीनी स्तवना करे छे. हे अनन्तनाथजिणन्द !( त्हारी ) तमारी ( मूरति ) मुद्रा एटले

आकार ते म्हारा ( नयणे ) नेत्रने विशे वसी छे ! ते मुद्रा केवी छे तो के समता जे राग द्वेष रहितपणु एटले समभाव रूप जे रस तेनो कन्द छे. वली सहज प्रयास विना अनुभव स्वभोगीपणुं तेहना रसथी लीन छे, तन्मय छे ॥ १ ॥ इति प्रथम गाथार्थ ॥

भवदव हो प्रभु भवदव तापित जीव, तेहने हो प्रभु तेहने अमृतघन समो जी मिथ्याविष हो प्रभु मिथ्याविषनी खीव ॥ हरवा हो प्रभु हरवा जांगुलि मनरमी जी ॥ २ ॥

अर्थः—वली भव जे चारगतिरूप संसार,

ते रूप ( द्व ) दावानलना तापे करीने बळी रहेला जीवोने परम शीतळता करवाने त्हारी मूरति ते अमृतना मेह समान छे, एटले संसारनो ताप तमारा दर्शनथी टळे छे, माटे. वळी मिथ्यात्वरूपाविष तेनी (खीव) घूमि मूर्छा तेने हरवाने ( ज्यांगुळी ) गारुडीना मंत्र समान त्हारी मूर्ति छे ॥ २ ॥ इति द्वीतिय गाथार्थ ॥

भाव हो प्रभु भावचिंतामणि एह, आतम हो प्रभु आतम संपति आपवा जी ॥ एहिज हो प्रभु एहिज शिवसुख गेह, तत्व हो प्रभु तत्त्वालम्बनस्थापवा जी ॥३॥

अर्थः—वळी हे प्रभु ! तुमारी मुद्रा

भाव चिन्तामणि रत्नसमान छे, एटले चिन्तामणि रत्न ते इन्द्रियसुखनो हेतु छे, ते तो द्रव्यचिन्तामणि छे अने श्रीवीतरागनी मुद्रा ते मोक्षसुखनी हेतु छे, माटे भाव चिन्तामणि समान छे, आत्मानी पोतानी अनन्तज्ञानादि सम्पत्ति आपवाने चिन्तामणि रत्न समान छे माटे एहिज शिवसुखनुं घर छे, तत्त्व जे वस्तुनो मूलधर्म छे, ते अवलम्बवाने तमारी मूर्ति श्रेष्ठ कारण छे ॥ ३ ॥ इति० ॥ त्रतिय गाथार्थ.

जाए हो प्रभु जाए आश्रव चाल, दीठे हो प्रभु दीठे संवर वधे जी ॥ रत्न हो प्रभु रत्नत्रयी गुणमाल, अध्यातम हो प्रभु अध्यातम साधन सधे जी॥४॥

अर्थः—वली (जाय) नाश पामे (आश्रव) नवीन कर्म लेवानी चाल नाश पामे तथा प्रभुजीनी मूर्ति दीठे, संवरनी वृद्धि थाय, आत्मधर्मरमणस्वरूपता वधे. वली रत्नत्रयी केतां सम्यक्‌दर्शन, ज्ञान, चारित्ररूप जे गुणनी (माला) निर्मल श्रेणि ते जेमां छे, एवो अध्यात्म आत्म स्वरूप तेनुं [ साधन नीपजाववानो उपाय ते [ सधे ] नीपजे ॥ ४ ॥ इति चतुर्थ गाथार्थ.

मीठी हो प्रभु मीठी सुरत तुझ, दीठी हो प्रभु दीठी रुचि बहुमानथी जी ॥ तुज गुण हो प्रभु तुझ गुण भासन युक्त, सेवे हो प्रभु सेवे तसु भव भय नथी जी ॥ ५ ॥

अर्थः—हे प्रभुजी ! त्हारी ( सूरत ) स्थापना जे आकाररूप सुंदर मुद्रा दीठी ते घणीज ( मीठी ) मिष्ट लागी पण केवी दीठी जे रुचि मोक्षाभिलाषयुक्त तथा बहुमान संयुक्त अत्यन्त हर्षे दीठी, जे आज हुं धन्य कृतपुन्य जेम वसुदेव हिंडमध्ये कह्युं छे.

कोविहु पुन्नवित्तं,
वविउं पुव्वं च नव सहस्सेहिं ॥
तेणं जिणवरदंसण,
लंभोमयंच जे लद्धो ॥ १ ॥

तेथी अहो वीतरागता ! अहो ध्यानता ! अहो उपकारता ! अद्भुतता ! आश्चर्यता ! जे हुं रंक दीन मोहेमग्न असंयमीने ए प्रभु मुद्रानो योग बन्यो, ते घणीज मोटी वात थई एवा

बहुमाने दीठी, एवी अरिहन्तमुद्रा ते अरिहन्तना केवल ज्ञानादिक गुण जे अनन्त चतुष्टय तेना भासन उपयोग युक्त जे जीव सेवे, पर्युपासना द्रव्य तथा भावथी करे, तेने ( भव ) संसारनो भय नथी. जे अरिहन्तनी भक्ति करे ते संसार भ्रमण करे नहीं

॥ उक्तं च ॥ गाथा ॥

इक्को वि नमुक्कारो,
जिणवर वसहस्स वद्धमाणस्स ॥
संसार सागराउ,
तारेइ नरं व नारि वा ॥ १ ॥

इति वचनात् ॥ ५ ॥ इति पंचम गाथार्थः ॥

नामे हो प्रभु नामे अद्भुत

रङ्ग, ठवणा हो प्रज्ञु ठवणा दीठे उल्लसे जो ॥ गुण आस्वाद हो प्रज्ञु गुण आस्वाद अभङ्ग तन्मय हो प्रज्ञु तन्मयतायें जे धसेजी॥।६॥

अर्थः—वळी हे प्रभु ! तमारूं नाम सांभळवाथी ( अद्भुत ) विस्मयभूत रङ्ग उपजे. वळी हे देव ! ताहारी परमोपकारी स्थापना दीठाथी उल्लास थाय छे. माटे स्थापना परमोपकारी छे जे दीठे पोतानुं स्वरूपपणुं सांभरे. वळी स्थापनाने निमित्तें गुण जे अनन्त चतुष्टयादि, परम निर्मल यथार्थोपदेशादिक वचनातिशय अशोक वृक्ष, इन्द्रध्वजादिक देखीने अभङ्ग गुणनुं आस्वादन थाय ते गुण आस्वाद केवो छे तोके अभङ्ग छे ते कोने

नीपजे के जे जीव, तन्मयतापणे श्रीप्रभुना गुणथी थसे, तेने नीपजे. तेनेज इत्यादि गुण ग्राहिपणाने वातोनो आनन्द थाय॥६॥ इति षष्ठ गाथार्थः ॥

गुण अनंत हो प्रभु गुण अनन्तनो वृन्द ॥ नाथ हो प्रभु नाथ अनन्तने आदरे जी ॥ देवचंन्द्र हो प्रभु देवचन्द्रने आनन्द ॥ परम हो प्रभु परम महोदय ते वरे जी ॥ ७ ॥

अर्थः—इम ज्ञानादिक अनन्त गुणना ( वृन्द ) समूह एहवा [ नाथ ] श्री अनन्तनाथ स्वामी तेने जे आदरे, उपादेय करे, ते प्राणी देवचन्द्र जे स्तुतिकर्त्ता अथवा देवचन्द्र

ते चोसठ इन्द्र तेने [ आनन्द परमानन्दमयी एवो जे परममहोदयवन्त मोक्षरूप स्थानक तेने भक्तिवन्त जीव [ वरे ] पामे ए नियामक छे. ए प्रभुजीने सेवतां कर्म क्लेशथी रहित थाय ॥७॥इति चतुर्दश अनन्तजिन स्तवन संपूरणं॥

---

## ॥ अथ पंचदश श्री धर्मनाथ जिन स्तवनं. ॥

॥सफल संसार अवतार ए हुं गणुं॥ए देशी॥

धर्म जगनाथनो धर्म शुचि-गाईयें, आपणो आतमा तेहवो भावियें ॥ जाति जसु एकता तेह पलटे नहीं, शुद्ध गुणपजावा वस्तु

सत्तामयी ॥ १ ॥

अर्थः—हवे श्री धर्मनाथ भगवाननी स्तुति करेछे अने आत्मद्रव्यने साधकतानो तथा बाधधकतानो उपयोग आणे छे. त्हां धर्म एवे नामें पन्नरमा तीर्थंकर जगत् उपकारी परमतत्त्वी जगत्रय नाथ, तेने परमाहितकारी धर्म प्रगटयो छे, ते आत्मस्वभावी धर्म छे.

॥ उक्तं च ॥

धर्मसंग्रहण्यां ॥ जो पूण आय सहावो, धम्मोपागिरस इत्यादि अथवा उन्नयस्कयहेज इत्यादि पुनः भावधर्माधिकारे ॥ जीवाणं न्नावधम्मो, कम्माभावेण जो खलु स-

हावो ॥ इत्यादि ॥ कम्मविम्मुक्कस-
रूवो, अणिंदियत्ता अभिज्झज्झेज्झाउ
॥ रूवादि विरहतोवा, अणाइ परि-
णाम भावाउ ॥१॥

इत्यादि धर्मस्य स्वरूपं उक्तं

एवो श्रीधर्मनाथ स्वामीनो धर्म [शुचि] पवित्र निरावरण परानुयायी पणारहित तेने गाइयें, वारंवार संभारीयें, तत्व प्रकटरूप ते स्तावियें, अने पोतानो आत्मापण तेवोज (भावीयें) विचारियें, एटले जेवो धर्मनाथ स्वामीनो धर्म छे, तेवोज अमारो आत्मानो धर्मछे.

तथा च सिद्धप्राभृतटीकायाम् ॥

अर्थः—ते माटे सिद्धपणुं ते जीवने पोतानी अवस्था छे, इहां कोइ पूछे जे सिद्ध त-

था संसारी सकर्मा, समोही, मिथ्यात्वी, अ-
संयमीने तुल्य केम कहो छो. तेने कहे छे. जे
वस्तुनी जाती एकतापणे छे, ते किवारें पलटे
नहीं. माटे जीव द्रव्यनुं, एहिज धर्म छे, जे
अनादिनी कर्मावर्त्त थयी तो पण पलटे नहीं,
तो मारी तथा श्री धर्मनाथ स्वामीनीं जीवनीं
जाति एकछे, श्रीठाणांगमां कह्युं छे. " एगे-
आया " इत्यादि ते माटे यद्यपि अत्यन्त मो-
हतीव्र अबोधमां पडयो, तो पण जीवत्वपणुं
संग्रह नयें तेवोज छे जे शुद्ध निर्मल गुणपर्या-
यमयी वस्तुनी सत्ता छे, केमके सर्व पदार्थ
गुणपर्याय संयुक्त छे.

॥ गाथा ॥

जारिससिद्धसहावो,

तारिसन्नावो हु सव जीवाणं ॥

तेणंसिद्धंतरूह,

कायव्वा भवजीवेहिं ॥ १ ॥

तथा च तत्त्वार्थटीकायां ॥

जीवोजीवत्वावस्थोसिद्धः इति

"गुणपर्यायं च द्रव्य ॥इति॥"

॥ गाथा ॥

दव्वं पज्जवविउअं,

दव्वविउत्ता य पज्जवा नत्थि ॥

उप्पाय ठिइभंगाई,

दवीय लक्कणं एवं ॥ १ ॥

इति संमतितः गाथा

उप्पज्जंति चयंति,

परिणमंति गुणाण दव्वाए ॥

दव्वं प्पज्जवाय गुणा,

न गुणप्पज्जवाएदव्वाए ॥ १ ॥

अर्थ--अपज्जाव जाणणा नच्छी तथा आवश्यक निर्युक्तौ ॥

गाथार्थ.

गुणाणामासउदव्वं,

एगदव्व सिया गुणा ॥

लक्कणं पज्जवाणं तु,

उन्नउ निस्सिया नवे ॥ १ ॥

इति उत्तराध्ययने ॥

ते माटे जीवादिक वस्तुनी सत्ता, शुद्ध गुणपर्यायमयीं छे, यद्यपि जीव, अशुद्धपरिणामी छे, अने ज्ञानादिक गुण सर्व कर्मे आ-

वर्त्ते छे, तो पण सत्तायें शुद्ध छे, निरामय छे. माटे आपणा आत्मानुं स्वरूप, ते श्री-धर्मनाथस्वामी समान विचारवुं एज तत्वालम्बनी थवानो मार्ग छे ॥ १ ॥ इति प्रथम० ॥

## गाथार्थ.

नित्य निरवयव वली एक अक्रियपणे, सर्वगत तेह सामान्यभावे भणे ॥ तेहथी इतर सावयवविशेषता, व्यक्तिभेदे पडे जेहनी भेदता ॥ २ ॥

अर्थः—हवे सामान्य विना वस्तुनी छती आधारता नहीं, अने विशेषविना कार्य नहीं, पर्यायप्रवृत्ति नहीं, ते माटे पंचास्तिकाय ते सामान्य स्वभाव अने विशेषस्वभावमयी छे,

तिहां सामान्य स्वभावनुं लक्षण कहे छे. जे नित्य अविनाशी होय, पण आकाशनी परें सावयव होय, अने जे निरवयव जेहने विभाग अंश नथी, तेथी अक्रिय ते पण एकज पण जेमां बे पणो नहीं, स्वजातिमां द्विधाभाव नहीं, ते एकपणे जाणवारूप, अथवा परिस्पन्दरूप क्रिया करे नहीं, तेथी अक्रिय ते पण कोइ पर्यायमां व्यापे, कोइ पर्यायमां न व्यापे, तेवा नहीं पण सर्वपर्यायमां व्यापेज ए लक्षण जेमां छे, तेने सर्वज्ञ देवें सामान्यस्वभाव कह्यो छे. ए सामान्यलक्षण श्री विशेषावश्यके कह्युं छे.

**एगं निच्चं निरवयव,**

**मक्कियं सव्वग्गं च सामन्नं ॥ ३१ ॥**

ए गाथाना व्याख्यानथी जाणवो. त्यां भावना जे नित्यपणुं सामान्य धर्म छे ते प-

दार्थमां नित्यपणुं सदा छे, ते नित्यपणाने पर्यायप्रदेशरूप अवयव नथी, ते नित्यपणुं सर्व एकज छे, अने जाणवादिक कोई क्रिया करतो नथी, तेथी अक्रिय छे, ते नित्यपणुं प्रदेशमां, गुणमां, पर्यायमां, सर्वमां व्यापक छे, तेथी सर्व गत छे. एटला लक्षणने पहोंचे, ते माटे नित्यपणुं ते सामान्य वर्ग छे, एम अनित्यत्वादिक पण सर्व विशेषस्वभाव सत्ताये अस्तित्व तिरोभावीपणे ते सामान्य स्वभावमां जाणवुं. हवे विशेष स्वभावनुं लक्षण कहे छे. ते सामान्यथी ( इतर ) बीजा जे ( सावयव ) सप्रदेशी अविभागपर्याय संयुक्त अनेक अनित्य सावयव, सक्रिय, ते विशेष स्वभाव जाणवो, पण व्यक्ति जे पदार्थ तथा गुणांतर तेना भेदे जेनी ( भेदता ) जुदापणुं पडे,

एटले सर्वव्यक्तिने विषे विशेषपणुं जुदुं जुदुं छे. माटे विशेषनी सर्वत्र जुदाइ छे, ते विशेष स्वभावमां ज्ञानादिक गुणना भेद जाणवा. ए सामान्य विशेषनुं लक्षण कह्युं. ए सामान्य विशेष सत्तामयी द्रव्य छे. ॥ इति द्वितीय ॥

गाथा.

एकता पिंमने नित्य अविनाशता, अस्ति निज रुद्धिथी कार्यगत जेदता ॥ जावश्रुत गम्य अजिलाप्य अनंतता, जव्यपर्यायनी जे परावर्तिता ॥ ३ ॥

अर्थः—ए सर्व धर्मनाथ प्रभुनो धर्म छे. हवे सामान्दस्वभावनां लक्षण कहे छे. १ प्रथम ( एकता ) एक स्वभाव ते जे ( पिंड )

पिंडपणुं ते द्रव्यना सर्वप्रदेश, गुण, पर्याय, तेनो समुदाय ते एक पिंडरूप छे, पण भिन्न रूप वर्त्ततो नथी, तेने एकस्वभाव कहियें.

२ बीजो नित्य ( अविनाशता ) अभंगुरतापणुं ध्रुवपणुं तद्भावाव्ययं नित्यं इति तत्वार्थवचनात् ते द्रव्यमां बीजो नित्यस्वभाव कहियें.

३ त्रीजो सर्व द्रव्य पोतानास्वभाव धर्मे छता छे, पण कोई काले पोतानी शुद्धिने मूकता नथी, ते द्रव्यमां पोतानी शुद्धिथी त्रीजो अस्तिस्वभाव कहियें.

४ चोथो भेद स्वभाव ते कार्यगत छे, एटले जे ज्ञानादिक गुण ते सर्व पोता पोताना कार्यने करे छे, परंतु एकगुण ते बीजा गुणना कार्यने करतो नथी. ज्ञान ते जाणवारूप कार्यने करे छे, दर्शन ते देखवारूप कार्यने करे

छे, तथा चारित्र ते स्थिर भावे निज स्वरुप रमणतारूप कार्यने करे छे, भोगगुण ते भोग्य ने करे छे, इत्यादिक कार्यना भेदें द्रव्यमां चोथो भेदस्वभावपणुं छे.

५ पांचमो द्रव्यमां अभिलाप्य स्वभाव छे, ते वचनथी कहि शकाय तेवा पण आत्मद्रव्यमां अनंता धर्म छे, जे भाव श्रुतज्ञाने करी जणाय माटे श्रुतज्ञाननी शक्तिपणे अभिलाप्य भाव सीम छे, ते पांचमो स्वभाव छे.

६ छठो सर्व द्रव्यमां पर्यायनी (परावर्त्तिता) पलटणता छे, ते भव्य स्वभाव कहियें. ए छे स्वभाव, द्रव्यमां, गुणमां, पर्यायमां छे, माटे ए छ ने सामान्यस्वभाव कहियें ॥ ३ ॥ इति तृतीय गाथार्थः ॥

**क्षेत्र गुण भाव अविभाग अने-**

कता, नाशउत्पाद अनित्य परना-
स्तिता ॥ क्षेत्र व्याप्यत्व अभेद अ-
व्यक्तता वस्तते रूपथो नियत अ-
न्नव्यता ॥ ४ ॥

अर्थः—हवे विशेष स्वभाव सामान्य पण कहे छे. त्यां पहेलो अनेक स्वभाव ते जे क्षेत्रना अविभाग प्रदेश तेथी पदार्थ अनेक स्वभावी छे, तथा गुणाविभाग जे एकएकगुणना अनंता आविभाग छे, जेम चारित्रना आविभाग संयम श्रेणीमां कह्या, वीर्यना आविभाम योगस्थान अधिकार कम्मपयडीमां कह्या छे, ते माटे गुणविभागपणे पण अनेक स्वभाव छे. एक एक द्रव्यमां अनंता गुण छे, ते वली एकेका गुणमां अनंता गुणा विभाग छे, ते अनेक स्वभावता

छे, तथा भाव विभाग जे पर्याय धर्म ते ज्ञानादिक गुणना अनंता पर्यायनी सूक्ष्मता गहन छे, ते पण अनेक स्वभाव छे, एटले क्षेत्र तथा गुणें अने पर्याये सर्व रीते द्रव्यमां अनेकता छे.

२ बीजो (नाश) व्यय तथा (उत्पाद) उत्पाद ए परिणति ते सर्व द्रव्यमां (अनित्य) अनित्यस्वभाव छे.

३. त्रीजो (पर) आपणथी बीजा जे द्रव्य तेना धर्म ते अन्यद्रव्यमां छता पणे नथी एटले एक द्रव्यना जे धर्म ते बीजा द्रव्यमां छतापणे न पामीयें, ते द्रव्यमां (नास्तिता) नास्तिस्वभाव छे.

४. चोथो आत्माना सर्व गुणपर्याय ते भिन्नकार्य करे छे, परंतु (क्षेत्र) भाजन ते सर्वनो आत्मा छे, माटे गुणपर्यायनी अनंतता

प्रदेशे भिन्न भिन्न छे, पण कोई मूलद्रव्यने तजी शकतो नथी, एकक्षेत्रे एकाधारपणे (व्यापकत्व) केतां अवगाही रह्या छे ते द्रव्यमां ( अभेदता ) अभेदस्वभाव छे.

५ पांचमो वली वस्तुने स्वरूपें केवलज्ञानगम्यपणे वचने अगोचर अनंतधर्मात्मकपणे द्रव्यनुं अनभिलाप्यपणुं ते अवक्तव्यस्वभाव छे, उक्तं च ॥ श्री विशेषावश्यके ॥

अभिलाप्यभावेभ्यः अनभिलाप्या अनंतगुणा इति ॥

६. छठो अनेक पर्यायनो परावर्त्त छे, पण वस्तुना मूलरूपथी पलटे नहीं, ते रूपेज रहे छे, ए नियतपणा माटे वस्तुमां अभव्यस्वभाव छे.

ए सर्व स्वभाव सम्मातितर्क तथा धर्मसंग्रहणीना व्याख्यानथी जोवा, ए सामान्यस्व-

भाव छे ते पदार्थनो द्रव्यास्तिकमूल धर्म छे, एवा परिणमनपणाथकी सर्व पदार्थ स्याद्वादादि कहेवाय छे, जे समये एक ते समये अनेक, जे समयें नित्य ते समयें अनित्य, जे समयें अस्ति, ते समयें नास्ति, जे समयें भिन्न ते समयें अभिन्न, जे समयें वक्तव्य ते समयें अवक्तव्य, जे समयें भव्यत्व, ते समयें अभव्यत्व, इत्यादिक. एम वली एक अनेक नित्यानित्यादिक एक एक स्वभावनी सप्तभंगी थाय, तेवा अनंता स्वभावें अनंती सप्तभंगीयो द्रव्यने विषे थाय, ते स्याद्वादरत्नाकरावतारिकामां कह्युं छे. जे

" नित्यानित्याद्यनंतस्वभावभेदतो प्रतिधर्मं भिन्नाभिन्ना सप्तभंगी एव मनंताः सप्तभंग्यो भवंति इति",

तथा च श्री जिनवल्लभसूरिवाक्यं.

बहु विह नयभंगं, वत्थुणिच्चं अ-
णिच्चं ॥ सदसदनभिलाप्या, लाप्य-
भेगं अणेगं ॥ १ ॥

ए स्वभाव महोपाध्याय श्री यशोविजयजी स्वकृतद्रव्यगुणपर्यायना रासमध्यें समर्थ्या छे, जोइ लेवा ॥ ४ ॥ इति चतुर्थ गाथार्थः ॥

धर्म प्राग्भावता सकल गुण
शुद्धता, भोग्यता कर्तृता रमण प-
रिणामता ॥ शुद्ध स्वप्रदेशता तत्त्व-
चैतन्यता, व्याप्य व्यापक तथा
ग्राह्य ग्राहकगता ॥ ५ ॥

अर्थः—हवे विशेषस्वभाव कहे छे, द्रव्यनो

जे धर्म ज्ञानादिक तेनी (प्रागभावता) प्रगटपणुं ते आविर्भावधर्म बीजी ज्ञानदर्शन, चारित्रादि, सर्व गुणनी शुद्धतायें सर्व स्वगुणनुं भोगीपणुं ते भोग्यता धर्म तथा ( कर्तृता ) कर्त्तापणुं सर्व प्रदेशकार्यानुगत समुदायप्रवृत्ति कार्योत्पादकं कर्तृत्वं ते धर्मास्तिकायादि द्रव्यने प्रदेशे प्रदेशे चलनादिसहायरूप कार्यनो थवो. ते भिन्नभिन्न प्रदेशेंने आश्रयें छे. अने जीवद्रव्यनुं जाणवा देखवारूप कार्य, ते सर्व, असंख्यप्रदेशना समुदायथी छे, ते माटे जीवद्रव्यने विसे कर्त्तापणुं छे, ते कर्त्तापणु विशेष स्वभाव छे. वली रमण जे कोइकने विशे रमवुं तथा परिणामिकता जे परिणामिकपणुं ते, शुद्ध स्वप्रदेशीपणुं ते पण विशेष स्वभाव छे, तथा ( तत्त्व ) वस्तुमां मूलधर्मे

जे चैतन्यता ते पण विशेष स्वभाव छे, व्याप्य व्यापकपणुं तथा आधाराधेयपणुं संरक्षणपणुं स्वस्वामिभावादिक ए सर्व विशेषस्वभाव जाणवा. ए रीतें सामान्य स्वभाव तथा विशेष स्वभाव, ते सर्व श्री धर्मनाथ परमेश्वरना निर्दोष निरावरणीय थया, तेमां पण सामान्यस्वभाव तो निर्दोष सदा हता, परंतु पर संयोगे विशेष स्वभावनो द्विधाभाव थयो हतो, ते हे श्रीधर्मनाथ प्रभुजी ? तुमें स्वरूपालंम्बनी थई करणगुणें जे ज्ञान, दर्शन, चारित्र, अने वीर्य तेने स्वरूपथी एकत्व करी, स्वरूप प्राग्भाव करी, स्वरूपें वस्या छो, माटे निरामय थया छो ॥ ५ ॥ इति पंचम गाथार्थः ॥

संग परिहारथी स्वामि निज
पद लह्युं, शुद्ध आत्मिक आनंदपद

संग्रह्युं ॥ जइवि परभावथी हुं भ-
वोदधि वस्यो, परतणो संग संसा-
रतायें ग्रस्यो ॥ ६ ॥

अर्थः—हवे एवी अनंत गुण निर्मलता प्र-
भुजीने जे रीतें नीपनी, ते रीत कहे छे. हे
देव ! हे परमेश्वर ! तुमे पुद्गलादिंविभावनो
संग सर्वथा ( परिहार ) त्याग करचो, तथी
( निज ) पोतानुं परमपद अव्याबाधानंदरूप
चिद्रूपावस्थानरूप ( लह्युं ) पाम्या. माटे तमे
( शुद्ध ) निर्मल ( आत्मिक जे आत्म द्रव्यनो
आनंद अव्याबाधादिक ते ( संग्रह्युं ) लाधो
अने हे प्रभुजी ! ( जइवि ) यद्यपि ( प-
रभावथी ) परभाव निमित्त पामीने परभावरूप
परिणमीने, वर्त्तमानपरानुयायी ( भवोदधि )

भवसमुद्रने विसे वस्यो छुं, भवनिवाशी थयो छुं, भवनिवाशी थयो छुं, तेथी पुद्गलादिकने संगे संसारता भावथी नवुं नवुं अध्यवसायी-पणुं पामीने द्रव्यथी चारगतिरूप संसारमां भा-वपणे करीने ए म्हारो आत्मा ग्रस्यो छे. एटले ए संसारें मुझने ग्रास करी लीधो छे, माटे हे देव ! तुमे असंगी, हुं संगी, तुमे मुक्त, हुं बद्ध, तुमे अकर्मा, हुं कर्माश्रित, तुमे स्वरूप-भोगी, हुं पुद्गलभोगी, तुमे स्वगुणपरिणामि, हुं पुद्गलाश्रित रागद्वेष परिणामि. तेथी हे प्रभु! म्हारे तो म्हारी भूलथी कोइक नवुं जे सत्तामां कर्त्तापणामां, परिणामिकतामां वस्तुगते न हतो ते नीपनो, ए अशुद्धकर्त्तापणुं में कर्युं, तेथी स्वगुण आवरीने पुद्गलनो ग्राहक थयो, ते पु-द्गलने लेवाथी म्हारो आत्मा पुद्गलभोगी थयो,

एटले त्हारे म्हारे अंतर पडी गयो, तेथी हुं संसारी छुं अने तमे सिद्ध ध्येय छो ॥ इति षष्ठ गाथार्थः ॥ ६ ॥

तहवि सत्तागुणे जीव ए निर्मलो, अन्यसंश्लेष जिम फिटक नवि सामलो ॥ जे परोपाधिथी दुष्टपरिणति ग्रही, भाव तादात्म्यमां माहरूं ते नही ॥ ७ ॥

अर्थः—तो पण सत्तागुणे द्रव्यास्तिक संग्रहनयें ए म्हारो जीव निर्मलो छे, निष्कलंक छे, असंगी छे, अरूपी छे, कोण दृष्टांते ? जेम अन्य श्यामादिक पुट संयोगे फटिक रत्ननो दल स्याम दीठामां आवे छे परंतु फटिक कांइ श्याम थयो नथी, पण अपरीक्षक लोको तेने

श्याम जाणे छे, पण जाते जेवो हतो तेवोज छे, तेम कर्मसंगे आत्मा अशुद्धरूप देखाय छे, परंतु तत्वज्ञानी एने जाते निर्मलज जाणे छे, तेम श्रद्धावंत पण निर्मल जाणे छे अने जे परउपाधिथी दुष्टपरिणति कर्मकर्त्तापणारूप ग्रहीने तदात्मकभावमां तादात्म्यसंबंधे करी छे, ते सर्व उपाधिभाव म्हारो नथी, संयोगें संबध मल्यो छे, परंतु समवाय संबंधे नथी जे विभावते तदुत्पत्तिसंबंध छे परन्तु तादात्म्यसंबंधे नथी, एम भाववुं ॥ इति सप्तम गाथार्थः ॥७॥

तिणे परमात्मप्रभु भक्ति रंगी थइ, शुद्धकारण रसे तत्त्व परिणति मयी ॥ आत्मग्राहक थये तजे परग्रहणता, तत्वभोगी थये टले परभोग्यता ॥ ८ ॥

अर्थः—माटे ए विभावपरिणति ते म्हारो मूळधर्म नथी, तेथी एने निवारीयें, तो जाये तेवारे ए म्हारो आत्मा स्वरूपावस्थित थाय, एम विचारी तेनो उपाय चिंतवे छे. जे ए संसारी आत्मा परानुगत थइ रह्यो छे, तेने जो हमणा स्वरूपथी जोडीए, तो टकी शके नही, अने परविजातिथी जोड्यो थको बंधन वधारे छे, माटे परस्वजाती जीव जे अमोही, वीतरागकेवळज्ञानी तेथी जोडीयें, तो स्वजाती स्वरूप रंगी थाय, अने अरिहंतनुं स्वरूप तथा आपणा आत्मानुं स्वरूप तुल्य छे, तेथी तेना स्वरूपें रसिक थाय, तो पछी कर्म आवर्यो पण, आत्मस्वरूपनी रुचि उपजे, ते रुचिथी पोताना स्वरूपने सर्दहे, जाणे, रमे, उद्यम करे, परभाव तजे ए अनुक्रमथी संपूर्ण स्वरूप

पामे, ते माटे परमात्मा प्रभु श्री धर्मनाथजीनी भक्तिनो रंगी थइने शुद्ध कारणने रसें आत्मा तत्त्वपरिणतिमां मग्न थाय, पोतानो आत्मस्वरूप जोवे, ध्यावे, संभारे तथा तेनेज प्रगट करवानो यत्न करे, एवी रीते ज्यारे आत्मानो ग्राहक थाय, त्यारें अनादिनी परग्राहकता तजे केमके आत्मस्वरूपनो ग्राहक थयो, ते परभावने ग्रहे नहीं. जेटली आत्मपरिणति आत्मधर्म ग्राहक थई ते कर्मादिक टाळे तेने संवरपरिणति कहियें, वळी तत्त्वभोगी थयो, परभोगीपणुं टळे, त्यारें आत्माने भोगवे ॥ ८ ॥

शुद्ध निःप्रयास निजभाव भोगी यदा, आत्मक्षेत्रे नही अन्य रक्षण तदा ॥ एक असहाय नि-

स्संग निर्द्वंद्वता शक्ति उत्सर्गनी होय सहु व्यक्तता ॥ ए ॥

अर्थः—जेवारे शुद्ध पुद्गल संगरहित निःप्रयास ( निजभाव ) आत्मभावनो भोगी थयो, त्यारे आत्मप्रदेशें ( अन्य ) पुद्गलकर्म तथा रागादिकनुं ( रक्षण ) राखवुं नथी, एटले स्वरूप ग्राहक चेतनानुं वीर्य थाये, त्यारे पुद्गल कर्म आत्मप्रदेशें संबंधीपणे रहे नहीं, सर्व पुद्गल खरीने आत्मा निःकर्मा थाय, पछी सर्व संगरहित, असहायी, निर्द्वंद्व उत्सर्गनी शक्ति सहित, (व्यक्तता) प्रगटता निरावरणपणुं पामे ॥ इति नवम गाथार्थः ॥ ९ ॥

तेणे मुझ आतमा तुझथकी नीपजे, माहरी सम्पदा सकल मुझ

संपजे ॥ तणे मन मंदिरे धर्म प्रभु ध्याइयें, परमदेवचंद्र निज सिद्धि सुख पाइये ॥ १० ॥

अर्थः—तेथी हे देव ! हे श्रीवीतराग ! तमारे निमित्ते म्हारो तत्त्व नीपजे, बीजो कोइ उपाय देखातो नथी, म्हारा आत्मानुं सिद्ध-पणुं ते त्हारा स्वरूपने अवलम्बे नीपजे, म्हारो अनंतगुण पर्यायरूप स्वकर्त्तापणुं स्वभोक्तापणुं स्वरूप ऐश्वर्यता सर्वे कर्मावर्त्त छे, ते मुने सं-पजे, एटले हुं म्हारी अरूपी सत्तागत तत्त्व-संपदानो धणी तथा भोगी, अविनाशीपणे थाऊं, ए प्रभुजीनो परम उपकार जाणुं, ते कारणे मनमंदिरने विशे श्री धर्मनाथ प्रभुने ध्याइए पण बीजी उपाधि चिंतविए नहीं. ए प्रभुना गुण तथा उपगारनुं बहुमाने ध्यान करियें, नवा

साधकने एहिज आधार छे, त्यारे परम उ-त्कृष्ट देव जे स्वरूपरमणी मुनि तेमां चंद्रमा समान जे परमात्मपदरूप ( निज ) पोतानुं ( सिद्धि ) निष्पन्नसुख, अव्याबाधादिक तेने ( पाइयें ) पामियें, एहीज मोक्षनो उपाय छे, तेमाटे श्रीअरिहंतनुं सेवन निरनुष्ठानपणे करवुं ॥ १० ॥ इति श्री धर्मजिन स्तवनं संपूर्णम् ॥

## ॥ अथ षोडश श्री शांतिजिन स्तवनं ॥

॥आंखडीयें में आज सेत्रुंजो दीठो रे॥ए देशी॥

जगतदिवाकर जगतकृपानिधि वाहाला मारा समवसरणमां बेठा रे ॥ चउमुख चउविह धर्म प्रकाशे,

ते में नयणें दीठा रे ॥ भविकजन हरखो रे ॥ निरखी शान्ति जिणंद ॥ भ० ॥ उपशम रसनो कंद ॥ नहीं इण सरखो रे ॥ ए आंकणी ॥ १ ॥

अर्थः—हवे सोलमा जिन श्री शांतिनाथ प्रभुनी स्तवना कहे छे. ते प्रभु केवा छे ? जगतने विषे ( दिवाकर ) सूर्यनी पेठे ज्ञाने करी उद्योतना करनार तथा कृपाना निधि एवा प्रभु ते मुझने परमवल्लभ छे. समवसरणमां बिराजमान थका चार मुखे करी चार प्रकारना धर्मने ( प्रकाशे ) उपदेश करता थका, एवा तीर्थंकर देव श्रीशान्तिनाथ प्रभु ते में (नयणें) आगम श्रवणरूप चक्षुए दीठा, माटे हे भविकजीवो ! तुमें ( जिणंद ) सामान्यकेवलीमां

इंद्रसमान एवा श्री शान्तिप्रभने निरखीने हरषवंत थाओ. उपशम जे परमक्षमा तद्रूप जे रस तेनुं ए कंद छे, एना तुल्य बीजा कोइ नथी, ए प्रभु परम शांतरसमयी छे ॥ इति प्रथम गाथार्थः ॥ १ ॥

प्रातिहार्य अतिशय शोभा ॥ वा० ॥ ते तो कहिय न जावे रे ॥
घूकबालकथी रविकरभरनुं, वर्णन केणीपरे थावे रे ॥ भ० ॥ २ ॥

अर्थः—वली प्रभुना जे आठ प्रातिहार्यनी तथा चोत्रीश अतिशयना शोभा ते मुझ सारिखा व्यामोहि जीवथी कही जाय नहीं, दृष्टांत जेम घुकबालकथी ( घुवडना बालकथी ) रविकर ( सूर्यना ) किरणोनो भर ( समूह )

तेनुं वर्णन केवी रीतें थाय ? अर्थात् नहींज थाय. तेम मुज्ञ सरखाथी पण प्रातिहार्यादिकनी शोभा कही जाये नहीं ॥ इति ॥ २ ॥

वाणी गुण पांत्रीश अनोपम ॥ वा० ॥ अविसंवाद सरूपे रे ॥ भवदुःखवारण शिवसुखकारण, सूधो धर्म प्ररूपे रे ॥ भ० ॥३॥

अर्थः—वली प्रभुनी जे वाणी तेने विषे उपमा सहित पांत्रीश गुण रह्या छे, ते वाणी विसंवादपणाथी रहित अविसंवाद स्वरूपमयी छे, ते वाणीयें करीने भव्यजीवोना भव कहेतां संसारना दुख निवारवाने अर्थे अने शिव (मोक्ष) सुखना प्रबलकारणने अर्थे सूधो (यथार्थ) धर्मनी प्ररूपणा श्री प्रभुजी सम-

वसरणमां करे छे ॥ इति तृतीय गाथार्थः ॥३॥

दक्षिण पश्चिम उत्तर दिसि-
मुख ॥ वा० ॥ ठवणा जिन उप-
गारी रे ॥ तसु आलंबन लहिय
अनेक, तिहां थया समकितधारी
रे ॥ न० ॥ ४ ॥

अर्थः—ते समवसरणमां पूर्वदिशि सन्मुखना बारणें, तो श्रीतीर्थंकर पोते मूलगे रूपें बेसे, अने दक्षिण, पश्चिम तथा उत्तरदिशिने बारणे श्री अरिहंतना प्रतिबिंब बेसे, ते प्रतिमारूप ठवणा जिन ( थापना जिन ) छे ते उपगारी छे तेनुं पण आलंबन पामीने अनेक जन त्यां समवसरणने विशे. समकितधारी थया. एटले व्रतना लेनार ते पूर्वदिशिना बारणे बेसे,

अने बीजी परिषद्दामध्यें जिनसेवनथी समकि-
तनो लाभ छे, तेथी ए धन्यता छे ते थापना
निक्षेपानो उपगार छे ॥ इति चतुर्थ गाथार्थः
॥ ४ ॥

षट नय कारज रूपे ठवणा
॥ वा० ॥ सग नयकारण ठाणो रे
॥ निमित्त समान थापना जिनजी,
ए आगमनी वाणी रे ॥ न० ॥ ५ ॥

अर्थः—हवे वली विशेष थापनानुं उपगारी
पणुं तथा सत्यपणुं कहे छे, ते मध्ये श्रीअरि-
हंत तथा सिद्धजी पण आपणा आत्माना नि-
मित्त कारण छे, अने श्री जिनप्रतिमा ते पण
आपणा तत्त्वसाधननुं निमित्त कारण छे, तेमां
थापना जिनने विशे अरिहंत सिद्धपणुं छ नयें

छे, इहां कोइ पुछे जे अरिहंत थया अथवा सिद्ध थया तेनी थापना छे, तो सात नय मूकीने, छ नय केम कहो छो? तेने उत्तर कहे छे जे मूल तो थापना निक्षेपामध्ये थापना ते त्रण नयें छे "नाम स्थापनाद्रव्यनिक्षेपत्रयं नैगमादिनयवर्त्ति इति ॥" अत उच्यते ॥ हवे इहां नामादि एकेक निक्षेपाना चार चार भेद थाय ॥ उक्तं च भाष्ये ॥

नामादि प्रत्येकंचतुरूपं इति ॥१॥

अर्थः—तेथी प्रथम ए स्थापना एवुं नाम स्थापनामां छे, ते स्थापनानो नाम निक्षेपो छे. बीजो ए स्थापना ग्रहण हेतु थाय छे, ते स्थापना निक्षेपो जाणवो. त्रीजो समुदायता अनुपयोगता ते स्थापनानो द्रव्य निक्षेपो जाणवो चोथो आगारोभिप्पाओ ए धर्मने कारणिक

थाये, ते थापनानो भाव निक्षेपो छे. एम थापना चार निक्षेप छे, अथवा.

न विनएहिं विहुणं, सुतोअहोय-जिणमए किंचि ॥ आसज्जउसोयारं नयेनयविसारउ बुआ ॥ १ ॥

अर्थः—तेथी श्री अरिहंत तथा सिद्धजीना स्थापना छे, ते माटे तेना नय कहे छे.

१ जे स्थापना दीठे अरिहंत सिद्धनो संकल्प स्थापनामां थाय छे, अथवा असंगादि तदाकारता रूप अंश ए स्थापनामां छे, ते नैगमनय थापना.

२ अरिहंत तथा सिद्धना सर्वगुणनो संग्रह कल्पनाबुद्धि धरीने थापना करी छे, ते माटे ए संग्रहनय अरिहंत सिद्धरूप स्थापना छे.

३ अरिहंतना आकारने वंदन नमनादि सर्व व्यवहार श्री अरिहतनो थाय छे, तेनुं कारणपणुं ए थापनामां छे ते व्यवहारनय थापना कहींये.

४ ए प्रतिमारूपथापना देखी, सर्व भव्यने बुद्धिनो विकल्प एवा उपजे छे, के ए श्री अरिहंतजी छे ते विकल्पेंज स्थापना करी छे. ते रुजुसूत्र नय स्थापना छे.

५ अरिहंतसिद्ध एवा शब्द "इदंप्रकृतिप्रत्ययासिद्धं" इहां प्रवृत्त छे, ते शब्दनय स्थापना जाणवी.

६ अरिहंतना पर्याय वीतराग सर्वज्ञ तीर्थंकर तारक जिन पारगत इत्यादिक सर्व पर्यायनी प्रवृत्ति पण स्थापना मध्य छे, ते समभिरुढनय स्थापना थइ, परंतु केवलज्ञान केव-

लदर्शनादिगुण, उपदेशकता ते धर्म, स्थापनामां नथी माटे एवंभूतनयनो धर्म, ते ए स्थापनामां नथी तेथी ए ठवणा केतां थापना ते कार्य केतां निष्पन्नता, अरिहंत, सिद्धतारूप ते षट् केतां छ नय छे, एक एवंभूतनये नथी केमके एवंभूतनय ते श्रीअरिहंत सिद्धने विषेज छे. तेमाटे कार्यपणे अरिहंत मध्ये पण छ नय छे. इहां स्थापना निक्षेपमां श्री विशेषावश्यके आदिना त्रण नय कह्या छे, अने इहां छ नय कह्या ते उपचार भावनायें कह्या छे. समभिरूढनु लक्षण, वचनपर्यायवर्त्ति छे, ते लक्षण इहां पोहोंचे छे, तेमाटे ए छ नय कह्या.

हवे ए श्री जिनप्रतिमारुप स्थापना ते समकिति, देसविरति, सर्व विरतिने मोक्षसाधननुं निमित्त कारण छे, ते निमित्त कारणसात नये

छे ते कारणनो धर्म कर्त्ताने वश छे. ते निमित्तकारणपणुं सात नयें छे, ते कहे छे.

१ पहेलो संसारनुयायी जीवने ए जिनप्रतिमा दीठे अरिहंतनुं स्मरण थाय छे, अथवा जिनवंदनने जीवनी सन्मुखता थाय छे, तेवारें सन्मुखतानो जे निमित्त ते नैगमनय निमित्त कारणपणुं छे.

२ जिन प्रतिमा दीठे सर्वगुणनो संग्रह थाय छे, साधकतानी चेतनादि सर्वनो संग्रह ते तत्त्वनी अद्‌भूतताने सन्मुख थाय छे, ते संग्रहनय निमित्त.

३ वंदन नमनादिक साधकव्यवहारनुं निमित्त ते व्यवहारनय निमित.

४ तत्त्वईहारूप उपयोग समारवानो निमित्त ते ऋजुसुत्रनय निमित्त.

५ संपूर्ण अरिहंतपणाना उपयोग जे ऊपादन ए निमित्तें तत्वसाधनने परिणाम्यो, ते शब्दनय, स्थापनानो निमित्त छे, समकिती प्रमुखने एवो छे.

६ अनेक रीते चेतनाना वीर्यनी परिणति, सर्व साधनताने सन्मुख थइ ते समभिरुढनय स्थापनानुं निमित्त कारणपणुं जाणवुं.

७ ए स्थापनानुं कारण पामी, तत्त्वरुचि तत्त्वरमणी थइने जे शुद्ध शुक्लध्यानमां परिणमे ते संपूर्ण निमित्त कारणता पामीने, उपादाननी पूण कारणता नीपनी, ते एवंभूत नयनिमत्त कारणपणुं छे, एटले निमित्त कारणनो ए धर्म छे, जे उपादानने पमाडे, अने उपादानकारण ते कार्यपणे नीपजे, ए रीत छे.

तेथी जिनप्रतिमा ते मोक्षनुं निमित्त का-

रण छे, ते निमित्त सात नये छे. तेमां सर्व भव्यादिकने शब्दनय सीम, कारण थयुं, अने पुण्य रुचिने व्यवहारनय सीम, निमित्त कारज-थयुं, अने पुण्य रुचिने व्यवहारनय सीम, नि-मित्त कारणपणुं थाय, तथा मार्गानुसारी सम-कितिनी आठ दृष्टी जे योगदृष्टि समुच्चयमां कही छे, तेमांनी आदिना चार दृष्टिवा ग ने ऋजु-सूत्र नय सीम, निमित्त कारणपणुं थाय छे अने पुण्याढ्या दिकने ए जिनप्रतिमा संपूर्ण एवंभूतनयें कारणरूप थइ देखाय छे. तेवारें इहां भावनायें ए थयुं जे स्थापनानेविषे तो संपुर्ण सात नयरूप निमित्त कारणता छे. पछी कार्यनो कर्त्ता जिहां सुधी एने नीपजावे, तेटलो नीपजे, तेथी ए स्थापना ते सगनय कर्ता (साते नये) करी कारणठाणी ( निमित्तकारणपणानुं

स्थानक ) छे, ते स्थापना श्री आरिहंतपदना मूल तो द्रव्य अने भाव ए बे निक्षेपावंत छे, परंतु निमित्तकारणना चार निक्षेपा सात नय संयुक्त छे.

॥ उक्तं च ॥

निमित्तस्यापि सप्तप्रकारत्वनय प्रकारेण निमित्तस्यद्वैविधं द्रव्यत्वा- वात् ॥ तथोपादानस्यापि सप्तप्रका- रत्वं नयोपदेशात्. "नो अन्निहा- णमणयं" इति वचनात् ॥

नत्थिएहिं विहुणं,
सुत्तं अत्थोय जिणमए किंचि ॥
आसज्ज उ सोयारं,
नये नयवि सारउच्छूआ ॥१॥इति॥

माटे निमित्तपणे स्थापना केतां जिनप्रतिमा अने जिनजी ( श्री अरिहंत ) ए बेहु समान (तुल्य) छे. एटले विचरता अरिहंत तथा तेमनी स्थापना जे मूर्ति, ते बेहु समान (बरोबर) छे, तेथी विचरता अरिहंत तथा तेनी स्थापना ए बे साधक जीवन निमित्त कारण छे, पण ऊपादान नथी. सर्वांशं निमित्तता छे, ए आगम (सिद्धांतनी) वाणी छे. जे अरिहंतने वांद्यानुं तथा अरिहंतनी प्रतिमाने वांदवानुं फल सिद्धांतमां सरखुं कह्युं छे, माटे समान छे ॥ इति पंचम गाथार्थः ॥ ५ ॥

साधक तीन निक्षेपा मुख्य ॥वा०॥
जे विण भाव न लहिये रे ॥
उपगारी द्राव्ये भाख्या,
भाववंदकनो ग्रहिये रे॥ ज० ॥६॥

अर्थः—अने १ नाम, २ स्थापना ३ द्रव्य. ए त्रण निक्षेपा ते भावना कारण छे.

॥ उक्तं च भाष्ये ॥

अहवा नामठवणा,
दव्वाइं भावमंगलं णाए ॥
पाएण भावमंगलं,
परिणामनिमित्त भावाउ ॥ १ ॥

माटे ए त्रण निक्षेपा साधक (कारण) छे, ए त्रण निक्षेपा विना भावनिक्षेपो थायज नहीं, अने नाम तथा स्थापना ए बे निक्षेपा भाष्यने विषे उपगारी कह्या छे, ते कहे छे, जे द्रव्यनिक्षेपो छे, ते पिंडरूप छे, माटे ग्रहवाय नहीं, अने भावनिक्षेपो तो अरूपी छे, ते आद्यना नाम तथा स्थापना ए बे निक्षेपा विना ग्रहवाये,

सेवाये नहीं, ते माटे आदिना बे निक्षेप। ते उपकारी छे.

॥ उक्तं च ॥

वत्थुसरूवं नामं,
तप्पच्चय हेउ उ सधम्मव्व ॥
वत्थु नाणा विहाणा,
होज्जा भावोविवज्जासो ॥ १ ॥
वत्थुस्स लक्खणं,
ववहारो विरोहसद्धाउ ॥
अभिहाणाहिणाउ,
बुद्धिसद्दो अकिरियाय ॥ २ ॥

इति वाक्यात् नाम्नःप्रधानत्वं.

॥ गाथा ॥

आगारोन्निप्याउ,
बुद्धीकिरियाफलं च पाएणं ॥
जह दीसइ ठवणाए,
न तहा नामे न दविंदो ॥ १ ॥
आगारोच्चियमई,
सद्दवच्चुकिरियाभिहाणाइ ॥
आगारमयं सव्वं,
जमणागारा तया नत्थि ॥ २ ॥

इत्यादि ते माटे नाम तथा थापना ए बे निक्षेपा उपकारी छे,अने मोक्ष साधवामां संवर निर्ज्जरा करवाने तो वंदकनो भाव छे ते ग्रहवो, केम जे श्रीअरिहंतनो भावनिक्षेपो तो श्री

अरिहंतने विषेज छे, ते जो परजीवने तारे, तो तो कोइ जीवने संसारमां रहेवुं पडे नहीं, ते तो थातो नथी, परंतु आपणो भाव अरिहंतालंबनी थाए, तो मोक्षमार्ग लहियें, ते माटे प्रभुनी थापना तथा नामना निमित्तथी पण साधकनो भाव समरे, तेथी नाम तथा थापना ए बेज उपगारी छे, वली समवसरणमां बिराजमान श्री अरिहंत तेनुं पण नाम तथा आकार, सर्व जीवने उपगारी थाय छे, तेहीज छद्मस्थने ग्राह्य छे, अवलंबीयें ते माटे नाम तथा थापना प्रमाण छे, निमित्तालंबी रूपी ग्राहकने श्री जिन थापना ते पुष्ट निमित्त छे ॥ ६ ॥ इति षष्ठ गाथार्थ ॥

ठवणा समोसरणे जिनसेंति ॥वा०॥
जो अभेदता वाधी रे ॥

ए आत्मना स्वस्वभावगुण,
व्यक्तयोग्यता साधी रे ॥ भ० ॥ ७॥

अर्थः—ते माटे ठवणा समोसरणें एटले मूलगो समोसरण तो श्री जिनराज विचरता हता ते कालें तो ए मारो जीव, कांइ गत्यांतरमां हता, ते हमणां आ भवमां समोसरणनी थापना करी, तिहां जिनमुद्रा देखीने, जिनराजना गुणावलंबी चेतना करी, पछी ते सेवना करतां प्रभुजी सिद्धावस्थारूप परम अनंतगुणीना स्वरूपथी जे मारी चेतनानी अभेदता एकत्वपरिणामता ते बाधि केतां वृद्धि पामी ते वारे ए आत्माने एवो अनुमान सध्यो, जे तत्त्वीदेवथी अभेदपणुं बहुमानपणे भल्युं तो एम जाणुं छुं जे ए मारो आत्म स्वस्वभाव अनंत ज्ञानादि पूर्णानंद गुणनी व्यक्त ( प्रगट-

तानुं ) थवुं तेहनी योग्यता साधि,एम अनुमाने निरधारी, एटले ए जीव सदा सर्वदा विषय-रंगी हतो, ते तरत्री प्रभु निर्विषयीने रंगें रम्यो, तो कोइक अवसरें स्वरूपरमणी थाशे एवुं अनुमान थयुं. जो कारणथी अभेद थयो, तो कारज नीपजावशे ए पलटवापणुं अनंते काले न थयुं हतुं ते थयुं, तो ए द्रव्यमां पलटवानी योग्यता छे, अनादिनी चालथी पलटवुं ए भव्यतापणाना लिंगनुं अनुमान तो थाय छे, एटले भव्यपणुं जणाय छे, ए भक्तिनी बहु लतायें हरषनुं वचन छे ॥ ७ ॥

नलुं थयुं में प्रन्नु गुण गाया॥वा०॥
रसनानो फल लीधोरे ॥
देवचंद्र कहे माहारा मननो,
सकल मनोरथ सीधोरे ॥न०॥ ८॥

अर्थः—माटे हे प्रभु ! आज मुजने भलुं ( अत्यंत रूडुं ) थयुं जे में प्रभु श्री सोळमा शांतिनाथ परमात्मा परम शांतरसमयी तेना गुणनी स्तवना करी, तेथी में मारी रसना ( रसेंद्रि ) जे जिव्हा तेनुं रुडूं फल लीधुं एटले रसनानुं सार्थकपणुं थयुं. एवा हर्षसहित देवचंद्र नामा मुनि कहे छे, जे मारा मनना जे मनोरथ हता, ते सकल (संपूर्ण) पणे सीधो (सिद्ध) थयो ॥ ८ ॥ इति षोडश श्री शांतिजिन स्तवनं संपूर्ण ॥

---

## ॥ अथ सप्तदश श्री कुंथुजिन स्तवनं ॥

॥ चरम जिणेसरू ॥ ए देशी ॥

समवसरण बेसी करो रे,
बारह परषद मांहे॥

वस्तुस्वरूप प्रकाशता रे,
करुणाकर जगनाहो रे;
कुंथु जिनेसरू ॥ १ ॥
निर्मल तुझ मुख वाणी रे,
जे श्रवणे सुणे,
तेहिज गुणमणीखाणी रे ॥कुं०॥१॥
॥ ए आंकणी ॥

अर्थः—हवे सत्तरमा श्रीकुंथुनाथजीनी स्तवना करे छे, जे श्रीकुंथुनाथजी समवसरणमां त्रिगडे बेसीने बारह पर्षदा मध्ये वस्तु जे छे द्रव्य तेनां मूलस्वरूपने प्रकाशता, एटले जीवस्वरूप जीवपणे, अजीवस्वरूपने अजीवपणे, उपादान कारणने उपादानपणे, निमित्त कारणने निमित्तपणे, शुद्धकार्यने शुद्धकार्यपणे, उपदेश देता तथा द्रव्यथी शुभपरिणति ते का-

रणरूप तथा भावथी शुभपारिणति ते कार्यरूप अने भाव साधन परिणति ते कारणरूप तथा भावसिद्ध परिणति ते कार्यरूप उपादेय तेहिज करवो, तेहनी रुचिए रहेवुं एज साधन छे, एवो उपदेश करतो तथा करुणाकर ( कृपाना करणहार ) जगत्रयना नाथ, एवा श्रीकुंथुनाथ स्वामी, तेना मुखनी निर्मळ वाणी, उपदेश ध्वनि, ते जे प्राणी श्रवणे सुणे, तेहिज प्राणी गुणरूपमणि रत्ननी खाण छे, एवा कुंथुनाथ स्वामीने नमो ॥ इति ॥ २ ॥

गुणपर्याय अनंतता रे,
वलिय स्वभाव अगाह ॥
नय गम भंग निक्षेपना रे,
हेयादेय प्रवाहो रे ॥ कुं० ॥३॥

अर्थः—गुण ते जे वस्तुना सहभावि धर्म

" द्रव्याश्रया निर्गुणा गुणा इति तत्त्वार्थे उक्तत्वात् "

ते तथा क्रमभावि उभयाश्रितत्व ते पर्याय, अने द्रव्य, गुण, पर्याय, ए सर्वमां वर्त्ते, तेने स्वभाव कहीयें, एटले गुणनी अनंतता, तथा पर्यायनी अनंतता, अने स्वभावनी अनंतता, ए सर्व अगाह केतां ( अगाध ) छे, जे अवगाहवाने दोहेली छे. वळि नय केतां अनेक धर्मात्मक वस्तुने विषे एकधर्मावलंबन ते नय कहियें.

॥ उक्तं च तत्त्वार्थे ॥

अनेकधर्मकदंबकोपेतस्य वस्तुनः एकेन धर्मिण उन्नयनं अवधारणात्मकं नित्यएव अनित्यएव

एवंविधनयव्यपदेशमास्कंदति ॥

एवा मूल नय सात, अने उत्तर नय सात सय पछी विस्तार बहुल ते, तथागमागम्यं ते, इति

गमाः अंशभेदेन अन्यधर्मअभेदेन वस्तुनिरूपणात्मकंवाक्यं गमात्मकं उच्यते तथा भंगाः नंस्याद्वादोपदेशा अस्तित्वादयः भंगः स्याद्वाद सापेक्षः स्यात्

ए आस्तिप्रमुख तथा निक्षेपानामादिक तेनी अनेक प्रवाह अनेक भातिना वस्तुधर्मे उपचारधर्मे कारणधर्मे स्वरूपे उपदेशे ते वलि हेय धर्मना नय निक्षेपा भांगा ते हेयरूप कहेता अने उपादेय धर्मना नय निक्षेपा, ते उपादेयरूप प्ररूपता, एवी

श्रीकुंथुनाथजीनी देशना छे. वळी एक द्रव्य मां गुण अनंता, पर्याय अनंता, स्वभाव अनंता, उपदेशे इहां भावना जे गुणपर्यायने आवर्ण छे, स्वभावने आवर्ण नथी, अस्तित्व नित्यत्वादिक जे छे ते मध्ये विशेषस्वभाव बिगडे पण सामान्यस्वभाव बिगडे नहीं, तथा सर्वधर्म नय तथा भंग अने निक्षेपा सहित उपदेशे छे, एवी श्रीकुंथु जिननी देशना छे ॥ ३ ॥ इति तृतीय गाथार्थः ॥

कुंथुनाथ प्रभु देशना रे,
साधन साधक सिद्ध ॥
गौण मुख्यता वचनमां रे,
ग्यान ते सकल समृद्धो रे ॥ कुं० ४

अर्थः—वळी श्री कुंथुनाथप्रभुनी देशना

केवी छे. जे मध्ये साधन केतां रत्नत्रयी पूर्ण अभेदतारूप निपजाववाना उपाय ते जिनमुद्रासेवन मुनिवंदन अनुकंपादिकथी लही शुक्लध्यान पर्यंत कह्या छे, तथा मार्गानुसारीथी लही क्षिणमोही पर्यंत अपवादें अने उत्सर्गे अयोगी लगें साधक जीव जाणवा तेनुं तारतम्य योग कहे छे. पहेलो मार्गानुसारी ते समकेतने साधे, अने समकेति ते विरतिने साधे, विरति ते शुक्लध्यानने साधे तथा शुक्लध्यानी क्षायकगुणने साधे, क्षायकगुणी सिद्धने साधे, ए साधकनो क्रम छे ते सर्व प्रभु देशनामां कहे, तथा सिद्धपणुं संपूर्ण निष्पन्न निरावरणतापणुं कहे. वली कुंथुनाथजीनी देशनामां वचन जे बोलाय ते, अनंता गौण धर्म राखीने जे वचनमां ग्राह्य ते धर्मने मुख्य करी कहे एटले एक वस्तुमां अनंता धर्म एकसमय

मां परिणमे छे, ते सर्व एकसमयमां जाणे, परंतु वचने करी जे धर्म मुख्य करी कहेवाय, तेने मुख्य करी कहे, बीजा सर्वज्ञानमां गौणपणे जाणे, एम वचनमां गौणपणुं तथा मुख्यपणुं छे, पण श्रीकुंथुनाथ स्वामीनुं केवलज्ञान ते सकल ज्ञेयने जाणवे करी समृद्धिवान छे, एटले ज्ञानमां एक हमणां जाणे बीजा पछी जाणशे एम नथी, सर्व भावने ते समये ज जाणे छे, तेथी ज्ञानमां गौणता मुख्यता नथी, अने वचननुं धर्म क्रम प्रवर्त्तन छे, ते एक कह्या पछी बीजो कहेवाय, माटे वचनमां गौणता अने मुख्यता छे ॥ ४ ॥ इति चतुर्थ गाथार्थः ॥

**वस्तु अनंत स्वभाव छे रे,**

**अनंत कथक तसु नाम ॥**

**ग्राहक अवसर बोधथी रे,**
**केहेवे अर्पित कामो रे ॥ कुं० ५**

अर्थः—वस्तु जे जीवादिद्रव्य ते अनंत स्वभावमयी छे, सर्व वस्तु अनंतता युक्त छे, तथा वस्तुनो जीव अथवा पुद्गल एवुं जे नाम छे, ते पण अनंतताने कहेतो छे, एटले जीव एवो शब्द उच्चार करतां जीवना अनंता धर्म छे, ते सर्व बोलाणा एम सर्व स्थानके समजवो माटे जे वस्तुनुं नाम ते ते वस्तुना सर्व धर्मनो ग्राहक छे, तेथीज नामनिक्षेपामां संग्रह तथा व्यवहार ए बेहु नय मुख्य छे, अने नैगम कारण छे, ए रीत छे, परंतु ग्राहक जे श्रोता तेनो जेवो अवसर होय, तथा श्रोतानो जेवो बोध केतो जाण पणुं होये तेवो वचनमां अर्पित करीने उपदेशे, एटले ज्ञान तो सर्वने

एक समयमां जाणे छे, परंतु उपदेशकाळें केवळी भगवान् जेवा श्रोता होय तेटलो कहे, तेथी केहेवामां अर्पित नय आगळ करवानो काम पडे छे, ते आर्पित तथा अनार्पितनुं स्वरूप तत्त्वार्थमां कह्युं छे.

"अनेक धर्माच धर्मीतत्र प्रयोजनवशात्कदाचित् कश्चिद्धर्मोवचनेनार्पिते विवक्षिते तत्अर्पिते संन्नपि वचनविवक्षते प्रयोजनाभावात् तत् अनर्पितं इति"

जे धर्मीपदार्थ, तेना अनेक धर्म छे, तेने विषे जे अवसरे जे धर्म कहेवानुं प्रयोजन उपजे, ते अवसरे ते धर्मने वचनने विषे अर्पित करीए, विवक्षा करीने ग्राहियें, ते अर्पित जा-

णवो. अने जे धर्म सत् केतां छतो छे तो पण प्रयोजन विना तेने गवेषे नहीं, श्रद्धामां अपेक्षामां छे, ते अनर्पित कहिये, छद्मस्थनुं ज्ञान, तथा बोलवो, ते अर्पित अनर्पित बे मल्याज शुद्ध थाये, अने केवलीनुं ज्ञान तो सर्व एक समयें छे, परंतु वचन ते अर्पित मल्या शुद्ध छे ॥ ५ ॥ इति पंचम गाथार्थः ॥

**शेष अनर्पित धर्मने रे,**
**सापेक्ष श्रद्धा बोध ॥**
**उभय रहित भासन होवे रे,**
**प्रगटे केवल बोधो रे ॥ कुं० ॥६॥**

अर्थः—जे वचन बोलवाथी शेष रह्या, ते अनर्पित धर्म रह्या, तेने सापेक्ष श्रद्धा, सम्यक्सद्दहणा राखवी, बोधज्ञान पण राखवुं ए छ-

अथ समकेती, देशविरति, सर्वविरति, क्षीणमोहिपर्यंत एम जाणवुं अने उभय केतां ए अर्पित अनर्पित बेहुथी रहित जे भासन होवे ते बोध केतां केवलीनुं ज्ञान ते सर्वनो ज्ञायक समकाले छे, तेथी तेमां अर्पित अनर्पितपणुं नथी, वचनमां अर्पितानर्पित छे, परंतु जाणवामां नथी ॥ ६ ॥ इति ॥

छति परिणति गुणवर्त्तना रे,
भासन भोग आणंद ॥
समकाले प्रभु ताहरे रे,
रम्यरमण गुणवृंदो रे ॥ कुं० ॥७॥

अर्थः—वली हे प्रभुजी! तमारामां ज्ञाननी, दर्शननी, चारित्रनी, वीर्यनी, सुखनी, अरूपतानी, इत्यादिक अनंतता तमारा गुणरूप धर्म,

तेनी छती छे, तेमज अनंत पर्यायनी पण छती छे, ते स्वद्रव्यादिकपणे सदा सर्वदा छती छे, तेम स्वभावि गुणपर्यायनी परिणति परिणामिकता द्रव्यने विषे परिणमवुं, ते उत्पाद, व्यय, ध्रुवपणे तथा षट्गुण हाणी वृद्धिपणे परिणमे छे, तथा तेहिज ज्ञानादि गुणपर्यायनी वर्त्तना, ते जे स्वस्वकार्यनो करवापणुं ते ज्ञाने जाणे, दर्शने देखे, चारित्रें रमे, कर्त्तापणाथी करे, भोक्तापणाथी भोगवे, एम सर्वगुण पोतपोतानी वर्त्तनाएं वर्त्तता पोतपोताना कार्यने करे छे, ते वर्त्तना जाणवी. ए सर्व हे प्रभुजी! तमारामां छे, अने ते सर्व गुणपर्यायनुं भासन केतां जाणवुं ते तमारामां छे. ते सर्व गुणने भोगवो छो, ते अनंता गुणना भोगनो आनंद हे प्रभुजी ! तमारामां छे एटले अनंत गुण

पर्यायनी छति परिणति अने वर्त्तना तथा भासन भोग अने आनंद ते समकालें केतां एक समयमां ए सर्वपरिणमन छे, माटे एवा अनंता परमानंदना भोगी छो, माहा सुखी छो. वळी हे प्रभु ! हे सर्वज्ञ ! हे सर्वानंदमयी ! हे नाथ ! हे सुधोपगारी ! तुमे केहवा छो ? जे रम्य केतां रमवुं ते गुणना तुमे वृंद समूह छो ॥ ७ ॥ इति सप्तम गाथार्थः

निजभावें सी अस्तिता रे,
पर नास्तित्व स्वभाव ॥
अस्तिपणे ते नास्तिता रे,
सीय ते उभय स्वभावो रे ॥कुं०॥८

अर्थः—हवे सप्तभंगीरूपें प्रभुता कहे छे. तिहां कोइक तो सप्तभंगी एकला पर्यायास्तिक

पर्यायास्तिक नय द्रव्यमात्र वस्तु छे, तिहां स्यात् अस्ति, स्यात्नास्ति, स्यात् अवक्तव्यं, ए त्रण भांगा सकलादेशी छे, ते द्रव्यास्तिकनयी छे,

**एवं एते त्रयः सकलादेशा न्नाष्यानुसारी एवं संग्रहव्यवहारा-नुसारीणः आत्मद्रव्ये विकला देशा चत्वारि पर्यायनयाश्रयाइतितत्त्वार्थे.**

शेष चार ते विकलादेशी छे, तेहनो पर-मार्थ एम छे जे स्यात्अस्ति ए भांगामां अ-स्तिपणुं बधुं अर्पित छे, बीजो नास्तिधर्म, अवक्तव्यधर्म, ते स्यात्पणामां आव्यो, एटले स्यात् अस्ति कह्याथी बधुं ग्रहवाय छे, तेमज स्यात् नास्ति तथा स्यात् अवक्तव्यं ए भांगामां पण बधुं द्रव्य ग्रहवाय छे, अने १ स्यात् अस्ति

स्यात् नास्ति,२स्यात् अस्ति अवक्तव्यं,३ स्यात् नास्ति अवक्तव्यं, ४ स्यात् अस्ति नास्ति युगपत् अवक्तव्यं, ए चार भांगा ते वस्तुना अंशने एटले पर्यायने ग्रहण करे छे तेहनो भावार्थ ए छे जे प्रथम स्यात् अस्ति स्यात् नास्ति ए चोथो भंग छे, तेमां अवक्तव्यं ए धर्म नाव्यो, तो कोइ कहेशे जे स्यात्पदे अवक्तव्यं धर्म लहीशुं तेने उत्तर जे स्यात्पद ते अस्ति तथा नास्ति ए धर्मनी अनेकांतताना ग्राहक छे, परंतु अवक्तव्यनो ग्राहक नथी अने स्यात् अस्ति अवक्तव्यं, ए पांचमो भंगो छे, तेहमां वस्तुनो अस्तिधर्म एकसमयी छे, ते वचनमां कह्या थका उपयोगमां लावतां असंख्याता समय लागे छे, ते माटे ए अस्तिपणुं अनेकांतपणे छे, परंतु वचने गोचर नथी. एमज स्यात् ना-

स्ति अवक्तव्यं, ए छट्ठो भंगो पण भाववो, तथा स्यात् अस्ति नास्ति अवक्तव्यं, ए छट्ठो भंगो पण भाववो, तथा स्यात् अस्ति नास्ति युगपत् अवक्तव्यं, ए भंगामां स्यात् केहतां अनेकांते अस्ति केहतां असंख्याता समय लागे, नास्ति केहतां पण असंख्याता समय लागे, ते माटे अवक्तव्यं छे, पण जे रीतें वस्तुमां परिणमे छे, ते रीते केहवाता नथी, तेथी ए चार भंगामां सर्व धर्मनुं ग्रहण न थयुं ते माटे ए चार भंगा विकलादेशी छे, पण सकलादेशी नथी. हवे ए साते भंगानुं स्वरूप कहे छे.

१ ए आत्मा वर्त्तमानसमयें ज्ञान दर्शनादि स्वपर्यायनी परिणतिपणे अस्ति छे, एटले अतीतपर्याय तो विनष्ट छे, अनागतपर्याय अनुत्पन्न छे, माटे वर्त्तमानपर्याय ग्रहण कर्यो.

इहां स्यात् ते नास्ति अवक्तव्यं धर्मनो अनर्पितताना द्योतक छे, ए रीते स्यात् अस्ति ए पहेलो भंगो थयो.

२ तथा स्यात् ते कथंचित्पणे गतिस्थितिअवगाहोपकारी वर्णादि अचेतनादि परद्रव्य धर्म तथा पोताना अनागत पर्याय ते, सांप्रतिक वर्त्तनापणे नथी, ए नास्ति भंगो द्रव्यने द्रव्यपणे राखवारूप छे, नहीं तो कोइ कालें जीव ते अजीवताने पामे, ए स्यात्नास्ति बीजो भंगोथयो.

३ तथा अस्तिधर्म पण वचनें अगोचर छे, अने नास्तिधर्म पण वचने अगोचर छे, ते वचनगोचर धर्मथी वचन अगोचरधर्म अनंतगुणा छे, तेमाटे स्यात्कथंचित्पणे द्रव्यमां अवक्तव्यपणुं छे एटले उभय नय युगपत् अर्पण करतां सर्व पदार्थ अवक्तव्यपणे छे माटे ए त्रण भंगा सकलादेशी ते द्रव्यास्तिक नय-

पणे जाणवा. ए त्रणे भंगामां संग्रह तथा व्यवहारनयनी प्रवृत्ति छे, ए स्यात् अवक्तव्यनामा त्रीजो भंगो थयो.

४ तथा चोथो भंग स्यात् अस्तिनास्ति छे, ते समुच्चायाश्रयी स्वद्रव्यार्थ पर्यायार्थना अस्तितापणे तथा तेहिज भिन्नोपयोगपणे ते अतीत अनागत परिणामिकपणे नास्तिता छे, ए बे धर्म पोतानाज गवेष्या छे.

५ तथा जे विवक्षित वचनगोचर द्रव्यार्थ मुख्य आत्मधर्मने अपेक्षायें अस्ति छे, तेहिज आत्मद्रव्यनो सामान्य विशेषद्वयनी भिन्नप्रवृत्ति धर्म समकाले अंगीकार करतां स्यात्अस्ति अवक्तव्यं ए पांचमो भंगो थयो.

६ छट्ठो स्यात्नास्तिअव्यक्तव्यं ए एमज पांचमानी परें भाववो, ए पर्यायनी सूक्ष्मता अनंतताग्रहीने कर्यो ए छट्ठो भंग थयो.

७ सातमो स्यात्‌अस्ति स्यात्‌नास्ति युगपत् अवक्तव्यं नामे भंगो छे, ते कोइक द्रव्यार्थ विशेष आश्री अस्तिपर्याय विशेषआश्रीजे नास्ति तेहीजस्व देशें भिन्नपणे अवक्तव्यं ए सर्वपर्याय ते नयनी प्रवृत्ति छे ए सातमो भंग.

ए सप्तभंगी ते नित्य अनित्य भेद अभेदादिक धर्मनी तथा ज्ञानदर्शनादिक गुणनी सप्तभंगी थाय ते भावे छे. ज्ञान जे छे ते ज्ञायक परिच्छेदकादि स्वपर्यायें अस्ति छे, तथा दर्शनचारित्रादि ते स्वपर्यायें अस्ति छे, अने जडतादि परपर्यायें नास्ति छे, एम अनंती सप्तभंगी संभवे, ते बुद्धिवंते भाववा, तथा तत्त्वार्थ वृत्तिने विषे वली सम्मतिवृत्तिने विषे विस्तारथी कही छे, अने स्याद्वादरत्नाकरे

एहनुं स्वरूप तथा उपपात्ति, प्रवृत्ति, परिणाति नय सर्व वखाण्या छे. तिहांथी जोइ लेजो. हवे गाथानो अर्थ लखे छे.

निज केतां पोताने भावें, स्वद्रव्य,स्वक्षेत्र, स्वकाल, स्वभावपणे सीय केतां स्यात् कथं चित्पणे अस्ति छे, अने तेहीज द्रव्य,परद्रव्य, परक्षेत्र, परकाल, परभावपणे नास्ति छे; ते नास्तिपणुं द्रव्यमां आस्ति केतां छता पणे रह्यो छे, वली सीय केतां स्यात् कथंचित् उभय केतां अवक्तव्य स्वभाव एटले आदि भंगो तथा अंतनो भंगो संभारतां साते भंगा केहवाणा, एहवी स्याद्वादपरिणाति ते हे परमेश्वर तुमे प्रत्यक्ष ज्ञानें सर्वद्रव्यनी जाणीने उपदेश कर्यो, एहवी ताहरी वाणी छे,ए रीतें शुद्ध अनंतता, एकता, अनेकता, सत्त्वता, साधकतायुक्त श्री अरिहंतनो उपदेश छे. ॥ ८ ॥

अस्तिस्वन्नाव जे आपणो रे,
रुचि वैराग्यसमेत ॥
प्रभु सन्मुख वंदन करी रे,
मागीस आत्म हेतो रे ॥कुं० ॥ए॥

अर्थः—हवे पोतानो मनोरथ कहे छे, एहवो जे अस्तिस्वभाव अनंत ज्ञान, दर्शन, चारित्र, अव्याबाध, पुर्णानंदतारूप, जे माहरो सत्तागत स्याद्वाद उपयोगें ग्रह्यो तेहनी रुचि पीपासा करीने, वैराग जे संसारथी उदासीपणुं ए संसारीभाव विभावोपाधि माहरे अघटती छे, तेहने केवारें सर्वथी तजुं, एम विषभक्षण तथा तप्तलोह पदधृाति समान जाणीनें उदासीन थयो, मोक्षाभिलाषी केवलज्ञानानंदने

अभिलाषें हे प्रभुजी ताहरे सन्मुख उभो र-
हीने वंदना करीने मागुं छुं, जे हे तारक ! मु-
जने तार तार, भवभ्रमणथी उगार, ए संसा-
रज नित दुःख मुझथी हवे खमातो नथी, जे
माहरो अनंतो स्वाधीन आनंद ते पराधीन
थयो, अने हुं पुद्गलग्राही थयो तेथी तत्त्व-
भोगी छुं, पण तत्त्वने जाणी शकतो नथी,
उदैकभावरूप अशुद्धपर्यायनी श्रेणिमां पडी
रह्यो छुं, अने हवे हे नाथ ताहरे शरणे आव्यो
छुं, माटे मुजने माहरो अस्तिस्वभाव प्रगटे
एहवो आत्मानो हित समकेत दर्शनयुक्त, चा-
रित्रनो प्रसाद करो, एहवो हुं जेवारें मागीश
तेहीज दिन धन्य मानीश एहवो मनोरथ कर-
वो ॥ ९ ॥ इति नवम गाथार्थः ॥

**अस्ति स्वभावरुचि थयी रे,**

ध्यातो अस्तिस्वभाव ॥
देवचंद पद ते लहे रे,
परमानंद जमावो रे ॥ कुं० ॥१०॥

अर्थः—माटे अहो भव्यजीवो ! तुमें जो सर्व जीव सुखना अर्थी छो तो जे सत्तागत अस्तिधर्म, तेहना रुचि अभिलाषी थयीने जे अस्तिस्वभावना अनंतता तेहतेज ध्यातां ध्यान करतां थकां सर्व देवमां चंद्रमासमान जे सिद्धपरमात्मपद ते लहे केतां पामे. अशरीरिता, निर्मलानंदता, निःसंगतारूप परमानंद स्वाधीन आत्यंतिक अव्याबाध सुख तेहनोज जेहमां जमाव छे, सघन केतां एकीपणुं छे, एहवुं पद श्रीप्रभुनी सेवाथी पामे. तेमाटे तत्त्वस्वरूपी, अरूपी, ज्ञानस्वरूपी, एहवा श्रीकुंथु

नाथना चरणनुं सेवन करो. हे भव्यजीवो ! एहीज परम सुखनो हेतु छे ॥ १० ॥ इति कुंथुनाथ० ॥

---

## ॥ अथ अष्टादश श्री अरनाथजिन स्तवनं ॥

॥ रामचंदके बाग चांपो मोरी रह्यो री ॥ ए देशी ॥

प्रणमो श्रीअरनाथ,
शिवपुर साथ खरोरी ॥
त्रिभुवन जन आधार,
भवनिस्तार करोरी ॥ १ ॥

अर्थः—हवे अढारमा श्री अरनाथजिननी

स्तवना कारणतापणे करे छे, प्रणमो केतां वा-
रंवार नमस्कार करो, श्री अरनाथस्वामीने,
एहीज अमोही परमेश्वर वांदवा योग्य छे,
शिव केतां निरुपद्रव जे सिद्धता, तेहीज उपमा
ये पुर केतां नगर तिहां पोहोंचाडवाने खरो
साथ छे, तेथी सार्थवाहनी उपमा श्री अरि-
हंतनेज छे, जे निःस्वार्थे भवअटवीमांथी पार
करीने मोक्ष नगरने विषे परमानंदपदें पहों-
चाडे एहवा कारणपणें श्री अरिहंतजी छे.
वली त्रण भुवनना जनने आधार छे, मिथ्या-
त्व असंयम व्यथायें पीडितने आधार उठंभा-
रूप छे. वली चारगतिरूप भव केतां संसार
तेहमांथी द्रव्यें तथा भावें निस्तारना करणहार
छे ॥ १ ॥ इति प्रथम गाथार्थः ॥

कर्ता कारण योग,

कारज सिद्धि लहेरो ॥
कारण चार अनूप,
कार्यार्थी तेह ग्रहेरो ॥ २ ॥

अर्थः—हवे मोक्षकार्य निपजाववा माटे कारण कार्यनी नीति कहे छे. सर्व कार्य छे, ते कर्त्ताना कीधा थाये छे, तेमां भिन्नकार्यनो कर्त्ता पण भिन्न, जेम घटनो कर्त्ता कुंभकार भिन्न छे, अने अभिन्नकार्यनो कर्त्ता पण अभिन्न छे. जेम ज्ञाननो कर्त्ता आत्मा छे, तेम संपूर्ण सिद्धत्वनो कर्त्ता पण आत्माज छे. ते कर्त्ता जेवारें कारणनी योगवायी पामे, तेवारें कार्यनी सिद्धि नीपजवापणुं लहे, एटले एकलो कर्त्ता ते कारण सामग्री विना कार्य करी शके नहीं, कारण सामग्री मलेज कार्य नीप-

जावे, ते कारणना चार भेद छे. जे कार्य नीपजाववानो अर्थी थाय, ते चार कारणने ग्रहे, इहां घणा शास्त्रोमां तो कारणना बे भेद कह्यां छे. एक उपादानकारण, बीजा निमित्त कारण, अने विशेषावश्यकने विषे समवायका- रण ए नाम कह्यां छे, तथा आप्तमीमांसामां कारण त्रण कह्यां छे.

" समवायसमवायो निमित्त- भेदात् "

तेमां समवाय कारण ते उपादान कारण अने असमवाय कारण ते नामांतर असाधा- रण कारण कहेवाय छे, तथा निमित्त कारण ना बे भेद करीयें तेमां एक तो निमित्त का- रण बीजुं अपेक्षा कारण ते तत्त्वार्थटीकामां व- खाण्युं छे.

"तथा अपेक्षाकारणं पूर्वमित्यनेन उच्यते यथा घटस्योत्पत्तावपेक्षाकारणं व्योमादि उपेक्षते इति उपेक्षा"

ते माटे यद्यपि कारण, बेमां चार अंतर्भूत छे, तोपण विस्ताररुचिने भिन्नोपयोगी करवाने चार कारण कह्यां छे. एक उपादान, बीजुं असाधारण, त्रीजुं निमित्त, चोथो अपेक्षा. ए चारे कारण ज्यारे कार्यरुचि कर्त्ता ग्रहे, अने ज्यारें ए चार कारणने कार्यरुचि कर्त्ता प्रवर्त्तावे त्यारें ते कारण समजवां, पण कर्त्ताना प्रयोजन विना कारणता नहीं. एम भावना करवी ॥ २ ॥ इति द्वीतिय गाथा ॥

जे कारण ते कार्य,
थाये पूर्ण पदे री ॥
उपादान ते हेतु,
माटी घट ते वदे री ॥ ३ ॥

अर्थः—हवे प्रथम उपादान कारणनुं स्वरूप कहे छे. जे कर्त्ताना कार्यने सन्मुख थाय तथा जे कारण तेहीज पूर्णपदें केतां पूर्णताना अवसरें कार्य रूप थाय तेने उपादान हेतु केतां कारण कहींये.

॥ उक्तं च महाभाष्ये ॥
तहेवकारणं ते,
तवोपडस्सेहजेण तम्मइया ॥

विवरीय मन्नकारण,
मिहं, वोमादउं तस्स ॥ १ ॥

ए गाथाने व्याख्याने यदात्मकं कार्यं दृश्यते तदिह तद्द्रव्यकारणं उपादानकारणं यथा तंतवः पटस्य इति ॥

एटले जेम तंतु हता ते कर्त्ताने प्रयोगें पट थयां, ते उपादान कारण जेम घटरूप कार्य तेहने माटी ते उपादान कारण छे, पछी माटी तेहज घटपणुं पामी, एटले कारण तेहीज कार्यपणुं पाम्यो, इहां कारण कार्यनुं एक समयरूप जे व्याख्यान छे, ते पण उपादान कारणनुं छे, एम महाभाष्ये मतिज्ञानाधिकारें

जमालि न्हिनवना अधिकारें कह्युं छे. इहां कोइ पुछे जे कारण ते कार्य थाये एम कहो छो तो कारण कार्यनुं एकपणुं थाशे ? तेहने उत्तर जे अभिधान,फल, लक्षण,संख्या,संस्थानादिकनो भेद छे, तेथी भिन्न जाणवुं, जेम प्रथम माटी एहवुं नाम हतुं, पछी घटनाम थयुं, माटी ते मृदुता, द्रव्यता धर्मवंत हती, घट ते जलाहरण धर्मवंत छे, माटे भिन्नता छे, ए प्रथम उपादान कारण बताव्युं ॥३॥ इति तृतीय गाथार्थः ॥

उपादानथी भिन्न,
जे विण कार्य न थाये ॥
न हुवे कारजरूप,
कर्त्ताने व्यवसायें ॥ ४ ॥
कारण तेह निमित्त,

चक्रादिक घटन्नावें ॥
कार्य तथा समवाय,
कारण नियतेन दावें ॥ ५ ॥

अर्थः—हवे निमित्तकारणनुं लक्षण कहे छे. जे कारण उपादान कारणथी भिन्न केतां जुदुं अने तेना मल्या विना कार्य थाय नहीं. वली तेहने विषे जे कारणपणुं ते कत्ताने व्यवसायें केतां कर्त्ताने उद्यमे छे, ते निमित्त कारण कहियें, जेम घटभावें घटकार्य छे तेहने चक्र, चीवर, दंडादिक ते निमित कारण छे, अने माटी उपादान कारण छे, ते उपादान कारणथी निमित्तकारण जे चक्र चीवर दंडादिक छे ते सर्व भिन्न छे, अने ए निमित्त मल्या विना माटीनो घट थाय नहीं, तेमज ते चक्रादिक

कदापि कोइकालें कार्यपणुं पामे नहीं, अने ए चक्रादिकने जेवारें कर्त्ता जे कुंभकार ते घट करवारूप व्यापारें प्रवर्त्तावे, तेवारें एने कारण कहीये, नहींतो कारणतापणुं कहेवाय नहीं, ते पण समवायकारण केतां उपादान कारण तेहने नियतेनदावे केतां कर्त्ता जेवारें उपादान कारणने कार्यरूपे करतो होये, ते वारें जे उपगरण कामे लगडवां, ते सर्व निमित्तकारण कहियें, अने तेज उपगरण जेवारे कर्त्ता कार्यने करतो न होय, तेवारें तेहने कारण कहियें नहीं, कारणनुं स्वरूप एहवुंज छे. जे कार्यने करे, ते कार्यानंतर अथवा प्रथम अप्रयुक्तकालें जे दंडादिकने कारण कहे छे, ते आरोप मात्र नैगमनय मतें जाणवो; परंतु स्वरूप नथी. ते माटे कार्यनो जे कर्त्ता, ते उपादानकारणने कार्यरूप करतां

तेहमां जे जे उपगरण प्रवर्त्तावे, ते ते निमित्त-कारण जाणवुं एटले जे जे कार्यनी नियत जे नियामिकी छे ते ते कार्यना निमित्त जाणवा. जेम घटकार्यने चक्रादिक अने पटकार्यने तुरी-व्योमादिक एम सर्वत्र जाणवुं. ए निमित्तकारण कह्युं ॥ ४ ॥ ५ ॥ इति चतुर्थ पंचम ॥

वस्तु अभेद स्वरूप,
कार्यपणुं न ग्रहेरी ॥
ते असाधारण हेतु,
कुंभे थास लहेरी ॥ ६ ॥

अर्थः—हवे असाधारण कारणनुं स्वरूप कहे छे. ते वस्तु जे उपादान कारण तेहथी अभेदस्वरूपें छे, अने कार्यपणुं पामतो नथी,

एटले कार्य नीपने ते रहेतो नथी, जेम घटकार्य नीपज्युं तोपण तेमांहे माटीपणुं रह्युं छे, तेनी परे ते रहेतो नथी, ते असाधारण हेतु कतां कारण कहीयें. जेम घटरूप कार्य करतां स्थास कोश कुसलाकार थाये छे, ते मृतपिंडरूप कारणथी अभेद छे, परंतु घटरूपकार्य नीपने ते रहेतां नथी, ते माटे ए सर्व असाधारण कारण जाणवां. उक्तं च

" प्रमाणनिश्चयेन उपादानस्य कार्यत्वाप्राप्तस्य अवांतरावस्थाश्च साधारणं इति " ॥ ६ ॥

॥ इति षष्ठगाथार्थः ॥

जेहनो नवि व्यापार,

भिन्न नियत बहुभावी ॥
भूमी काल आकाश,
घट कारण सदभावी ॥ ७॥

अर्थः—हवे अपेक्षाकारण कहे छे जे कारणनो व्यापार प्रवर्त्तन नथी, तथा कर्त्ताने पण ते मेळववानो प्रयास करवो पडतो नथी, अने कार्यथी भिन्न केतां जुदो छे, तथा नियत केतां नियमा निश्चें ते जोइयें, अने बहुभवी केतां अनेक बीजा सर्व कार्यमां भावी छे, ए रीतें कारणीक छे, ते अपेक्षा कारण कहीयें, जेम भूमी तथा आकाश ए विना कोई घटादि कार्य थतुं नथी, अने भूमी प्रमुख जेम घटनुं कारण छे, तेम अन्य बीजा कार्योनुं पण कारण छे, अने घटनुं कारणपणुं पण छतुं छे.

वली कर्त्ता जेम उपादान तथा निमित्त कारणनो व्यापार करे छे, तेम एनुं प्रवर्त्तन करतो नथी ॥ ७ ॥

एह अपेक्षाहेतु,
आगम मांहे कह्यो री ॥
कारणपद उत्पन्न,
कार्य थये न लह्यो री ॥ ८ ॥

अर्थः—तेथी ए अपेक्षाहेतु केतां कारण आगममां तथा तत्त्वार्थादिक ग्रंथोमां कह्युं छे.

"यथा घटस्योत्पत्तौ अपेक्षाकारणं व्योमादि अपेक्षते तेन विना तदभावाभावात् ॥ निर्व्यापारमपेक्षाकारण इति तत्त्वार्थवृत्तौ"

॥ तथा विशेषावश्यके अवधिज्ञानाधिकारे

"इहां द्वारभूत शिलातलादि द्रव्यानुत्पद्यमानस्यावधिः सहकारकारणानि भवंति अत्र सहकार कारणंगवेष्यं इति"

ए चार कारणनुं स्वरूप कह्युं. हवे कारणपद केतां जेहमांहे कारणपणुं ते छतो मुलगो धर्म नथी, पण उत्पन्न छे, अने ते ज्वारें कर्त्ता ते कार्यनो अर्थी थइने जे उपकरण तथा मूलपिंड ते रूपे कार्यपणे प्रवर्त्तावे, तेवारें ते तेहनुं कारण करण कहीयें एटले जेम काष्ठमां दंडादिक अनेक पदार्थना छतापणानी योग्यता छे, पण कोइ कर्त्ता, दंडनुं कारण उत्पन्न करे, कोइ पुतलीनुं कारण उत्पन्न करे, तेमज

दंडादिकने कोइ घटध्वंसपणे प्रवर्त्तावे, तो घ-टध्वंस करे, तथा कर्त्ता जो दंडादिकने घट करवापणे प्रवर्त्तावे, तो तेहनुं कारण थाय, माटे जे कारणपणुं छे ते कर्त्तानुं करवुं थाय छे. श्रीविशेषावश्यके कह्युं छे,

"ये कारकाः कर्त्तुराधीना इति कारणं कार्योत्पादकं तेन कार्योत्प-त्तौ कारणत्वं नचकार्याकरणे"

ते माटे कारणपणुं ते उत्पन्न छे. हवे कोई केहेशे जे वस्तुमां कोई कार्यना कारण तो छता छे, तो उत्पन्न छे, एम शावास्ते कहोछो ? तेहने उत्तर जे विवक्षित कार्यनी कारणता उत्पन्न छे, अथवा जे कार्यता जे काले ते कार्यता कर्त्ताना प्रयोगनी छे, ते माटे

उत्पन्नज छे, पण कार्य निपज्या पछी ते मध्ये कारणपणुं न पामीयें. जेम अनादि मिथ्यात्वी जीव यद्यपि सत्तावंत छे, तेमज अभव्य जीव पण सत्तावंत छे, परंतु तेहनुं उपादान सिद्धताना कार्यनुं करणहार नथी, तेथी कार्य नीपजतुं नथी. जेवारे कोइक जीवनुं उपादान अरिहंतादिक निमित्त पामीने, कारणतापणे परिणमे, ते कार्य करे, माटे ते उत्पन्न छे, अने ते कार्य सिद्ध थया पछी ते कारण रहे नहीं, जो सिद्धतामां साधकतानी छती मानीयें तो, सिद्धावस्थायें पण साधकपणुं रहुं मानवुं पडे ते सिद्धावस्थामां साधकपणुं तो नथी माटे कार्य नीपजे कारणता रहे नहीं, तथा निमित्त जे दंडादिक ते पण कर्त्ता भिन्न कार्यना व्यवसायें कारणता करे, तो ते भिन्न कार्य थाये, परंतु

तेज कार्यनी ते कारणता रहे नहीं, एम धारवुं ॥ ८ ॥ इति अष्टम गाथार्थः ॥

कर्त्ता आतमद्रव्य,
कारज सिद्धिपणो री ॥
निजसत्ता गत धर्म,
ते उपादान गणो री ॥ ए ॥

अर्थः—हवे सिद्धतारूप कार्यनां चार कारण देखाडे छे. सिद्धतारूप कार्य ते आत्मानुं अभेदस्वारूप छे, माटे एहनो कर्त्ता आत्मा द्रव्य पोतेज छे, अने सिद्धपणुं ते आत्मानु कार्य छे. जे आत्मा सिद्धताने परमानंदपणे जाणे, तथा एहीज माहरुं हमणां करवानुं कार्य छे, ए कार्य करवानी रुचि विना अनंतो काल संसारमां भम्यो, स्वरूपभ्रष्ट थयो, माहा

मोहें ग्रह्यो. हवे में माहरो मूलधर्म श्रद्धाभासन गोचर कर्यो तेथी ए कार्य करवुं एम निर्धार करी मदनुगत चेततावीर्यें करीने स्वस्वरूप करवानो कर्त्ता थयो, तो सिद्धताना कार्यने निपजावे, ते आवी रीतें जे प्रथम तो अंशेकर्त्ता थाय, पछी गुणवृद्धि थये संपूर्ण कर्त्तापणुं पामीने कार्य नीपजावे. हवे ए सिद्धता रूप कार्यना उपादानकारण कहे छे. जे पोताना सत्तागत ज्ञान, दर्शन, चारित्र, वीर्यादिक, अनंतगुण छे, तेहिज पोतानुं सत्तागत धर्म ते सिद्धिरूप थाय छे, माटे तेहीज उपादान कारण जाणवुं. उपादान ते वस्तुनो मूल धर्म अरूपी सत्ता तेहीज सिद्ध थाय छे, ए सिद्धतारूप कार्यनुं उपादान कारण देखाडयुं ॥ ९ ॥ इति नवम गाथार्थः ॥

योग समाधिविधान,
असाधारण तेह वदे री ॥
विधि आचरणा नक्ति,
जिणें निज कार्य सधे री ॥ १० ॥

अर्थः–हवे सिद्धतारूप कार्यनुं असाधारण कारण कहे छे. मन, वचन अने कायाना योग तेहने द्रव्यथी तथा भावथी स्वगुणरमणमां अरागी, अद्वेषीपणे प्रवर्त्तावनुं, तेने आत्मसमाधि कहीयें, तेनो जे विधान केतां करवो एटले चोथा गुणठाणथी मांडीने सिद्धपर्यंत जे गुणनी वृद्धि करवा, एटले अभिनव गुणनो कारणपणुं ते सर्व ज्ञान, दर्शन, चारित्र, श्रेणीगतध्यान परिणाम, क्षयोपशमीभाव, विधिसहित आचरणा, तथा भक्ति अने गुणीनुं वहुमान, जेथी

पोताना कार्यनी सिद्धि निपजे. ते ज्ञान क्रिया-रूप साधक अवस्थानी तरतमता ए सर्व असाधारण कारण कहेवुं. ए असाधारण कारण ते आत्मगुणरूप उपादाननी भिन्न भिन्न उणता थकानी अवस्था छे, सदा पूर्वपर्याय उत्तरपर्यायनुं कारण छे, ते समयेंज क्रियाकाल निष्ठाकालनो अभेद छे. ए असाधारण कारण कह्यो ॥ १० ॥ इति दशम गाथार्थः ॥

नरगति पढम संघयण,
तेह अपेक्षा जाणो ॥
निमित्ताश्रित उपादान,
तेहने लेखे आणो ॥ ११ ॥

अर्थः—हवे सिद्धतारूप कार्यनुं अपेक्षा तथा निमित्त ए बे कारण कहे छे. नर केतां

मनुष्यनी गति, पढम केतां पहेलुं संघयण वज्र-
रुषभनाराच, पंचेंद्रिपणुं इत्यादि सिद्धतारूप
कार्यनुं अपेक्षा कारण जाणो. इहां कर्त्तानो
व्यापार नथी, पण ए निश्चे जोइयें. ए पाम्या
विना मोक्षरूप कार्यनी साधना थाय नहीं, ते
माटे अपेक्षा कारण कहीयें, पण ए मनुष्य
गत्यादिक सर्वने जे जीवनुं उपादान परिणमन,
धर्मार्थी थइने निमित्त जे देव गुरु सिद्धांत
तेहने जेणें आश्रयो, तो तेहनी मनुष्यगत्यादिक
लेखे कहेतां कारणपणे आणजो, केतां गणजो
अने जेणे निमित्तने आश्रयो नथी, तेहनी मनु-
ष्यगत्यादिक कारणपणामां गणशो नहीं, ते
हजी अनादिनी चालमां छे, पलटणता करतो
नथी, ते माटे. ए अपेक्षा तथा निमित्त ए बे
कारण कह्यां ॥ ११ ॥ इति ॥

निमित्त हेतु जिनराज,
समता अमृत खाणी ॥
प्रभुअवलंबन सिद्धि,
नियमा एह वखाणी ॥ १२ ॥

अर्थः—हवे आत्माने सिद्धतारूप कार्य करतां निमित्त कारण श्री जिनराज वीतराग छे, ते वीतराग सर्वज्ञ कहेवाय छे, समतारूप अमृतनी खाण छे, इष्ट अनिष्टता रहित समताना धणी छे, शुद्ध चारित्र परिणाम तेहीज अमृत छे, तेहनी खाण छे,एहवा प्रभु परमेश्वर परम दयाल, परमात्मा, शुद्धतत्वरूप भोगी, पूर्णानंदी, चिदानंद जे श्री अरनाथप्रभु तेहने अवलंबवे पोताना भासन प्रभुना ते गुण जाणवाने जोडी एम अनंता गुण ते सर्व गुणना

भासननी रीझ तथा ते उपर बहुमान एहवे आलंबने रेहवुं, तेथी नियमा सिद्ध निवारण थाय एम आगममां वखाण्यो छे, एहीज मोक्षनुं उपाय छे. निमित्त कारण कह्युं ॥ १२ ॥ इति द्वादश गाथार्थः ॥

पुष्ट हेतु अरनाथ,
तेहने गुणथी हलीयें ॥
रीझ भक्ति बहुमान,
भोगध्यानथी मलीये ॥ १३ ॥

अर्थः—माटे पुष्ट केतां नियामक हेतु केतां कारण ते जिनराज श्री अरनाथप्रभु तेहना गुण जे केवलज्ञान, अनंतानंदरूप तेहथी हलीयें केतां आपणो आत्मा ते दिसें जोडीयें, प्रगट गुणीना गुणथी आपणी चेतना जोडवी, रीझ

केतां रागनी मग्नता, भक्ति केतां सेवना, बहु मान, आदर, मोटाइ, भोग केतां आस्वादन, ध्यान केतां चित्तनी एकाग्रता, ते श्रीअरनाथ प्रभुना गुणनी करीने श्रीप्रभुजी एकत्वपणे, तन्मयपणे मळिये. साधकने शुद्धदेव तत्त्वने अवलंबवुं ते प्रधान छे ॥ १३ ॥ इति त्रयोदश गाथार्थः ॥

मोटाने उत्संग,
बेठाने सी चिंता ॥
तिम प्रभु चरण पसाय,
सेवक थया निचिंता ॥ १४ ॥

अर्थः—तथा लौकिक दृष्टांत कहे छे. जे मोहोटाने उत्संगे केतां खोळामां बेठो तेहने कोइ चिंता नहीं, ते निचिंत थयो, तेम सेवक

पण प्रभुजी निरामय देव तेहना चरणने सेववे चिंतारहित थयो, जे परमोत्तम, सर्व गुणभोगी, निरालंबी, चिन्मयी, अनंतज्ञान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्यमयी, श्रीजिनेश्वर निःकर्म देव तत्व, परभावना अकर्ता, परभाव अभोगी, परानुयायीता रहित, एहवो देव जो आदर्यो छे, तो मोहनुं शुं जोर छे ? संसार कोने छे? कर्मनी बीक कोने छे ? जो परमोत्तम धणी में माहरे माथे कर्यो छे, जेहना ध्यानथी माहरो मोक्ष नीपजे, ते देवनो योग मिल्यो छे,ते माटे चिंता नथी ॥ उक्तं च श्री जिनवल्लभ पूज्यैः

पसरेइ तीयलोए,
तावमोहंध यारंभमइ जई॥
सिन्नंमताव मिव्वतं,

सिन्नं फुरइ फुरफुरंताणं ॥ १ ॥

तंनाणंस पूरो, पयडमजीयसंतो झा-
जसुरो ॥१४॥ इति चतुर्दश गाथार्थः

अर प्रभु प्रभुता रंग,
अंतर शक्ति विकासी ॥
देवचंद्रने आणंद,
अक्षय भोग विलासी ॥१५॥इति॥

अर्थः—माटे श्री अरनाथ प्रभु अढारमा परमेश्वर जेणें तत्त्वरुचि थइ ने तत्त्वाभिलाषी तत्त्वसाधक तत्त्वध्यानी थइने तत्त्व प्रगट कर्युं, ते प्रभुनी प्रभुता, शुद्धज्ञायकता, शुद्ध-रमणता, शुद्धानुभवता, अपौद्गलिकता, असं-गता, अयोगिता, सकल प्रदेश निरावरणता,

मा भावी शुद्धसत्ताभोग्यता, तेह ने रंग जे रंगणा छे, ते साधक सम्यगदृष्टि, देशविरति, सर्वविरतिनी अंत रंग शक्ति तत्त्वप्रागभाव करवानी साधक कारकता, साधक कर्त्तापणुं, परम संवर पूर्वक परम सकाम निर्जरा रूप शक्ति, विकस्वर थवे, प्रगट थवे ते शक्तिथी सर्वकर्म विगम थवे, सर्व आत्मिक धर्मने प्रगटवे करी, परमात्मा देवमांहे चंद्रमा समान श्री निष्पन्न परमेश्वर तेहनो जे आनंद, अव्याबाध, शिव, अचल, अरुज, अविनाशी, तेहनुं जे अक्षय स्वरूप, तेहनो भोग करतां अनुभव तेनो विलासी आत्मा थाय, एटले स्वसंपदा तत्त्वता आत्मशुद्ध परिणति, तेहने सादि अनंतो काल भोगवे, अथवा देवचंद्र जे स्तुतिकर्त्ता ते अक्षय आनंदना भोगनो विलासी थाय, माटे स्व-

स्वप्रसिद्ध, अरूपी, चिद्रूप, श्रीपरमेश्वर, तेहने सेवो, ध्यावो, नमो, गावो, तेहना गुण संभारो, एहीज मोक्षसाधननुं पुष्ट निमित्त छे, ए निमित्तें उपादान कारणरूप थइने असाधारण कारणताएं चडतो मनुष्यादिगति अपेक्षा कारणपणे करी तत्त्वानंदरूप कार्यने करशे, ते माटे उपादानादिक त्रणे कारणनी कारणता निमित्तने अवलंबें प्रगटे, तथी निर्दोषपणे आशंसादि दोष वर्जिने शुद्धनिमित्तने सेवे, ते सेवनथी कर्त्तापणुं समरे अने कर्त्तापणुं समरेथी स्वकार्य करे, माटे श्रीअरनाथजीनी भक्ति ते परमाधार छे ॥ १९ ॥ इति श्रीअरजिन स्तवनं ॥ १८ ॥

## ॥ अथ एकोनविंशति श्री मल्लिनाथ जिन स्तवनं ॥

॥ देखी कामिनी कोइ के, कामें व्यापियो रे के का० ॥ ए देशी ॥

मल्लिनाथ जगनाथ,
चरणयुग ध्याईयें रे ॥ च० ॥
शुद्धातम प्रागभाव,
परम पद पाईयें रे ॥ प० ॥
साधक कारक षट्क,
करे गुण साधना रे ॥ क० ॥
तेहीज शुद्धसरूप,
थाय निराबाधना रे ॥ था० ॥१॥

अर्थः—हवे ओगणीशमा श्री मल्लिनाथ परमेश्वरनी स्तवना करे छे. तिहां कारक श॰क्ति पलटवाथी सिद्धता निपजे छे, ते पलटवानो उपाय श्री अरिहंतनी सेवना छे, ते रूप स्तुति करे छे. श्री मल्लिनाथ, परमेश्वर, परम ज्ञानी, ते जग केतां लोकना नाथ मोहनो भय एटले अंतरंग भावरिपुथी छेडाववाना परम कारण छे, तेहनां चरणयुग केतां पदकमलनुं जोडुं तेहने ध्यायीयें, वारंवार संभारियें, एहवा प्रभुने ध्यायवाथी ध्याताने शुं नीपजे ? ते कहे छे. शुद्ध जे आत्मानो परमात्मभाव अनंतगुण निर्मलतारूप तेहनो जे प्रागभाव केतां प्रगटपणुं निर्मल शुद्धतारूप परम पद निर्मल पद ते पामीयें, एटले पोतानी आत्मता निर्मलपणुं भजे, ते आत्मसिद्धिरूप

कार्य करवाने छ कारक छे. तिहां सर्व कार्यमां कारक प्रवृत्तिनी कारणता छे, कारकचक्र विना कार्यनी निष्पत्ति नथी. जेम १ कुंभकार ते कर्त्ता, २ घट ते कार्य, ३ मृत्पिंड चक्रादिक कारण, ४ माटीना पिंडने नवा पर्यायनी प्राप्ति ते संप्रदान, ५ पिंड स्थासादि पर्यायनो व्यय ते अपादान, ६ घटादि पर्यायनुं आधारपणुं ते आधार, एम घटरूप कार्यमां षट् कारक छे, तेमज आत्माने अनादि कालनां ए छ कारक बाधकरूपें परिणम्यां छे, ते देखाडे छे.

१ आत्मा परविभाव रागादि ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्मनो कर्त्ता थयो छे.

२ भावकर्म द्रव्यकर्मने जे आत्मा करे, ते कार्य नामा बीजुं कारक.

३ अशुद्धविभाग परिणतिरूप भावाश्रव अने प्राणातिपातादि द्रव्याश्रव, ए बे कारणथी कर्म बंधाये, माटे ए करण नामा त्रीजुं कारक.

४ अशुद्धतानो तथा द्रव्यकर्मनो लाभ ते संप्रदान नामा चोथुं कारक.

५ स्वरूपरोध, क्षयोपशमनी हाणी, तथा परानुजयायिता ते अपादान.

६ अनंती अशुद्धविभावता, तथा ज्ञानावर्णादिकर्मने राखवा रूप जे शक्ति ते आधार नामा छटुं कारक जाणवुं.

ए रीते ए छ कारकनुं चक्र अनादिनुं अशुद्धपणे बाधकतापणे आत्माने परिणमी रह्युं छे, ते जेवारें साधक आत्मा, पोतानो स्वधर्म नीपजाववापणे परिणमावे, तेवारें ए

छए कारक साधकपणे प्रवृत्त्या गुणनी आत्मधर्मनी साधना करे, ए रीतें ए छ कारक साधकपणे परिणम्यां कार्य नीपजे शुद्धस्वरूप थाय. ए स्वरूप परिणामिकता रूप स्वकार्य कारणपणुं कोने परिणमे ? ते कहे छे. जे निराबाध, श्री सिद्धभगवंत, तेनां छ कारक, ते शुद्धपणे प्रवृत्ते छे, अने बाधक जीवोना बाधकपणे परिणमे छे, तथा समकेत गुणठाणाथी मांडीने अयोगी गुणठाणा पर्यंत, साधकपणे परिणमे छे, तथा सिद्ध भगवंतना शुद्धस्वरूपरूपें परिणमे छे, कारक ते आत्मानामा जे कर्त्तारूप द्रव्य तेहनी ए परिणति छे.

॥ उक्तं च श्री विशेषावश्यके ॥

कारण व्याख्यानावसरे,

॥ गाथा ॥

छव्विह कत्ता इ,
कारण कम्मं च तत्तो य ॥
संपयाणा, वायाण,
तह नासंमिहाणाय इति ॥ १ ॥

॥ गाथार्थः ॥

तथा च कारणं षोढा,

॥ यथा ॥

कारण महवा छद्धा,
तब संतंतोत्ति कारणं कत्ता ॥
वऊपसाहगतमं,
कारणम्मिमउ पिंमदंमाइ ॥ १ ॥

कम्मं किरिया कारण, इत्यादि गाथाथी जाणवुं ॥

होइ पसत्थं मोक्खस्स कारणं. इह यन्मोक्षस्य कारणं हेतु तत् प्रशस्तभावकारणं उच्यते ॥ इति वचनात् ॥

माटे साधकपणे कारक परिणम्या तो सिद्धतारूप कार्यने करे, तेमांहे निराबाध जे सिद्ध निरावरण अव्याबाध सुख तेमां तेनो कर्त्तादिक शुद्ध पारिणामिक भाव शुद्धपणे थाय, स्वस्वरूप कर्तृत्वपणे परिणमे ॥ ? ॥ इति ॥

कर्त्ता आतम द्रव्य,
कार्य निज सिद्धता रे ॥ का० ॥

उपादान परिणाम,

प्रयुक्त ते कारणता रे ॥ प्र० ॥

आतम संपद दान,

तेह संप्रदानता रे ॥ ते० ॥

दाता पात्रने देय,

त्रिभाव अभेदता रे ॥ त्रि० ॥१॥

अर्थः—१ पहेलुं कर्त्तानामा कारक कहे छे. तिहां कर्त्ता आत्मा द्रव्य ते आत्माशुद्धता निपजाववारूप कार्ये प्रवर्त्तन पाम्युं, पोतानुं कर्त्ता छे.

२ जे आत्मा पोतानी सिद्धता सर्वगुण पूर्णता सर्वस्वभाव स्वरूपावस्थानता ते कार्यनामा बीजुं कारक जाणवुं, ते कार्य जेणे

परिणातिचक्रने प्रवर्त्तवा रूपें क्रियार्यें नीपजे, ते क्रियानुं प्रवर्त्तावनुं ते कार्य ते कार्यने कारकता नीपजाववा कालेंज छे, नीपना पछी कार्यमां कारकता नथी.

उक्तं च भाष्य ॥

तस्मात् बुद्ध्यध्यावसितं कार्यं अध्यात्मकारणमेष्टव्यं इति ॥

२ उपादानपरिणाम आत्मा स्वगुणनी परिणति, सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्ररूप रत्नत्रयीनी जे परिणति, तत्त्वनिर्धार, तत्त्वरुचि, तत्त्वज्ञान, तत्त्व रमणादिक रूप स्वगुण अहिंसकता, बंधहेतु अपरिणमन रूप, स्वरूप यथार्थभासनरूप, परभाव अग्रहणरूप, परभाव अभोक्तारूप, स्वरूपग्रहण, स्वरूप भोगी,

परभाव अरक्षणरूप, स्वरूप एकत्व रूप तत्त्वाराधन, चेतनास्वरूप प्रगटतानुयायी वीर्य, ते उपादान कारण अने द्रव्ययोग समारवा रूप अरिहंतालंबनादि, यथार्थ आगमश्रवणादि ते निमित्त कारण तेनुं प्रयुंजवुं आत्मकार्य करवापणे आत्मानो प्रयोग करवो, ए उत्कृष्ट कारण माटे करणनामा त्रीजुं कारक जाणवुं.

" साधकतमं कारणं करणं "

इति वाक्यात् आत्मसिद्धिरूप कार्यनुं उत्कृष्ट कारण अने आत्मशक्तिस्वरूपानुयायी तथा शुद्धदेव प्रमुख ते करणनामा कारक कहिये.

४ आत्मानी संपदा जे ज्ञानपर्याय, दर्शनपर्याय, चारित्रपर्याय, तेनुं दान आत्माने आत्मगुण प्रगट करवारूप देवुं, तेथी जे जे

आत्मधर्म निपजता जाय, ते संप्रदान कहियें.

॥ उक्तं च ॥ गाथा ॥

देउ स जस्स तं सं पयाणमिह तंपि कारणं तस्स ॥ होइ तदहि-त्ताउ, न कीरइ तं विणा जंसो ॥ इति ॥

माटे जे आत्माना अस्तिधर्मनुं थवुं ते संप्रदानकारक जाणवुं. इहां दाता आत्मा तथा पात्र पण आत्मा अने आत्माने देय केतां देवा योग्य ते पण आत्मधर्म, ए त्रणे भावनी अभे-दता छे, एटले गुणनुं प्रगट करवुं ते देय अने आत्मा दाता तथा आत्मगुणने प्रगट करे ते दातापणुं अने गुणनुं पात्र पण आत्मा एटले दान, दाता अने ग्राहक, त्रणें अभेद छे ॥२॥

स्वपर विवेचन करण,
तेह अपादानथी रे ॥ ते० ॥
सकल पर्याय आधार,
संबंध आस्थानथी रे ॥ सं० ॥
बाधक कारक भाव,
अनादि निवारवा रे ॥ अ० ॥
साधकता अवलंबि,
तेह समारवा रे ॥ तै० ॥ २ ॥

अर्थः—६ जे आत्मार्थी समवायें रह्या तेने स्वधर्म आत्मधर्म कहिये. अने तेथी विपरीत जे मोहादिक कर्म अशुद्ध प्रवृत्ति ते परभाव कहिये, तेनुं विवेचन करवुं, भिन्न करवुं, अशुद्धतानो उच्छेद करवो, दोषनो

त्याग करवो, एटले जे दोषाविश्लेष करवो. अनादिसंसार कर्त्तापणुं तथा भोक्तापणुं ते तजीने जे आत्मस्वरूप कर्त्तापणुं भोक्तापणुं तेहीज प्रगट करवुं, ते पांचमुं अपादान कारक कहियें.

६ सकल केतां समस्त. सर्वपर्याय तेनो आधार ते आत्मा छे, आत्मानुं तथा आत्मपर्यायनुं स्वस्वामित्वपणुं समवाय संबंधे छे, व्याप्यव्यापक संबंध छे, ग्राह्यग्राहक संबंध छे, आधाराधेय संबंध छे, ए सर्वनुं आस्थान केतां ते कारणरूप क्षेत्र ते आत्मा छे, ते आस्थानता माटे आत्मा आधार छे, ए आधारनामा छट्ठुं कारक जाणवुं. ए छ कारक साधकपणानां कह्यां. हवे ए साधकपणुं केम पामे ? ते कहे छे. बाधक जे परभाव तेने अनुयायी अशुद्ध

कर्त्तादि कारकपणुं मिथ्यात्व असंयम कषाय-रूप भाव अशुद्धतारूप सामान्य चक्र अशुद्ध-साध्यानुगत अशुद्धकर्त्तापणुं तेने निवारवुं ते चक्र रोकीने स्वरूपानुगत करवुं, ते माटे ए अनादिनी भूल टालवी, जिहां सुधी कर्त्ता परभावकारक छे, त्यां सुधी कांइ साधकता नथी, ज्यां सुधी कर्त्ता अशुद्धकार्यानुयायी सामान्य चक्र छे, तिहां सुधी शुद्धसाधकतानो अंश पण उपन्यो नथी, श्रीपूज्ये कह्युं, छे जे आत्मा तत्त्वकर्त्ता पणे थया विना सर्व शुभ प्रवर्त्तन ते बालकनी चाल छे, ते माटे कारक चक्र बाधकताथी वारीने, साधकताने अवलंबीने ते कारकचक्रने समारवुं, स्वरूपानुयायी करवुं अने पोताना आत्माने एम कहेवुं जे हे चेतन ! तुं परभावनो कर्त्ता तथा भोक्ता अने ग्राहकता

नहीं, तुंतो संपूर्णानंदनो शुद्ध विलासी छो, अने तुं जे परभावमां रमी रह्यो छो, तथा परभावनो भोगी थइ रह्यो छो ? ए तुजने घटे नहीं, तारुं कार्य, तो अनंत गुण पारिणामिकरूप स्वरूपभोक्तापणुं छे, ते माटे हे चैतन्यहंस ! हवे तुं यथार्थ जिनवाणीरूप अमृत पान करीने, अनादि विभाव विष वारीने पोतानुं तत्त्व संभारी स्वपर विवेचनकारी थइने पोतानो जे सहजानंद तेने कर. एहीज तारुं कार्य छे, तुं तेनुं उपादान कारण शक्तिवंत छो, तेनो लेवावालो छो, तुं तारी गुणसंपदा तारे प्रदेशें प्रगट करवारूप दाननो संप्रदानी छो, माटे हे चेतन ! ए अनादिअशुद्ध परिणामने तुंहीज त्याग करीश, अने तारी सत्तानो आधार पण तुहीज छो, माटे तुंहीज

तारा तत्त्वने कर, तारुं तत्त्व: तुं नीपजावीश, एम पोतपोताना आत्माने कहिने, साधकपणुं आदरवुं ते आदरतां कारक समरे, कारकने समरवेथी अनुक्रमें आत्मानुं स्वकार्य नीपजे, पछी एहीज आत्मा सिद्ध थाय, माटे एहीज साधननो मार्ग छे, साधन कीधे कार्यनी सिद्धि थाय, ए क्रम छे ॥ ३ ॥ इति तृतीय गाथार्थः ॥

शुद्धरूपणे पर्याय,
प्रवर्त्तन कार्यमें रे ॥ प्र० ॥
कर्त्तादिक परिणाम,
ते आतम धर्ममें रे ॥ ते० ॥
चेतन चेतन भाव,
करे समवेतमें रे ॥ क० ॥

सादि अनंतो काल,

रहे निजखेतमें रे ॥ र० ॥ ४ ॥

अर्थः—पहेलो शुद्धपणे निष्पन्न आत्माना ज्ञानादिक पर्यायनुं जाणवा देखवारूप कार्यनुं प्रवर्त्तन, उत्पाद व्ययरूप परिणमन, ते कार्यनो कर्त्ता आत्मा छे, बीजुं आत्मगुणनुं परिणमन ते कार्य. त्रीजुं आत्मगुणज्ञानादिक ते करण, चोथुं आत्मगुणनो लाभ ते संप्रदान, पांचमुं परभाव त्याग परिणति ते अपादान, छठुं अनंतगुणनुं राखवुं ते आधार, ए छ कारकनुं चक्र ते सिद्धावस्थाने विषे सदा स्वाधीनपणे फरि रह्युं छे. तेथी शुद्ध निष्पन्नपणे जे स्वपर्यायनुं प्रवर्त्तन, तेने कर्त्तादिक छ कारक तेनुं जे परिणमन ते आत्मधर्ममांहेज छे, एटले सिद्धपणे जे कर्त्तादिक छ कारक ते

स्वरूपमध्येज छे. चेतन केतां आत्मा ते पोतानो चेतनभाव केतां आत्म भाव करे, समवेतमें केतां समवाय संबंधमां छे, एटले आत्मा आत्मभावनो कर्त्ता छे, ए समवाय संबंधें मूलपणे सादि अनंता कालपर्यंत निजखेतमें केतां पोताना असंख्याता प्रदेशरूप क्षेत्रमध्यें आत्मधर्ममां निष्पन्न सिद्धपणे रहे, सिद्धनी आदि छे, परंतु अंत नथी, माटे सादि अनंतो काल स्वक्षेत्र स्वस्वरूपमां आत्मा रहे ॥ ४ ॥

॥ इति चतुर्थ गाथार्थः ॥

परकर्तृत्व स्वभाव,
करे तां लगे करे रे ॥ क० ॥
शुद्ध कार्य रुचि भास,
थये नवि आदरे रे ॥ थ० ॥

शुद्धातम निज कार्य,
रुचे कारक फिरे रे ॥ रु० ॥
तेहिज मूल स्वभाव,
ग्रहे निज पद वरे रे ॥ ग्र० ॥ ५ ॥

अर्थः—पर कर्त्ता जे भावकर्म, द्रव्यकर्म अने नोकर्म, तेने कर्त्तापणाने स्वभावें करे, एटले ए परकर्त्तापणुं अनादिकालथी करे छे. ज्यां सुधी परनो रागी, परनो भोगी, त्यां सुधि परकर्त्तापणुं ए आत्मा करे, पण जे वार शुद्ध, निर्मल, निरावरण, स्वगुण प्रगट करवा रूप, कार्यनी रुचि थाय, तेवारें परकर्त्तापणुं आदरे नहीं, शुद्ध आत्मस्वरूपनुं स्याद्वाद रीतें परमानंदपणे भासन तथा रुचि तेहिज कारक पलटाववानो बीज छे, ते माटे जे सम्यक्द-

र्शन, सम्यक्ज्ञान, ते मोक्षनुं मूल छे, शुद्धात्म-
अनंतज्ञान, दर्शन, अव्याबाध सुखमयी, अरूपी
सहजानंदरूप आत्मधर्म सत्ताप्राग्भाव, सकल
परभावव्यतिरेकी, अरागी, अद्वेषी, असंगी
अयोगी, अलेशी, अकषायी, असहायी, एहवुं
शुद्धानंदरूप स्वकार्य, तेना रुचि थये थके
कारक चक्र फिरे, ज्यां सीम परपौद्गलिक
सुखनी रुचि छे, त्यां सीम परनो कर्त्ता छे,
तेहथी सर्वकारकनुं चक्र ते रूपेंज परिणमे छे,
अने जे अवसरें भेदज्ञान धाराथी आत्मा पर-
विभंजन करीने पोतानुं आत्मस्वरूप एक
उच्छरंग धर्मे जाण्युं, तेनेज हित मान्युं, तेवारे
ते आत्मिक धर्मनीज रुचि उपजे, पछी जेनी
जेने रुचि उपजे, ते तेहीज कार्य करे, तेवारे
कर्त्ताधर्म स्वकार्यने करे, सर्व कारकचक्र स्व-

कार्याश्रित थाय, तेवारें तेहीज पोतानो अचळ, अखंड, अविनाशी, निःप्रयासी, स्वरूपपरिणमन रूप जे मुलस्वभाव स्वधर्म तेने ग्रहण करे, केम जे ए कारक मुलधर्मने ग्रहे छे, तेथी निज केतां पोताना परमात्म, पूर्णब्रह्म, पूर्णानंद पदने वरे, पामे, कृतकृत्य, अक्रिय अकंप, अनंत, चिच्छक्ति, अरूपी, अव्याबाधसुखी, एहीज आत्मा थाय ॥५॥ इति पंचम गाथार्थः॥

कारण कार्यरूप,

अछे कारक दशा रे ॥ अ०॥

वस्तु प्रगट पर्याय,

एह मनमें वस्या रे ॥ ए० ॥

पण शुद्धस्वरूप ध्यान,

ते चेतनता ग्रहे रे ॥ ते० ॥

तव निज साधकभाव,

सकल कारक लहे रे ॥स०॥६॥

अर्थः—ए छ कारक ते कारण तथा कार्यरूप छे, कार्यने निपजाववा रूप छे, माटे कारणनाज भेद छे, सर्वकार्य कर्त्ताने आधीन छे, कर्त्ता जे कार्य करे, ते कारणादि विना थाय नहीं, माटे वस्तु केतां आत्म पदार्थ, तेहना ए छ कारक ते प्रगट निरावरण पर्याय छे, एम मनमां वस्युं जे कर्त्तापणुं तेने आवरण नथी, कर्त्तापणुं विशेष स्वभाव छे, अने विशेष गुणने तथा पर्यायने आवरण छे, परंतु स्वभावने आवरण नथी, स्वभाव तेना कारणभूत गुण चेतना तथा वीर्य तेने आवरवे कर्त्तापणानी प्रवृत्ति मंद पडे, परंतु कर्त्तापणुं मूकगुं अ-

वराय नहीं, ते चेतनावीर्य विपरीत परिणमवे परभाव कर्त्तापणे प्रवर्त्यो, तेथी पोतानुं स्वरूप अवरायीज गयुं, ते अवराणुं तेथी स्वस्वभावने करी शके नहीं, अने अक्षरनो अनंतमो भाग, चेतना अने योगस्थानरूप वीर्य, क्षयोपशमी रह्यो, परंतु ते अनादिनी चालथी परभावानुयायीज छे, तेथी स्वरूपकर्त्तापणुं तो थयुं नहीं, तेवारे कर्त्तापणे परभावने करयो, आश्रवबंधरूप कार्यनो कर्त्ता थयो, एटले अशुद्धकार्य करयुं, परंतु अवराणुं नहीं, तेथी कर्त्तापणुं अनावृत थके कारक पण अवराणां नहीं, जो कारकनुं चक्र अवराय, तो आश्रवभाव बंधपद्धति केम करे ? तेनो आदा तो अभिनव पर्यायनो त्यागी पूर्वपर्यायनो आधार, अशुद्धतानो कोण थाय ? माटे कारक निरा-

वरण छे, परंतु विकारी थया, तेथी मूलस्व-
रूपथी चूक्या एम थयुं. हवे एनुं पलटणपणुं
पण आतमा करे, तो थाय, ते कहे छे. जे
चेतन कर्ता चेतना ज्यारें साकार अनाकारने
यथार्थ भासन करीने पोताना शुद्धस्वभावने
ग्रहे, भासनप्रतिरुचिनुं आचरणपणुं अंगीकार
करे, त्यारें एहीज सकल कर्ता छए कारक
निज कर्ता पोतानो साधक भाव जे कर्मविदा-
रण स्वरूप प्रगट करवारूप भाव, तेने लहे
कर्ता पामे, एटले एहीज कारक ते १ स्वधर्म
कर्त्ता ते कर्ता, २ स्वधर्मपारिणमन ते कार्य, ३
स्वधर्मानुयायी गुणपरिणति, चेतनावीर्य शक्ति,
ते करण, ४ साधनगुण शक्तिनुं प्रगटवुं, ते
संप्रदान, ५ पूर्वपर्यायनुं निवर्त्तन ते अपादान,
६ स्वगुणनुं आधारीपणुं ते आधार. एम ष

कारक साधकरूपणुं पामीने सिद्धता परमोत्तम तानो उच्छरंग समाधि सकल निर्मलता निपजावे. ॥ इहां स्वधर्म अवलंबवानी भावना लखे छे ॥

॥ गाथा ॥

अहम्मिको खलु सुद्धो,
निम्ममऊ नाण दंसण समग्गो ॥
तम्मिठिऊ तच्चितो,
सव्वेएए खयंनेमि ॥ १ ॥

अहं आत्मा ज्ञानादि अनंत गुणपर्याय रूप, अनंतस्वधर्ममयी तथा द्रव्यपणे, अखंड पणे, समुदायपणे एक छुं. वळी निश्चयनयथी शुद्ध छुं, यद्यपि अनादि परभावमां लुब्ध, स्वभाव भ्रष्ट थको अशुद्ध थयो, तो पण स्व-

जातिथी मूळ धर्म अनंतज्ञानादि-गुणमय, शुद्ध निष्कलंक, निरामय, निःसंग, निर्दोषी छुं. सर्व ममकार परभाव माहारापणाथी रहित छुं, ज्ञान सकलभासन, परिच्छेदनरूप, दर्शन सामान्योपयोग तेहिज मयी छुं, एवा भासन रमण, परिणमनरूप, ए आत्मा रह्या थका सर्व परोपाधिने क्षय करी स्वशुद्धस्वरूपने ग्रही, सर्व परभाव भेद करी, निर्मलानंद निपजावे ॥ ६ ॥ इति ॥

माहरुं पूर्णानंद,

प्रगट करवा भणी रे ॥ प्र० ॥

पुष्टालंबन रूप,

सेव प्रभुजी तणी रे ॥ से० ॥

देवचंद्र जिनचंद्र,

भक्ति मनमें धरो रे ॥ भ० ॥

अव्याबाध अनंत,

अक्षयपद आदरो रे ॥अ०॥ ७ ॥

अर्थः—एवी बाधकता परिणम्यो छुं, तो पण माहरुं कर्त्तादिक कारकपरिणाम ते श्री अरिहंत परमज्ञाता, स्वरूपरमणी, स्वरूपविश्रामी, स्वरूपानंदी, तेनुं स्वरूप जोतां, गातां, ते अशुद्ध कर्त्तापणुं पलटे, ते पलटवाथी कारक पण पलटे, कारक पलटवाथी कार्यशुद्ध सिद्धतारूप, अनंत स्वसंपदारूप नीपजे, तेवारें भव्य जीवने पोताना तत्त्व नीपजाववारूप शक्ति, ते श्री अरिहंतजीनी सेवनाथी थाय, ते माटेज निर्धार कर्यो छे, जे हे प्रभुजी ! मारो जे पूर्णानंद, पूर्ण अव्याबाध सुख ते प्रगट

करवाने पुष्टालंबन केतां पुष्ट नियामकी आलंबन केतां आधार ते श्रीप्रभुजी भव्यजीवना आधार, मुनिजनना प्राणाधार, आचार्य उपाध्यायजीना परम दयाल, भावचिंतामणि समान, समकेती जीवना ध्येय, ध्याताने प्रतिच्छंद रूप अनंत गुणाकर, निर्मल ज्ञानानंदना पात्र, एवा श्री जिनराज, महाराज, सुखसमाज, तेनी सेवना तेहीज पुष्टालंबन छे, ते माटे सर्व देव जे इंद्रादिक ते मध्यें चंद्रमा समान, एवा जे जिनचंद्र श्री वीतराग अरिहा, तेनी भक्ति, सेवना आज्ञा मानवा रूप, तदनुयायीपणुं तेज त्राण शरण छे, एवी भक्ति मनमां धरो, स्थिर राखो, अथ स्तुतिकर्त्तानुं संबोधन, हे देवचंद्र ! श्री जिनचंद्रनी भक्ति केतां चरणसेवना ते मनमां धरो, तो अव्याबाध, ज्यां

परभावनी पीडा नहीं, परमानंदरूप, जेना अनंत गुण ते गण्या जाय नहीं, अक्षय केतां जेनो छेद नहीं, विनाश नहीं, एवुं जे परमात्मरूप पद, ते आदरो, एटले पामो. माटे ए आत्मबाधकता तजी साधकतामां रमे, सिद्धि थाये, एज प्रभुसेवनानुं फल छे, माटे हे सिद्धरुचि जीवो ! तमे श्री मल्लिनाथ परमपुरुषोत्तम परमेश्वर, निःकारण, जगद्वत्सल, तेने गाओ, स्तवो, संभारो, ध्याओ, प्रथमथी साधक जीवने एज आधार छे, एज जीवने छे ॥ ७ ॥ इति मल्लिनाथजिन स्तवनं ॥

# अथ विंशतितम श्री मुनिसुव्रत जिन स्तवनं ॥

॥ ओलंगडी ओलंगडी सुहेली हो, श्री
श्रेयांसनी रे ॥ ए देशी ॥

ओलंगडी ओलंगडो तो कीजें,
श्री मुनिसुव्रतस्वामीनी रे ॥
जेहथी निज पद सिद्धि ॥
केवल ज्ञानादिक गुण उल्लसे रे,
लहिए सहेज समृद्धि ॥ओ०॥१॥

अर्थः—हवे श्रीमुनिसुव्रत परमेश्वर अद्भुत स्वरूपी परम अहिंसकनी स्तवना करे छे. मुनि जे निर्ग्रंथ तेना सुव्रत केतां भला व्रत एहवा श्री मुनिसुव्रत प्रभु तेनी ओलंग

केतां सेवा एटले गुणग्राम करिये, तेथी निज पद केतां पोतानुं पद जे परमानंद पद तेना सिद्धि केतां निष्पत्ति थाये. वली केवलज्ञानादिक गुण उल्लसे केतां प्रगटे, ज्ञानामृतरसनो भोगी थाय, तथा सहज अकृत्रिम स्वरूपसमृद्धिने पामे, ए प्रभुसेवानुं फल छे ॥ १ ॥ इति ॥

उपादान उपादान निज
परिणति वस्तुनी रे,
पण कारण निमित्त आधीन ॥
पुष्ट अपुष्ट दुविध ते उपदेश्यो रे,
ग्राहक विधि आधीन ॥उ०॥२॥

अर्थः—हवे इहां आत्मसाधन करवा मध्यें उपादान ते निज केतां पोतानी परिणति ते

वस्तुनो मूलधर्म छे, एटले जे आत्मसत्ता छती छे, ते उपादान कारण छे, पण ते निमित्त कारणने आधीन छे. निमित्त सेवन कर्त्ता उपादान कारण समरे, ते निमित्तकारणना बे भेद छे. एक पुष्ट निमित्त, बीजुं अपुष्टनिमित्त, तेने ग्राहक जे कार्यनो कर्त्ता, ते जो विधें करे तो कार्य थाय, ते विधें कार्य ग्रही प्रवर्त्तावे, तो ते निमित्तकारण कार्यनो हेतु थाय. पण अविधें ग्रहण करे, तो निमित्त कारण कार्य करे नहीं, जेम कुंभकार चक्रने फरवे, तो माटीना पिंडने घटपणे पमाडे, अने नहीं फरवे तो न पमाडे, एटले श्री अरिहंतजी मोक्षना निमित्त कारण तो छे, परंतु जे रीतें आगममध्यें कह्युं छे, ते विधें आशातना टाली, पुद्गलाशंसारहित केवळ ज्ञानादि गुणनो ओळखाणसाहित जो

सेवे, तो मोक्षनो निमित्त कारण थाय, पण अविधें सेवना, ते कामनी नहीं, माटे ग्राहकने विधिसहित कारण ग्रहवुं, तो ते कार्यने करे ॥ २ इति द्वितीय गाथार्थः ॥

साध्य साध्य धर्म जेमांहे होवे रे,
ते निमित्त अति पुष्ट ॥
पुष्प मांहे तिलवासक वासना रे,
नवि प्रध्वंसक दुष्ट ॥ उ० ॥ ३ ॥

अर्थः—हवे पुष्ट निमित्तनुं स्वरूप कहे छे. साध्य केतां करवा योग्य जे कार्यधर्म, ते जे कारणमां होय, ते तेनुं पुष्ट कारण कहीये. ते पुष्ट कारण विधियें कार्य करवाने अर्थे ग्रह्यो थको कार्यने करे, पण ते कार्यनो ध्वंसक न थाय, तेनो दृष्टांत कहे छे. जेम तेल ने फु-

गंधवासना करवारूप कार्य, तेनुं कारण पुष्प छे, परंतु वासना करवी ते साध्य छे, ते वासना फुलमध्ये छे अने ते फुल ते तेल तथा तेलनी वासनाना ध्वंसक नथी, ते माटे ते पुष्ट निमित्त छे.

॥ उक्तं च विशेषावश्यके ॥

कार्यस्य आसन्ननिमित्त इति तदेव पुष्टं, दूरतरं कारण नैमित्तिकं तत् अपुष्टं ॥ इति ॥

तथा च श्रीसिद्धसेन पूज्यैः ॥

पुष्टहेतुर्जिनेंद्रोयं, मोक्षसद्भाव-साधने इति ॥

तेथी श्रीअरिहंतदेव ते मोक्षरूप का-

યેનો પુષ્ટ નિમિત્ત છે, જે માટે સાધ્ય જે નિ-રાવરણ, પરમાત્માપદ તે શ્રી અરિહંતને વિષે છે, માટેજ શ્રી અરિહંત તે પુષ્ટ નિમિત્ત છે, જો વિધિયે સેવન થાય, તો એથી મોક્ષકાર્ય નિપજે ॥ ૨ ॥ ઇતિ ॥

દંડ દંડ નિમિત્ત
અપુષ્ટ ઘટ તણો રે,
નવિ ઘટતા તસુ માંહ ॥
સાધક સાધક
પ્રધ્વંસકતા અછે રે,
તિણે નહીં નિયત પ્રવાહ ॥ ૭૦ ॥ ૪ ॥

અર્થઃ—હવે અપુષ્ટનિમિત્ત દેખાડે છે. જેમ દંડ તે ઘડાનું અપુષ્ટ નિમિત્ત છે, કારણ કે જેમ ફૂલમાંહે સુગંધવાસના છે, તેમ ઘટતા કેતાં

घटपणुं ते दंडमांहे नथी, कर्त्ताने प्रेरवे कारण छे, ए दंड घटनुं साधक निपजाववानुं कारण पण छे, अने घटनुं प्रध्वंस करवानुं कारण पण छे, जो घट ध्वंसकर्त्ता ते ज दंडने घट ध्वंस करवाने प्रवर्त्तावे तो घट ध्वंस करवानुं कारण पण ते ज दंड थाय, माटे ए नियत प्रवाह केतां निश्चेंथी एक चालनो नथी. जे निश्चें घट करे, ए धर्म एमां नथी, अने श्री अरिहंत परमात्मानुं सेवन ते निश्चे सिद्धतानुं कारण छे. एने सिद्धिकार्यनी रुचें ज सेवे, तेने नियमा सिद्धि निपजे॥४॥इति चतुर्थ गाथार्थ

षट्कारक षट्कारक
ते कारण कार्यनुं रे,
जे कारण स्वाधीन ॥

ते कर्त्ता ते कर्त्ता
सहुकारक ते वस्तु रे,
कर्म ते कारण पोन ॥ उ० ॥५॥

अर्थः– हवे कारणनी पुष्टना कहेवा निमित्तें कारक कहे छे. १ कर्त्ता, २ कर्म, ( कार्य ) ३ करण, ४ संप्रदान, ५ अपादान ६ अधिक रण. ए छ कारक छे, ते हरेक कार्य निपजाववानां कारण छे. जिहां कर्त्ता क्रिया करे, तिहां ए छ कारक जाणवां, इहां आत्माने पोतानुं सिद्धितारूप कार्य तेने करवारूप क्रिया करे, त्यारे ए छ कारक सर्वे होय त्यां कर्त्ता जे आत्मा तेनुं सिद्धरूप कार्य अभेद छे, ते माटे तेनां कारक पण अभेद छे, अने भिन्नकार्यनो कर्त्ता भिन्न होय, तेवारें

कारक पण भिन्न होय, ए नीति छे परंतु निमित्त कारण तो सर्वकार्योमां भिन्नज होय, माटे सिद्धरूप कार्यनुं निमित्त कारण श्रीअरिहंत छे, तेने कारक उपादानपणे सर्व षटोंचे छे. ए नीति छे.

हवे छ कारकमां प्रथम कर्त्ता नामें कारक छे, तेनुं लक्षण कहे छे, जे कार्य निपजवानुं स्वाधीन कारण एटले सर्वकारक तेहने आधीन होय ते कर्त्ता कारक कहीयें, स्वतंत्र कर्त्ता, इति वचनात् ॥

कारणमहवा ठद्धा,

तह्मसंततोत्ति कारणं कत्ता.

॥ श्रीभाष्यसुधांबुधिवाक्यं ॥

सर्व कारक ते कर्त्ताने वशे छे आधीन छे, हवे बीजुं कर्मनामा कारक, ते जे कारणें पुष्ट थाये अने कह्युं थाय, ते कर्मकारक कहीयें.

॥ उक्तं च ॥

कम्मं किरियाकरणं इति ॥

---

कार्य कार्य संकल्पे कारकदशा रे,
छत्तो सत्तो सद्भाव॥ अथवा
तुल्य धर्मने जोयवे रे,
साम्यारोपणे दाव ॥ उ० ॥६॥

अर्थ—इहां कोई पूछशे जे कर्म तो कार्य छे, पण कारण नथी, तेने उत्तर कहे जे कर्त्ताने पहेलां तो कार्यनो संकल्प थाय छे, ते वखतें ते कर्त्ता पहेला संकल्पे कार्यने विचारे,

त्यार पछी कार्य करे, ते माटे कारण कहियें ॥

॥ उक्तं च विशेषावश्यके ॥

सर्वेऽपि बुद्धौ संकल्प कार्यं करोति इति ॥

व्यवहारस्ततो बुद्ध्याद्ध्यवसितस्य कुंभस्य चिकीर्षितो मृन्मयः कुंभस्तदध्यालंबनतया कारणं भवति॥ अथवा स्थासादि काल ते घटकार्यनुं कारण छे, अने कर्त्ताने तो स्थासादि कार्य छे, अथवा जे कार्य निपजाववानुं मृत्तिकादिक मूळ उपादान, तेनां जे कार्यनी स्थिति सत्तायें योग्यतापणे रही छे, ते कार्यपणुं सत्तागत ते प्रागभावी कार्यनुं कारण छे.

॥ उक्तं च ॥

अथवान्न्यो योग्यः स्वरूपलाभ-
स्येति शक्यतत्पादयितुमतः सुकर-
त्वात्कार्यमप्यात्मनः कारणमिष्यते
अवश्यं च कर्मणः कारणत्वमेष्टव्यं
॥ इति ॥

सत्भाव नजीकपणे जे कारण उपादान निमित्ते ते सर्व नजीक करे, कार्यने अर्थे ते कारणनुं सत्भाव छतापणुं ते कार्य बुद्धियें मेलवे, ते माटे कार्यने कारण कहे, अथवा तुल्य धर्मनुं जोवुं, जे मुजने एहवुं कार्य निपजाववुं छे, जेम कोइ आत्मा मोक्ष पूर्णानंद करवाने उद्यमी थयो ते, सिद्धरूप निष्पन्न तत्त्वने जोवे,

अने विचारे जे मने माहरूं एवुं तत्त्व निप-जाववुं छे, एम संकल्प करवो, ते तुल्य धर्म जोइ कार्यनो उद्यम घणो थाय, ते माटे कार्यने पण कारण कहेवुं.

॥ उक्तं च श्रीपूज्यैः किं बहुना ॥

यथा यथायुक्तितो घटते तथा सुधायाः कर्मणः कारणत्वं वाच्यम-न्यथा कर्मणो कारणत्वे करोति इति कारकमिति षण्मां कारकत्वाडुप पत्तिरेव स्यादिति ॥

ए रीते कर्मने विषे कारकपणुं मानवुं, एमज कारकता छे. साध्यनुं आरोपण करवुं ए कर्मने कारकपणुं जाणवुं. ॥ ६ ॥ इति षष्ठ गाथार्थः ॥

अतिशय अतिशय कारण,
कारक करणता रे;
निमित्त अने उपादान,
संप्रदान संप्रदान कारण;
पद भव नथी रे,
कारण व्यय अपादान ॥ ज० ॥७॥

अर्थ—अतिशय उत्कृष्टपणे जे कारण ते करणनामा त्रीजुं कारक कहियें, तेना बे भेद छे. एक निमित्त कारण, बीजुं उपादान कारण. ते आत्माना सत्ता धर्मनुं निमित्त कारण श्री अरिहंतादिक अने कारणपदनुं भवन थयुं एटले उपादान अधिक अधिक करणता पामे, ते कारणपर्यायनो लाभ,ते संप्रदानपणुं जाणवुं,

जे उपादान कारणमां नवुं नवुं कारण पर्याय पामे ते चोथुं संप्रदान कारक कहिये, अथवा कार्यना नवा नवा पर्यायनुं प्रगट थवुं, ते संप्रदान कहियें. एटले कार्यपदनुं भवन ते संप्रदान कहियें, अने पाछला कारण पर्यायनो व्यय कहेतां विनाश ते अपादान पांचमुं कारक कहियें जीर्ण कारणपर्यायनो नाश नव्य कारणतानुं निपजवुं, ते रीतें कार्यनी निष्पत्ति छे ॥ ७ ॥ इति सप्तम गाथार्थः ॥

भवन भवन व्यय
विणु कारज नवि होवे रे,
जिम दृषदे न घटत्व ॥
शुद्धाधार स्वगुणाधार,

सुगुणना द्रव्य छे रे,

सत्ताधार सुतत्त्व ॥ उ० ॥ ७ ॥

अर्थ—कोइ कहेशे जे संप्रदान तथा अपादान तेने शी कारणता छे? तेने उत्तर कहे छे. जे भवन केतां नवा पर्यायनुं थवुं, व्यय केतां पूर्व पर्यायनो नाश, ए थया विना कार्य निपजे नहीं, जेम माटीनो पिंड, ते पिंडपर्यायनो व्यय, स्थासपर्यायनुं भवन तथा स्थासपर्यायनो व्यय कोशपर्यायनुं भवन, कोशपर्यायनो व्यय, कुशळ, पर्यायनुं भवन, कुशल पर्यायनो व्यय, कपाळ पर्यायनुं भवन, कपाळ पर्यायनो व्यय, घटपर्यायनुं भवन, ए रीतें कार्यनी उत्पत्ति छे, तेम सिद्धताने नीपजाववाने विषे पण मिथ्यात्वपर्यायनो व्यय, सम्यक् पर्यायनुं

भवन, तेना साधकपर्यायनो जीर्णनो व्यय, नवानो उत्पाद, ए रीतें कार्यनी निष्पत्ति छे. परंतु भवन तथा व्यय विना कार्य थाय नहीं, जेम दृषदने विषे घटपणुं न थाय, यद्यपि कर्त्ता चक्रादिक व्यापार करे, तो पण दृषद (पाषाणनो ) घट न थाय, श्या माटे जे दृषद (पाषाणने) विषे स्थासादि घटपर्यायनुं भवन व्ययपणुं नथी, तेमाटे निपजे नहीं.

हवे छट्ठं आधारकारक कहे छे. स्वगुण जे ज्ञानादिक तेनो शुद्ध आधार द्रव्यपदार्थ छे, एटले जीव, द्रव्य, ज्ञान, दर्शन, चारित्र दान, लाभ, भोग उपभोग, अव्याबाध, अमूर्त्तता अगुरुलघुता, अखंडता, निर्मलता, कर्तृता, पारिणामिकतादि मूलगुण, सर्वनो आधार जीवद्रव्य छे, एम धर्मास्तिकायादि सर्व द्रव्य

पोतपोताना गुणना आधारे छे, तेथी धर्मास्तिकायने आधार नामें कारक कह्यो? एम कोइ पूछे, तेने उत्तर. जे धर्मास्तिकायने गुणधारीपणुं छे, परंतु कर्तृत्वपणुं नथी, ते माटे कारकपणुं न गवेष्युं, शुद्धतत्त्वने सत्तानो आधार छे, सत्ता ते आत्मानो मूलधर्म जे निराश्रय, तेनो आधार स्वतत्त्व छे ॥ ८ ॥ इति अष्टम गाथार्थः ॥

आतम आतम कर्ता कार्य सिधतारे,
तसु साधन जिनराज ॥
प्रभु दीठे प्रभु दीठे
कारज रुचि ऊपजे रे,
प्रगटे आत्मसमाज ॥ ऊ ॥ ए ॥

अर्थः—हवे उपनय कहे छे. आत्मा स्वरूपरुचि, भवोद्वेगचि, मोक्षाभिलाषी सम्यक्दर्शन गुण प्रगट, जे स्वरूपनुं कर्त्तापणुं विरतिपणुं तत्त्व ध्यान, तत्त्वतन्मयता दिकने करवे कर्त्ता छे. एटले तत्त्वार्थी आत्मा, कर्त्ता, कार्यसिद्धता, सकलगुणप्रगटतापणुं, निःकर्मावस्था, तेनुं साधन निमित्त कारण श्री जिनराज सर्वज्ञ छे, जे कारण प्रभु श्री परमात्मा दीठे यथार्थ भासन थाय, कार्यनी स्वसत्ता प्राग्भावभोगीपणानो रुचि उपजावे, ते रुचि संपूर्णसिद्धतानुं मुख्य कारण छे, ते रुचि वधती साधनभाव, ध्यानावस्थावलंबीने पूर्णनंदता निपजावे, आत्मानो समाज केतां साम्राज समगटे, तेथी मोक्षनो कर्त्ता आत्मा खरो पण मोक्षनी रुचि विनानुं कर्त्तापणुं प्रगट नहीं, अने ते रुचि

श्री अरिहंतदेवने दीठे निपजे, माटे श्री अरिहंतनुं दर्शन, ते रुचिनुं कारण छे, अने रुचि ते मोक्षनुं कारण छे. एवां रीतें मोक्षरूप कार्यनुं मूलकारण श्री अरिहंतज छे, ते माटे मारे मोक्ष निपजे, ए उपकारतत्त्वाहितना करनार श्री अरिहंतनो जाणुं ॥ ९ ॥ इति नवम गाथार्थः ॥

वंदन वंदन नमन सेवन
वली पूजना रे,
स्मरण स्तवन वली ध्यान ॥
देवचंद्र देवचंद्र कीजे
जगदीशनुं रे,
प्रगटे पूर्ण निधान ॥ उ ॥१०॥

अर्थः—ते माटे वंदना केतां कर जोडन, नमन केतां शीश नमाववारूप, सेवना ते आज्ञा मानवारूप, वली पूजना ते पुष्पादिकनी, तथा स्मरण ते वारंवार गुणनुं संभारवुं, स्तवन ते वचनें करी गुणनुं कथन, हर्षथी करवुं, तथा ध्यान ते प्रभुगुणें चित्तनी एकाग्रतानुं करवुं, एटला सर्व उपाय छे, ते सर्व देवचंद्र स्तुतिकर्त्ता ते पोताने कहे छे जे वंदनादिक कर्त्तव्य कीजें, श्री जगदीशनी त्रैलोक्यदयालनी ते करतां सेवा प्रगट केतां प्रकाश पामे, पूर्ण निधान, अनंतगुण, आत्मशक्ति, परमानंदरूप निधान प्रगटे, एटले श्रीजिनराज परमात्मानी सेवा करतां पोतानी पूर्ण परमात्मता निपजे, अविनाशी धन प्रकाश पामे, ए श्री मुनिसुव्रत

देवाधिदेवनो परम उपगार छे ॥ १० ॥
॥ इति श्री मुनिसुव्रतजिन स्तवन
संपूर्ण ॥ २० ॥

---

## ॥ अथ एकविंशति श्रीनमिनाथ-
## जिन स्तवन ॥

॥ पीछोलारी पाल उभा दोय राजवी रे
॥ ए० ॥ देशी ॥

श्रीनमि जिनवर सेव,
घनाघन उनम्यो रे ॥ घ० ॥
दिठां मिथ्या रोर,
भविक चित्तथी गम्यो रे ॥भ०॥
शुचि आचरणारीति ते,
ते वीज ऊबूकडा रे ॥ ते० ॥१॥

अर्थः—हवे एकवीशमा जिनराज परमोपकारी तेना गुण स्तवे छे. उपगारसंपदाए करीने श्री नेमिनाथजिन जे अकषायी, तमांहे वर केतां प्रधान, वीतराग, परमज्ञानी, परमात्मा, शुद्धस्वरूपभोगी, चिदानंदघन, निर्विकारी देवने ओलखवुं तथा तेनो योग मलवो, घणोज दुर्लभ छे ॥

उक्तं च ॥ इंदत्तं चक्कित्तं, सुरमणि कप्पदुमस्स कोडीणं ॥ लाभा सुलहो डुलहो, दसणा तिहुनाहस्स ॥ १ ॥

ते माटे श्री जिनेश्वरनुं दर्शन दुःमाप्य छे, ते संसारचक्रमां मुजित जीव, स्वतत्त्वथी रहित

दीन रंकभूतने जिनसेवना किहांथी मळे ? ते कोइक पुण्यानुबंधी पुण्यना उदयथी, जीवने जिनसेवना प्रगटी, ते जीव हर्षथी कहे छे, जे श्री नमिजिनवरनुं सेवन, तेज घनाघन केतां मेह उनम्यो.

जेम मेह चारे दिसाथी चडी आवे, तेम मनें, वचन, कायायें, अध्यात्म परिणतियें श्री नमिप्रभुनो बहुमान नमन गुणना अद्भुतता एटले प्रभुयोग मळ्यानी आश्चर्यता प्रगटी, ते चारें दिशिना मेहरूप जाणवी.

वळी मेह जेवारें चारे तरफथी घटा करी उंचो आवे, तेवारें लोकना मनमां दुष्काळना भय होय ते जाय, तेम इहां श्री अरिहंतसेवना-रूप मेघ जेवारें प्रगटे, तेवारे अनादिकाळनो

मिथ्यात्वरूप जे रौरव केतां दुष्काळ हतो, ते भविकजीवोना चित्तथी गम्यो केतां टळी गयो, ए लाभ थयो.

मेघने विषे जेम मोटां वादलां वधे, तेम ए प्रभुभक्तिरूप मेघने विषे शुचि केतां पवित्र, अविधिरहित, आशातना रहित पुद्गल आशंसा-रहित, एवी भली आचरणा जीवने थाय, तेहीज अभ्रपटल केतां वादलांना समूह वधे, केतां महोटा थाय, एटले रूपी उपमा घटे.

मेहमां विजळीना झबकारा घणा होय, तेम इहां प्रभुसेवना करतां आपणा आत्मानी परिणति शुद्ध थाय, गुणी शुद्धतत्त्वोना सेवनने अनुयायी थाय, तेहीज विजळीना झबुका जाणवा ॥ १ ॥ इति प्रथम गाथार्थः ॥

वाजे वायु सुवायु,
ते पावन भावना रे ॥ ते० ॥
इंद्रधनुष्य त्रिकयोग,
ते भक्ति एक मना रे ॥ ते० ॥
निर्मल प्रभु स्तव घोष,
ज्युं निःघन गर्जना रे ॥ ज्यु० ॥
तृष्णाग्रीष्म काल,
तापनी तर्जना रे ॥ ता० ॥ २ ॥

अर्थः—मेहमां जेम वायु अनुकूळ होय, तेम ए जिनभक्तिरूप मेहने विषे जिनगुणनी बहुमान सहित जे भाववा भाववी तेहीज सुवायु थाय छे.

वर्षादमां त्रण रेखा युक्त इंद्रधनुष्य शोभाकारि होय, तेम इहां मन, वचन, कायरूप त्रण योग ते भक्तिने विषे एक मना थया, ते इंद्रधनुष्य छे.

जेम मेहमां गर्जना होय, तेम इहां निर्मळ उज्ज्वल प्रभुना गुण तेमनी जे स्तवना ध्वनि शब्द तेहीज घन केतां मेहनी गर्जना जाणवी.

मेहथी ग्रीष्म उष्णकालना ताप टळे, तेम इहां प्रभुसेवनथी तृष्णा पुद्गल सुखनी पीपासानो जे अंतरंग ताप होय, ते टले एटले आत्माने आत्म सुखनी ईहायें पर जे तृष्णारूप ग्रीष्म कालनो महाताप, ते मटे ॥ २ ॥

शुक्ल लेश्यानी श्रालि,

ते बग पंक्ति बनी रे ॥ ते० ॥

श्रेणीसरोवर हंस,

वसे शुचि गुण मुनि रे ॥ व० ॥

चौगति मारगबंध,

भविक निज घर रह्या रे ॥भ०॥

चेतन समता संग,

रंगमें ऊमह्या रे ॥ रे० ॥ रं० ॥३॥

अर्थः—जेम मेहमां सरोवरे बगपंक्ति होय, तेम इहां प्रशस्त शुभलेश्या जे पद्म शुक्लेश्याना परिणाम एवी लेश्या शुभनी उज्ज्वलता ते भेद ज्ञानरूप सरोवरे बगपंक्ति छे.

वर्षादमां हंसपंखी सरोवरें वसे, तेम जिनभक्तिना योगें हंसपक्षी जेहवा मुनिराज ते

ध्यानारूढ थइ उपशम तथा क्षपकरूप श्रेणीयें जइ वसे.

जेम वर्षादथी चार दिशिना मार्ग बंध थाय, तेम इहां जिनभक्तिना योगें चार गतिनो मार्ग बंध थाय एटले साचा मनथी जे प्रभुसेवन करे, ते चार गतिना भ्रमणने टाळे.

वर्षाकाळें सर्वलोक पोत नें घरे रहे, तेम इहां पण अनादिनो उद्धत परभावाभिलाषी आत्मा ते अनेक विषय विकाररूप भावमां रहेतो हतो, तेने श्री निःकर्मदेवने निमित्तें स्वरूपनी प्राप्ति थइ, चेतनसमताने संगे रंगे केतां रीझ करीने ऊमह्यो थको समतामां रमी रहे, स्वात्मस्वभावमां अनुभव रंगें रमी रहे ॥ ३ ॥ इति तृतीय गाथार्थः ॥

सम्यग्दृष्टि मोर,

तिहां हरखें घणुं रे ॥ ति० ॥

देखी अद्भुत रूप,

परम जिनवर तणुं रे ॥ प० ॥

प्रभुगुणनो उपदेश,

ते जलधारा वही रे ॥ ते० ॥

धर्मरुचि चित्त भूमि,

मांहे निश्चल रही रे ॥मां०॥ ४ ॥

अर्थः—जिनभक्तिरूप मेह देखीने सम्य ग्दृष्टि तत्त्वरुचिरूप मोर तेने अत्यंत हर्ष आनंद उपजे, श्रीतीर्थंकर देवनुं रूप केवुं छे? जो अत्यंत परमोत्कृष्टरूप सर्व देवता मळीने विकुर्वे, तो पण श्री अरिहंतना पगना

अंगुठा समानरूप करी शके नहीं, एवुं परमशीतल निर्विकारी परमेश्वरनुं रूप देखीने सम्यक्दृष्टि जीव वर्षाकालना मोरनी परें हर्ष आनंद पामे.

प्रभु श्री तीर्थंकर देव, तेनी भक्तिमां परिणम्या, एवा तत्त्वरुचि जीव, ते पोताना वचन उच्चार करीने प्रभुना गुणग्राम करे, ते प्रभुगुणगानरूप मेघनी जळधारा वहीने ते जलधारा धर्मरुचि जीवना चित्तरूप भूमिका मांहे निश्चळ रहे, एटले तत्त्वरुचिवंत जीवना चित्तमां प्रभुना गुण समाइ रहे ॥ ४ ॥

चातक श्रमण समूह,
करे तव पारणो रे ॥ क० ॥
अनुभव रस आस्वाद,

सकल दुःख वारणो रे ॥ स० ॥
अशुभाचार निवारण,
तृण अंकूरता रे ॥ तृ० ॥
विरति तणा परिणाम,
ते बीजनो पूरता रे ॥ ते० ॥५॥

अर्थ-प्रभुसेवनरूप जलधारा वरसतां श्रमण निर्ग्रंथ तत्त्वरमणी माहामुनि तद्रुप जे चातक ते पारणुं करे छे, एटले सम्यग्दर्शन कालें तत्त्वस्व रूपं पोताना अनुभवनी पीपासा थइ हती, ते पीपासा श्री जिन भक्ति रूप कारण पामीने आत्मस्वरूपनुं यथार्थ ज्ञान ते रूप अनुभव तेहना रसनुं आस्वादन केतां भोगववा पणुं ते रूप पारणुं करे, पण ए पारणुं कहेवुंछे? जे सकल सांसारिक विभाव जे कर्मभार ऊप्रता

गुणावरणतादिक तेनो वारणो नेतां वारणहार छे, एटले तद्रूपदुःखनुं निवारण करे छे.

हवे वर्षाकालें नीळां तृण ऊगे, तेम जिनभक्तिरूप मेहमांहे पण जडता रूप अशुभ आचारनुं निवारण थयुं, एटले चेतन्य गुणनि प्रगटता रूप तृणना नीळा अंकूर प्रगटया.

वर्षाकाले कर्षणी लोक धरतीमां बीज वावे, तेम इहां आश्रवथी विरमवारूप विरतिना परिणाम उपना, तेहीज बीजनी पूर्णता थइ

पंच महाव्रत धान्य,
तणां कर्षण वध्यां रे ॥ त० ॥
साध्यभाव निज थापी,
साधनतायें सध्या रे ॥ सा० ॥
क्षायिक दरिसण ज्ञान,

चरणगुण उपना रे ॥ च० ॥
आदिक बहुगुण सस्य,
आतम घर नोपना रे ॥आ०॥६॥

अर्थः—वर्षाकालमां जे बीज वाव्यां होय ते ऊगीने वधे, इहां द्रव्य तथा भावथी पांच माहाव्रत.

" सव्वाउ पाणाइवायाउ विरमणं "

इत्यादिक धान्य ऊगीने उत्सर्गावलंबी माहाव्रत ते निरतिचार थया, तेहीज ध्याननां कर्षण वृद्धि पाम्यां, पण साध्यभाव केरां साध्यपणुं निज केतां पोतानो आत्मभाव ते साध्यपणे थापीने साधन कार्य निपजाववानी शक्ति तेपणे सध्या, एटले साधनरूप थया. भावार्थ जे आत्मानी सत्ता संपूर्ण प्रागभाव करवी

एहवा साध्य धारीने, माहाव्रत परिणतिरूप साधनायें परिणम्या, क्षायकनिरावरण, संपूर्ण केवलज्ञान, केवलदर्शन, यथाख्यात चारित्र प्रमुख गुण ऊपना प्रगट थया. इत्यादिक स्वगुणनी अनंतता तेज सत्य कर्ता धान्य ते, जेनो आत्मा जिनसेवननयी थयो हतो, तेना घरे नीपना, आतम प्रदेश सर्व ज्ञान, दर्शन, चारित्रनी पूर्णता पाम्या ॥६॥इति षष्ठ गाथार्थ ॥

प्रभुदरिसण महा मेह,
तणे प्रवेशमें रे ॥ त० ॥
परमानंद सुभक्ष,
थया मुझ देशमें रे ॥थ०॥
देवचंद्र जिनचंद,
तणो अनुभव करो रे ॥ त० ॥

**सादि अनंतो काल,**

**आतममुख अनुसरो रे ॥आ०॥७॥**

अर्थः—एवा एकवीशमा जिनेंद्र श्री नमिनाथ, परम दयालु, गुण समुद्र, जगत्रजीवना भावभास्कर, कर्मरोगना महावैद्य, तेनु जे दर्शन केतां मुद्रानुं जोवुं अथवा शासन, अथवा दर्शन शब्दें समकित, तेहीज महावर्षाद तेने प्रवेशें केतां पेसवे करीने परमानंद आत्मिक आनंदरूप सुभक्ष केतां सुकाळ थयो, म्हारा देश केतां असंख्यात प्रदेशरूप क्षेत्रने विषे. तेमाटे देवमांहे चंद्रमा समान अथवा देवचंद्र जे स्तुतिकर्त्ता तेनुं संबोधन हे देवचंद्र ! श्री जिनचंद्र श्री वीतराग, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, तेना अनुभव गुणज्ञानादिनुं आस्वादन करो, तेनाज गुण बहुमानमांहे लीन रहो,

तो थोडा काळमां सादि केतां जेनी आदि छे, परंतु अनंत केतां छेडो नथी, एहवुं जे अविनाशी आत्मिक सुख, तेने अनुसरो केतां पामो, एटले अहो भव्यजीवो ! तुमें श्री निर्मळानंदी संपूर्ण स्वरूपभोगी, एवा श्री जिनेश्वर तेना गुणनुं बहुमान तथा तेनी आज्ञानुं मानवुं, ते मध्ये रहो, तो संपूर्णसिद्ध अविनाशी, अक्षयआत्मिक, अनंत संपदा पामो, स्वसंपदा प्रगट करवानो ए नियमा पुष्ट उपाय छे ॥ ७ ॥

॥ इति श्री नमिनाथजिन स्तवनं संपूर्ण ॥

## ॥ अथ द्वाविंश श्रीनेमिनाथजिन स्तवनं ॥

॥ पद्मप्रभाजिन जइ अलगा वस्या ॥ ए देशी ॥

नेमि जिनेसर निज कारज करयुं,
छांड्यो सर्व विभावो जी ॥
आतमशक्ति सकल प्रगट करी,
आस्वाद्यो निज भावो जी ॥ न०

अर्थः—हवे बावीशमा श्रीनेमिनाथ भगवाननी स्तुति करे छे. जादवकुलमां तिलक समान, महाउपकारी, एवा श्रीनेमिनाथ जिनेश्वरें निज केतां पोतानुं कार्य करयुं, क्यांही पण आत्माने खरडवा दीधो नहीं, छांड्यो केतां तज्यो, सर्व केतां सकल चार निक्षेपे

विभाव ते अंतरंग तथा बाह्य कारणथी सर्व विभाव तज्यो, आत्मानी शक्ति असंख्यात प्रदेशने विषे जे अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत चारित्र, अनंत सुख, अनंत अगुरुलघु, अनंत दान, अनंत लाभ, अनंत भोग, अनंत उपभोग, अनंत वीर्य, अवर्ण, अगंध, अरस, अस्पर्श, परम असंगता, अयोगीतारूप पोतानुं प्रभुत्व, विभुत्व, कारणत्व, कार्यत्व, व्यापकत्व, नित्यत्व, अनित्यत्व, अस्तित्व, नास्तित्व, भेदत्व, अभेदत्व, कारकत्व, पारिणामिकत्व, सत्व, प्रमेयत्व, द्रव्यत्व, ईश्वरत्व, सिद्धत्व, अखंडत्व, अलिप्तत्वादि ते उत्सर्ग आत्मसमाधिरूप सर्व शक्ति प्रगट करी, वळी ते निरावरण आत्मधर्म तेने आस्वाद्यो, स्वरूपभोक्तृत्वपणे निजभाव केतां पोताना भा-

वपणे श्रीनेमिनाथ प्रभुयें भोगव्यो ॥ १ ॥

राजुलनारी रे सारी मति धरी,
अवलंब्या अरिहंतो जी ॥
उत्तमसंगें रे उत्तमता वधे,
सधे आनंद अनंतो जी ॥नेo॥२॥

अर्थः—वली राजीमतिस्त्रीयें पण रूडी मति अंगीकार करी, सर्व परिग्रहना संगनो त्याग करीने श्री अरिहंत देव उपर अरिहंतनो राग धरी उपगारीपणे गुणीने आदरे अविलं-ब्या एटले भर्त्तारपणानो अशुद्ध राग टाली देवतत्त्वने राग आदर्या, एम विचार्युं जे उत्तमने संगे उत्तमता वधे, एटले चारित्रवंत सर्वज्ञ श्रीनेमीश्वर भगवान् ते सर्वोत्तम छे तो एना संगथी म्हारी पण उत्तमता एटले सिद्धता

पूर्णात्मता वधे, वली सधे केतां नीपजे, आनंद केतां आत्यंतिक, एकांतिक, निर्द्वंद्व, निरामय सुख थाय. ते माटे तेहीज करवुं घटे, एम सर्वे भव्य जीवोयें विचारवुं ॥ २ ॥ इति द्वितीय गाथार्थः ॥

**धर्म अधर्म आकाश अचेतना,**
**ते विजाति अग्राह्यो जी ॥**
**पुद्गल ग्रहवे रे कर्मकलंकता,**
**वाधे बाधक बाह्यो जी ॥ने०॥३॥**

अर्थः—हवे राजीमतीयें जे विचार्युं, ते कहे छे. सर्व लोकमां पंचास्तिकाय छे, अने काल ते छतो रूप द्रव्य नथी, श्री भाष्यकार तथा अनुयोग द्वारसूत्र जोतां उपचारद्रव्य छे. वली पंचास्तिकायमां धर्मास्तिकाय, अधर्मा-

स्तिकाय अने आकाशास्तिकाय, ए त्रण द्रव्य अचेतन छे, तथा विजाति छे, वळी जीवद्रव्यनी ए जाति नहीं. माटे अग्राह्य छे, ते अपरिणामी पणा तथा अचलपणा माटे जीवथी ग्रहवाय नहीं, ते माटे एथी पण मारे काम नहीं, तथा पुद्गल द्रव्य साथे चिरकालनो परिचय छे, तेने जो ग्रहीयें, तो पुद्गल जडद्रव्यने ग्रहवे आत्माने नवां कर्म बंधाय, अने आत्मा कलंकसहित थाय, अने बाधकभावता, परकर्तृता, स्वगुणरोधकता, चेतनादि गुणना विपर्यासता वाधे केतां वृद्धि पामे, तेमाटे पुद्गलने लेतां, अनंतो काळ थयो, पण आत्महित थयुं नहीं, ते माटे ए पुद्गलना संगथी बाह्यभीड वधे, माटे उत्तम जीव एने ग्रहे नहीं, एम राजुलें विचार्युं, जे एने पण ग्रहवुं नहीं, के-

मके एना ग्राहक तो अनंता जीव पडवाइथैने निगोदमध्यें पडया छे ॥ ३ ॥ इति तृतीय गाथार्थः ॥

रागीसंगे रे रागदशा वधे,
थाए तिणे संसारो जी ॥
नीरागीथीरे रागनुं जोडवुं,
लहिए भवनो पारो जी ॥ ने० ॥ ४ ॥

अर्थः—हवे पांचमुं जीवद्रव्य ते अनेक आत्मा छे, वली स्वजाति पण छे, माटे तेहने ग्रही राग करीयें, परंतु एक अवगुण एहमां पण दीठो, ते कहे छे जे संसारी जीव तो राग द्वेष संयुक्त छे, माटे तेहना संग कीधे तो आपणने पण राग दशा वधे, अने रागदशा तो अभिनवबंधनो हेतु छे, अरिहंतदेवना आ-

गम जोतां अने आत्मधर्म जोतां, राग तो त-
जवा योग्य छे, रागथी चार गतिरूप संसार
थाए वधे, माटे ए पण आत्महित नहीं, ते माटे
नीरागी, वीतराग, परमचारित्री, सर्वपरभाव-
त्यागीथी, जो राग जोडीयें, तो भवनो पार
पामीयें, यद्यपि क्षय तो रागनोज करवो छे,
पण प्रथम राग पलटाववानो ए उपाय छे. जे
नीरागीथी राग जोडीयें, एटले ते नीरागी राग
करे नही, तेथी अनुक्रमे ए आपणो राग पण
क्षय पामे, तेवारें ए आत्मा वीतरागभाव भजे
॥ ४ ॥ इति चतुर्थ गाथार्थः ॥

**अप्रशस्तता रे टाली प्रशस्तता,**
**करतां आश्रव नासे जी ॥**

संवर वाधे रे साधे निर्जरा,
आतमभाव प्रकास जी ॥ने०॥५॥

अर्थः—ते माटे कामरूप जे अप्रशस्त राग हतो, ते टाली अरिहंतपणा रूप प्रशस्त छे, ते साधनकालें कामनो छे, ते प्रशस्त राग करतां अनुक्रमे आश्रव नाश पामे, नवा कर्म लेवा रूप अशुद्ध परिणति टले, वली प्रशस्त-रागी जीव, ते गुणीने अवलंब्यो रहे, तेथी स्वगुणनी एकत्वता वधे, ते स्वगुण एकत्वता परिणामथी संवर परिणति वधे, अने पूर्वकृत कर्मना निर्ज्जरा परीसाटरूप ते पण सधे कतां नीपजे. ते संवर निर्ज्जराने प्रगटवे आत्मानो भावधर्म, अरूपीशक्ति प्रकाश पामे, निरावरण थाय ॥ ५ ॥ इति पंचम गाथार्थः ॥

नेमिप्रभु ध्याने रे एकत्वता,
निजतत्त्वें एक तानो जे ॥
शुक्लध्यानें रे साधि सुसिद्धिता
लहिये मुक्ति निदानो जी॥नेο॥६॥

अर्थः—राजीमतीजी एम विचारीने श्री नेमिपरमेश्वरनेज अवलंब्यां, केम के नेमिप्रभुने ध्यानें एकत्वता तन्मय करवे करीने निज केतां पोताना तत्त्वें आत्मस्वरूपें एकतान केतां एकत्वपणुं नीपजे, ते जेवारें स्वरूपें एकत्वपणुं पामे, तेवारें शुक्लध्यान प्रगटे जे स्वरूप एकत्वपणुं तेज शुक्लध्यान छे, ते शुक्लध्यानें करी पोतानी साध्यता साधी केतां नीपजावीने तेथी मुक्ति जे सकल कर्मरहितपणुं तेहनुं निदान केतां मूळकारण लहीयें, केतां पामीये ॥ ६ ॥

अगम अरूपी रे अलख अगोचरु,
परमातम परमीशो जी ॥
देवचंद्र जिनवरनी सेवना,
करतां वाधे जगीशो जी ॥ने०॥७॥

अर्थः—ते माटे सर्व भव्य आत्मार्थी अध्यात्म सुखरुचि एवुं तत्त्व सेवे, ते कहे छे. अगम केतां जेनुं गम्य नहीं, अथवा जेमांहे अजाण जीवथी प्रवेश थाय नहीं, वली जेनुं रूप, गंध, वर्ण, रस, संस्थान नहीं, ते माटे अरूपी, तथा अलख केतां पुद्गलाभिलाषी, एकांतवादी, एवा नैय्यायिक, वैदांतिक, सांख्य, मैमांसिक, वैशेषिक, बौद्ध, नास्तिक, तथा जे एकांत द्रव्यद्यार्थिक पक्षग्राही एवा जैन-

लिंगी इत्यादिकथी लखाय नहीं, एटले ओळखाय नहीं, वळी अगोचर केनां इंद्रियगोचर नहीं, अतींद्रिय पदार्थ ते अतीद्रियस्याद्वादज्ञानें सापेक्ष उपयोग ध्याननी धारणायेंज गोचर छे, वळी परमोत्कृष्ट सर्व विभाव रहित, अनंत गुणप्राग्भावरूप आत्मा छे, वळी परमीश केतां उत्कृष्ट अविनाशी सहज अनंतगुण पर्याय धर्मना ईश्वर छे. वळी नरदेव ते चक्रवर्ती, भावदेव ते भुवनपति, व्यंतर, ज्योतिषी, वैमानिक, ए चार निकायना देवता, तथा धर्मदेव ते मुनिराज, जिनकल्पी स्थवीरकल्पी, पडिहारविसुद्धि, पडिमापडिवन्न, सूक्ष्म संपरायी उपशांत मोही, क्षीणमोही, उपाध्याय, श्रुतधर, पूर्वधर, आचार्य, गणधर प्रमुख ते धर्मदेव, ते सर्व मध्यें चंद्रमा समान, नायक, शासनना प-

ति, मार्गदेशक, एहवा जे जिनवर तेनी सेवना आज्ञा मानवारूप करतां थकां वाधे केतां वृद्धि पामे, साधकसंपदा, तथा सिद्धतारूप संपदा, तेथी श्री तीर्थंकर तीर्थपतिनी सेवना ते परम प्रधान छे. द्रव्यथी वंदन नमनादिक अने भावथी: गुणनुं बहुमान, आत्मप्रमाणता रूप सेवा करतां अनंता सिद्ध थया, वळी अनंता सिद्ध थशे, एज मोक्षसुखनो उपाय छे ॥ ७ ॥

॥ इति श्री नेमिनाथजिन स्तवन संपूर्ण ॥ २२ ॥

## ॥ अथ त्रयोविंश श्रीपार्श्वनाथ जिन स्तवन ॥

॥ कडखानी देशी ॥

सहजगुण आगरो
स्वामी सुखसागरो,
ज्ञानवैरागरोप्रभु सवायो ॥
शुद्धता एकता तीक्ष्णताभावथो,
मोहरिपुजिति जय पडहवायो॥१॥

अर्थः—हवे त्रेवीशमा श्री पार्श्वनाथ पुरषादानी परमेश्वरनी स्तुति करे छे. श्री पार्श्वनाथ प्रभुजी केवा छे? सहज अकृत्रिम वस्तुना मूळ धर्म ज्ञानानंदादिक तेना आगर छे,

अनंत आत्मगुण उपजवाना धाम छे, स्वामी केतां स्वसंपदाना अधिपति छे, सुखना सागर छे, एटले जे अतींद्रिय, स्वाधीन, निरामय, निःप्रयास, अविनाशी सुख तेना समुद्र छे, निःसंग सुखना पात्र छे, केवलज्ञानरूप वयर केतां वज्र ते हीरो तेना आगर छे, सदा सर्वदा प्रभु तुमें सवाया छो, ए श्री पार्श्वनाथ स्वामीनी शुद्धता, ज्ञानना यथार्थता, निर्मलता, एकता, ते चारित्रता स्वरूप तन्मयता, तीक्ष्णता, ते वीर्यनी तीव्रता, वीर्यनी तीक्ष्णता ते धारा छे, अने चारित्रनी एकता ते पुंठळथी प्रेरणा छे, तथा ज्ञान ते प्रकाश देखाडणहार छे, तेमाटे ए मल्येज मोक्ष छे. कोइ कहेशे जे सम्यक्‌दर्शन कां न कह्युं ? तेने उत्तर. जे ज्ञान ते दर्शनयुक्तनेज कहे छे, एटले ज्ञानमध्ये

दर्शननुं एकपणुं छे, तथा तप ते वीर्यनी तीक्ष्णता कही छे.

उक्तं च आवस्यकनिर्युक्तौ ॥

नाणं पयास गंसो, हंगो उ तवो संयमो उ गुत्तिकरो ॥ तिण्हं-वि समाउंगो, मोक्को जिण सासणे न्नणीउं ॥ १ ॥

एटले शुद्धता, एकता, तीक्ष्णताथी मोहरिपुने जीतीने अर्थात् ज्ञान, चारित्र, तथा तपना बळ मोहादिक कर्मने हणीने; जयना पडहो वजाव्यो ॥ १ ॥ इति प्रथम गाथार्थः ॥

वस्तु निजभाव

अविनास निकलंकता,

परिणति वृत्तिता करी अन्नेदें ॥
नाव तादात्म्यता शक्ति उल्लासथी,
संतति योगने तुं उच्छेदे ॥स०॥१॥

अर्थः—हवे शुद्धतादिकनुं स्वरूप कहेछे. वस्तु जे जीवादिक छे द्रव्य तेना जे निज केतां पोताना भाव ते गुणपर्यायरूप उत्पाद, व्यय परिणातिनो अविभास केतां जाणवुं, ते पण निकलंक एटले एकांतता अय थार्थता उन्नता अधिकता रहित सम्यग्ज्ञान तेने शुद्धता कही जें, तथा परिणाति जे जीव-नो शुद्ध मूळपरिणाम ते स्वरूपने विषे एकत्व पणुं परभावमां पेसे नहीं, ए आत्मानी परि-णाति छे. अने संसारी जीवने विभाव रंगी ने ते मूळपरिणाति तो चारित्र मोहनीयं आवृत्त

छे, तेणें करीने वृत्ति जे प्रवृत्ति ते रागी द्वेषी पुद्गलभोगीपणें प्रवृत्ति रही छे, ते प्रवृत्ति तजीने शुद्ध स्वरूपरमणी करी, ते प्रवृत्ति तथा परिणति बेहुनुं एकज प्रवर्त्तन थयुं, जे परिणति तेज प्रवृत्ति रही, पण औपाधिक प्रवृत्तिनो अंश पण रह्यो नथी. ते माटे परिणति तथा प्रवृत्ति बेहु एकपणे अभेदें करी तेने एकता कहीयें. वली भावतादात्म्यता शक्ति केतां जे विभाव ते तज्जन्यता केतां तदुत्पाति संबंधे छे, ज्ञानावरणादि पुद्गल कर्म ते संयोगसंबंधें छे, अने शुद्ध क्षायक वीर्यादिक स्वगुण ते तादात्म्य संबंधे छे, ते तादात्म्य संबंधना जे आत्मिक शक्ति क्षायकवीर्यना उल्लासथी ते आत्मावलें संततियोगमां संतति केतां परंपरानो जे संयोगकर्म संबंध, तेने उच्छेदे, एटले

ज्ञानावरणादि कर्मनी प्रकृति, स्थिति, रस, प्रदेशनो बंध, तेनुं स्थिति प्रमाणें रहेवुं छे, एटले जे कर्मने आत्मप्रदेश साथे संबंध ते असंख्यातो काल उत्कृष्टो सित्तेर कोडाकोडी सागरोपमनो छे, परंतु एकबंध भोगवतां बीजा स्थितिबंध प्रतिसमय बंधाय छे, वली ते भोगवतां बीजा प्रतिसमय अनेक बंधाय छे, एटले कर्मपुद्गल ते एकसमय बंध तेनो संयोग तो सादि सांत छे, परंतु अभिनवबंधना परंपराये अनादि छे, जेम पिताथी पुत्र, पुत्रथी वली पुत्र, एटले तेनो ते मनुष्य तो पोताना आयुष्य प्रमाण वरते, परंतु संताननी परंपरा अनंती चाले, तेम तेनां तेज कर्म तो स्थिति प्रमाणे रहे, परंतु पूर्वकर्मने भोगववे, नवानो बंध थाय, तेने भोगववे, वली बीजा नवानो

बंध, एम संताननी परंपरायें ए अनादिनो छे, ते संततियोग आत्मवीर्यरूप तीक्ष्णता वळें हे परमेश्वर ! तुं उच्छेदे केतां सर्वथा उच्छेदे करे, एटले ज्ञान, दर्शन, चारित्र, वी-र्यना बळें अनादि कर्मसंबंधने तुमें विनाश करयो ए शक्ति प्रभुजी तुमारामांज छे, बी-जामां नहीं, ए कार्य तमें कर्युं, निवारण थया ॥ २ ॥ इति द्वितीय गाथार्थः ॥

दोष गुण वस्तुनी लखीय यथार्थता,
लही उदासीनता अपरभावें ॥
ध्वंस तज्जन्यता भावकर्त्तापणुं,
परम प्रभु तुं रम्यो निज स्वभावें॥स०

अर्थः—हवे वळी एज शुद्धता, एकता,

तीक्ष्णता ए त्रणेनो अर्थांतर कहे छे. वस्तु जे वस्त्र, धन, वनिता, शीत, आतप, विषादि, तेना दोष ते अशुभ वर्णादिक तथा गुण ते शुभवर्णादिक, तेने लखे केतां जाणे, यथार्थपणे एटले अशुभदोष सहित वस्तुने अशुभ दोषी सहित जाणे अने शुभगुणवंत वस्तुने शुभ जाणे, जड वस्तुने जडपणे जाणे, चेतन वस्तुने चेतनपणे जाणे, ते यथार्थ स्याद्वादपणे जाणे ते उदासीनता कहीयें. अने ते वस्तुने इष्टता, अनिष्टता रहितपणे जाणे, ए शुद्धता कहियें, एवुं उदासीनतापणुं तेने लही केतां पामीने एटले एवुं उदासीनपणुं जे पाम्यो, तेथी एक पोतानो आत्मा असंख्यातप्रदेशी तेने विषे व्याप्य व्यापकभावें रह्या जे गुणपर्याय, तेथी अपर भाव केतां अन्यभावने ए-

टले बीजा अन्य केतां जुदा जे अनंता जीव तथा अनंता पुद्गलादिक अजीव पदार्थ, ते सर्वथी उदासपणे सर्वना अग्राहक अभोगी असंगी थया, ए सर्व चारित्र परिणतिने एकता कहिये अने ध्वंसी केतां उच्छेदीने तज्जन्य ताभावें केतां तदुत्पत्तिभावें जे विभावकर्त्तापणुं तेने छेदीने छेद केतां शक्ति ते तीक्ष्णता जाणवी. ए कार्य करवे हे प्रभुजी ! तूं निज केतां पोताने स्वभावें रम्यो, आत्मस्वभावरमणी थयो ॥ ३ ॥ इति तृतीय गाथार्थः ॥

शुभ अशुभ भाव
अविभास तहकीकता,
शुभ अशुभ भाव
तिहां प्रभु न कीधुं ॥

शुद्धपरिणामता वीर्य कर्त्ता थइ,
परम अक्रियता अमृत पीधुं ॥स०

अर्थः—वली एज त्रिभंगीनो अर्थांतर कहे छे. शुभ केतां प्रशस्त अशुभ केतां अप्रशस्त जे भाव, तेनी जे अवि॰ास केतां ओलखाण, तहकिकता केतां तेने निर्धारें ते शुद्धतापणे ए सर्व तमे जाण्युं, परंतु हे परमेश्वर ! तुमें त्यां रागी द्वेषीपणे शुभ अशुभ भावपणुं कर्युं नहीं, एज एकता, चारित्र धर्मनी अरागी, अद्वेषी, परिणति ते एकता शुद्धनिवारण परिणामता, ते पारिणामिकभावे जे वीर्यगुण, तेना कर्त्ता थइने एटले राग द्वेषने अनुयायीपणे वीर्यनो विकार छे, ते राग द्वेष रहितपणे थये, वीर्य

शुद्ध थाय. तेवारें स्ववीर्यबल पारिणामिककर्त्ता थइने, एटले स्वपरिणामिकताना कर्त्ता थइने परम केतां उत्कृष्ट अक्रियपणारूप अमृतनुं पान तमें कर्युं एटले विभाव कर्तृता तथा साधकरूप कर्तृता तजीने अकंप, अचल, वीर्यपणे हे परमेश्वर ! तमे अक्रिय थया ॥ ४ ॥ इति चतुर्थ गाथार्थः ॥

**शुद्धता प्रभुतणी आत्मभावें रमे,**
**परम परमात्मता तास थाए ॥**
**मिश्रभावें अछे त्रिगुणनी भिन्नता,**
**त्रिगुण एकत्व तुज चरण आए**
**॥ स० ॥ ५ ॥**

अर्थः—एवी शुद्धता, निवारणता, तथा अनंतगुणभोगीपणानी जे प्रभुता, ते आत्मभावें

केतां पोताने आत्मपणे रमे, एटले प्रभुनी प्रभु-
ता तेनो रंगी जे जीव, तेने परम उत्कृष्ट शुद्ध
परमात्मापणुं थाय, मिश्रभाव जे क्षयोपशम
भावें त्रिगुण जे सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र,
तेनी भिन्नता केतां भेदरत्नत्रयी छे, साधक
छे, परंतु सविकल्प छे, ते त्रिगुण जे रत्नत्रयी,
तेनुं जे एकत्व केतां एकपणुं अभेदपणुं ते थाय,
तुज केतां त्हारे चरण यथाख्यात क्षायक
चारित्र आवे, प्रगटे, एटले क्षीणमोहगुणठाणें
एकत्व वितर्क अप्रविचार शुक्लध्यान उपने, जे
दर्शन निर्धाररूप, तथा चारित्र स्थिरतारूप,
ए बे धारा, ज्ञानधाराथी अभेद थई, एटले
प्रथम मिथ्यात्वकालें तो ज्ञान विपर्यासरूपें
हतुं ते सम्यक्दर्शन प्रगटे, यथार्थज्ञान थयुं,
तेवारें ज्ञानस्वरूप रमणी थयो, पछी ते ज्ञान-

स्वरूप रमणी स्थिरता भावने भजे, एम ध्यानारूढ थयो, विकल्प तजतो, पोताना आत्माने तत्त्वपरिणतिमध्ये तन्मयता पमाडतो पछी ज्ञाननुंज रमण, ज्ञाननोज निर्धार, एटले पर्याय भेदें ते मूलगुणें एकत्व पामे, ए अभेद रत्नत्रयीनुं स्वरूप, ध्यानिगम्य छे, परंतु मूलनयें आत्मा ज्ञान, दर्शन, ए बे गुणें सहित छे, एवी आम्नाय छे, शेष निर्धारथिरताए सर्व चेतना गुणनी प्रवृत्ति छे, तेमाटे ए ज्ञानमांहेज स्थिरत्वपरिणति ते अभेदता कहेवी. प्रथम क्षयोपशमी चलवीर्यताए चेतनापर्यायनी प्रवृत्ति असंख्यसमयी हतो, ते भासनप्रवृत्ति पछी क्रमें कारण कार्यमां थिरतापरिणतिए हती, ते क्षीणमोहकालें रोधकने क्षयें समकाल असंख्य-समयी प्रवृत्ति हती ते केवलज्ञान थये निराब-

रणतायें एकसमयी थइ, ए रीतें अभेदता रत्नत्रयी थाय छे. ए श्री भाष्यथी समजवी ॥५॥

उपशम रस भरी सर्व जन शंकरी,
मूर्त्ति जिनराजनी आज भेटी ॥
कारण कार्यनिष्पत्ति श्रद्धान छे,
तेणे भवभ्रमणनी भीड मेटी
॥ स० ॥ ६ ॥

अर्थः—उपशम रस जे कषायनो अभाव, तेथी भरी अने सर्व लोकने शंकरी केतां कल्याणनी करनारी एवी प्रभुनी थापना केतां मूर्त्ति तेनी शांत अचल अस्पृहमुद्रा, ते आज भेटी केतां नमस्काररूपें सेवी. हवे कारणें कार्य निपजे, एवी श्रद्धा प्रतीत छे, तेणें मोक्षनुं निमित्त कारण, श्री जिनमुद्रानो याेगे

थयो, अने उपादान कारण आत्मोपयोग प्रमुख अध्यवसाय जिनगुणभासन रागहर्षें परिणम्या, एवा कारणने मलवे जाणुं छुं, जे कारणता ते कार्यनो हेतु छे, माटे कारण मले कार्यनी निष्पत्ति थशे, एवो आगमिक भव्यताद्योत उपयोग थयो, तेथी जाण्युं जे ए परमपुरुषोत्तम देव श्री वीतरागनी इछता तो उपनी, तो कोइ दिवसें ए आत्मागुणी थनार छे, ए अनुमानें जाण्यो जे कारण मल्युं तो कार्य निपजशे, अने भवभ्रमण पण टलशे, ए हर्षनुं वचन छे. भवभ्रमणनी भीड मटी, ए कारणें कार्योपचारी वचन छे, एम भावना करवी. जो प्रभुनी प्रभुता इष्ट लागे छे, तो आत्मा सिद्धता वरशे ॥ ६ ॥ इति षष्ठ गाथार्थः ॥

## नयर खंभायते पार्श्वप्रभु दर्शन,

विकसते हर्ष उत्साह वाध्यो ॥
हेतु एकत्वता रमण परिणामथी,
सिद्धि साधकपणो आज साध्यो
॥ स० ॥ ७ ॥

अर्थः—एवा अध्यवसाय श्री खंभायततीर्थे श्री सुखसागर पार्श्वजिननुं वंदन करतां कोइक प्रभुनी प्रभुता ऊपर अपूर्व राग उपनो ते हर्षे ए वचन भांख्युं छे, ते माटे खंभायतनुं नाम आण्युं छे, जे ए खंभायत नगरमां विकसित हर्षने विकस्वर थवे उत्साह वाध्यो केतां वध्यो, हेतु जे कारण श्री आरिहंत देव, तेथी एकत्त्व-पणे अत्यंत रागें रम्यो जे परिणाम, एटले प्रभुथी अतिरागी परिणाम थवाथी, सिद्धि जे मोक्ष तेनुं साधकपणुं ए आत्मामांहे छे, एवुं

अनुमान सध्युं एटले प्रभुरागें अनुष्ठान रहित आसंकारहित परिणम्युं, तो जाण्युं जे ए जीव मोक्ष निपजाववानी योग्यतावंत छे, माटे एवुं अनुमान कीधुं जे आज केता जे दिवसें प्रभुने भेटयो, ते दिवसें म्हारुं सिद्धिसाधकपणुं सध्युं ॥ इति सप्तम गाथार्थः ॥

आज कृतपुण्य धन्य
दीन माहरो थयो,
आज नर जन्म में सफल भाव्यो
देवचंद्र स्वामि त्रेवीशमो वंदीयो,
भक्तिभर चित्त तुझ गुण रमाव्यो
॥ स० ॥ ८ ॥

अर्थः—आज जे वेलायें अनुष्ठानादिक दोष रहित आत्मा प्रभुभक्त परिणम्यो, ते दि-

वस कृतपुण्य केतां पुण्योदय थयो, ए दिन धन्य थयो, ए दिन जिनभक्ति रक्त अध्यवसाय थवे ए नर जन्म सफलपणे विचारयो जे म्हारो ए जन्म सफळ छे, जे में नीरागी, निस्पृही, परमगुणी सर्वदर्शीदेव, श्रीपार्श्वनाथस्वामी त्रेवीशमा तीर्थंकर तेने भेटयो, वांद्यो, स्तव्यो, अने तेना भक्तिभरने विषे चित्त केतां मन रमाव्युं एटले पुद्गलरमणता तजी, श्री अरिहंतगुणना रमणताएं मन रमाव्युं तेज दिन कृतार्थ कृतपुण्य सफल मानवो, ए दिन लेखानो जाणवो, सर्व देवमांहे चंद्रमा समान अथवा स्तुति कर्त्ता जे देवचंद्र ते एहवो लाभ पाम्यो ॥ ८ ॥ इति श्रीपार्श्वजिन स्तवनं ॥

# ॥ अथ चतुर्विंश श्रीमाहावीरजिन स्तवनं ॥

॥ ढाल कडखानी देशीए चाल छे ॥

तार हो प्रभु तार मुज सेवक भणी,
जगतमां एटलुं सुजश लीजे ॥
दास अवगुण भरयो जाणी पोतातणो,
दयानिधि दीनपर दया कीजे ॥ता०१॥

अर्थः—कोइक अवसरे श्रीजिनागमना अभ्यासे करीने संसार भ्रमण ज्ञानावरणादि आवरणे आवृत पोतानी अनंत आत्मशक्ति जाणीने अनादि परभावानुषंगता दोषने दुःखे उद्विग्न आत्मा ते पोतानी साधकता शक्ति अणदेखतो परमानिर्यामक समान चोवीशमु

श्रीवीरनाथनां चरण शरण निर्धारीने, श्रीवीर प्रभुनी आगल प्रार्थना सहित, विनति करे छे. जे हे नाथ ! हे दीनदयाल ! हे प्रभुजी ! मुज सरिखो जे तत्त्वसाधन तथा आज्ञा निर्वाहमां असमर्थ, तेने मात्र नामथी सेवक जाणी तार तार, ए गुणरोधक रूप दुःखथी निस्तार, तुज सरीखा प्रभु विना बीजा कोने कहुं ? जगत्मां एटलुं सुजश लीजे, यद्यपि प्रभु तो जशना कामी नथी, परंतु उपचारे भक्ति आतुरताए कहे छे, जे मुज सरीखो दास ते यद्यपि राग, द्वेष, असंयम, अनुष्ठानाशंसादि दोष, एकता-दोष, अनादरादिदोषरूप अवगुणे करी भर्यो छे, तो पण ताहारो कहेवाय छे, तेमाटे हे दयानिधि ! केहतां भावकरुणाना निधान ! दीन जे हुं रंक, अशरण, दुःखित, तत्त्वशून्य, ज्ञा-

नादि संपदारहित, भावदरिद्री, मार्गनो विराधक, असंयमसंचारी, मोहाविकारी, तमारी आज्ञाथी विमुख, अनादिनो उद्धत, एहवा मुज उपर दया करीजे. ताहरी कृपा तेहीज त्राण (शरण) थशे. यद्यपि अरिहंत तो कृपावंतज छे, तो कृपा शी करवी छे? तोपण अर्थी विचारे नहीं माटे अर्थीनुं ए वचन छे, जे दयावंतनेज एम कहेवाय छे, जे हे देव! तमे दयाना भंडार छो,तमनेज अवलंबे तरीश. एज सत्य छे ॥ १ ॥ इति प्रथम० ॥

रागद्वेषे भर्यो मोह वैरी नड्यो,
लोकनी रीतमां घणुंए रातो ॥
क्रोधवशधमधम्यो शुद्धगुणनविरम्यो,
भम्यो भवमांहे हुं विषय मातो॥ता०२

अर्थः–दास कहेवो छे, रागद्वेष भर्यो, जगत्मां पड्यो, गुणीथी ईर्ष्या करे छे, मोह जे मुंजितपणुं ते तत्त्वनी अजाणता विपर्यासता, हेतुये मोहवेरी नड्यो तेथी दवाणो छे, तथा लोकनी जे रीत केतां चाल तेमांहे घणोज मातो छे, लोकनी चालमांहे मग्न छे, लोकरंजननो अर्थी छे, क्रोध जे राता चंडपरिणाम तेहने विषे धमधमी रह्यो छे, जेम धमग धमतां आग्नि तपे, तेम तपी रह्यो छे, शुद्ध गुण जे सम्यग् दर्शन, शुद्ध चारित्र, क्षमा, मार्दव, आर्यवादि आत्मगुण, तेने विषे रम्यो नहीं, तन्मयी न थयो. ते रूप न थयुं. वळी भम्यो चतुर्गतिरूप भव चक्रमांहे. द्रव्य, क्षेत्र, काळ, भाव रूप संसार तेने विषे हुं विषय जे पांचेंद्रियना स्वाद, आदि ते मांहे मातो केतां मग्न थयो, विषयग्रस्त थयो

थको एम संसारचक्र अनुभव्युं ते हवे मुजने तार तार हे नाथ! दीनबंधु! निःकारण दयाळ! मुजने तार भवदुःखथी उगार ॥ २ ॥

आदर्यों आचरण लोक उपचारथी,
शास्त्रअभ्यास पण कोइ कीधो ॥
शुद्ध श्रद्धान वली आत्मअवलंबविनु,
तेहवो कार्य तेणे को न सीधो ता०॥३॥

अर्थः—कदाचित् कोइ केहेशे जे आवश्यककरणादिक आचरण आदर्युं, अंगीकार कर्युं, परंतु ते सर्व लोकोपचारथी एटले विष तथा गरळ तथा अन्योन्यानुष्ठानथी भावना धर्म विना उपचारे अंगीकार कर्युं, तथा कोइ कहेशे उच्चगोत्र यशादिक कल्पना विपाके ज्ञाना

वरणीय क्षयोपशम योग शास्त्रनो अभ्यास पण कीधो, शास्त्र भण्यो, शास्त्रना यथार्थ अर्थ जाण्या, पण अध्यात्मभावनाए स्पर्शज्ञानानुभव विना श्रुतभ्यास केखेनाख्यो परंतु शुद्ध यथार्थ स्याद्वादोपेत भावधर्म ते विना शेष भावधर्मनी रुचिये जे प्रवर्त्तन दान दयादिक करीये, ते सर्व कारण समजमां, परंतु मूल धर्म नहीं. धर्म ते वस्तुनी सत्ता, आत्माने विषे स्वरूपपणे परिणामिकताए रह्यो छे, तेमांहे जे प्रगटयो ते धर्म, एहवुं शुद्ध श्रद्धान, शुद्धप्रतीति, तथा वली आत्मानी स्वरूप प्रगट करवारूप रुचि तथा आत्माना स्वगुणनु आलंबन, ते विना जे आचरण तेणे आचरणे तथा श्रुताभ्यासे तेहवुं कार्य, जे कार्यथी आत्मानुं साध्य

साधन थाय, ते कोइ नीपन्युं नहीं, जे थकी आत्मगुण कोइ प्रगटे, ते थयुं नहीं. ते माटे अहो परमेश्वर ! ताहरीज कृपा पार ऊतारे, निस्तारे, ते माटे तार तार ॥ इति तृतीय गाथार्थः ॥

स्वामिदर्शन समो, निमित्त लही निर्मलो, जो उपादानए, शुचि न थाशे ॥ दोष को वस्तुनो, अहवा उद्यमतणो, स्वामि सेवा सही निकट लाशे ॥ ता० ॥ ४ ॥

अर्थः—स्वामी श्रीवीतराग जे परकार्यना अकर्त्ता, परभावादिना अभोक्ता, इच्छा, लीला,

चपलता रहित एटले जे इच्छा ते तो ऊणता-वंतने छे, अने जे परमेश्वर तेतो पूर्ण सुखी छे, ते माटे इच्छारहित, वळी लीला पण सुखनी लालचवालाने होय, अने लालचीपणुं ते सुखनी ऊणताये थाय छे, ते माटे लालचीपणुं नथी, एहवा स्वामीना दर्शन समान निर्मल निमित्त लही केहतां पामीने जो ए आत्मानुं उपादान मूलपरिणति ते शुचि केहतां पवित्र नहीं थाशे तो जाणीये छइये जे वस्तु जे जीव, तेहनोज दोष केहतां अवगुण छे, एटले रखे ए जीवनो दल अयोग्य होय ? ए जीवनी सत्ता केवी रीतनी छे ? अथवा पोताना उद्यमनी खामी छे ? केम के आकरं प्रयत्ने उद्यम करी आत्माने समरवो जोइये, ते ए जीव पोतानी ऊणाशे आत्माने समरतो नथी,

ते माटे हवे शुं करवुं ? जे बीजो उपाय कोइ नथी, तो श्रीअरिहंतनी सेवा तेहीज निश्चे निकट केतां नजीकता लासे केतां पमाडशे एटले ए आत्मा दुष्ट छे, परंतु श्री जिनराजनी सेवनाथी दुष्टता तजशे ॥ ४ ॥

**स्वामिगुण ओलखी स्वामीने जे भजे,**
**दर्शन शुद्धता तेह पामे ॥**
**ज्ञान चारित्र तप वीर्य उल्लासथी,**
**कर्म झीपी वसे मुक्तिधामे ॥ ता० ५**

अर्थः—स्वामी जे श्रीअरिहंत, तेहना गुणने ओलखीने जे प्राणी श्रीअरिहंतने भजे, केहतां सेवे, ते दर्शन केहतां समकितरूप गुण पामे, दर्शननी निर्मलता पामे, ज्ञान ते यथार्थ भासन, चारित्र ते स्वरूप रमण, तप ते तत्त्व

एकाग्रता, वीर्य ते आत्मसामर्थ्य, तेहना उल्ला-
सथी केहतां उल्लसवेथी ज्ञानावरणादि कर्मने
झींपीने वसे केहतां रहे, मुक्ति केतां मोक्ष निरा-
वरण संपूर्ण सिद्धतारूप धामे केहतां स्थानके
वसे ॥ ५ ॥ इति पंचम गाथार्थः ॥

**जगतवत्सल महावीर जिनवर सुणी,**
**चित्त प्रभु चरणने शरण वास्यो ॥**
**तारजो बापजो बिरुद निज राखवा,**
**दासनी सेवना रखे जोशो ॥ ता० ।६।**

अर्थः—जगत्रयवत्सल केहतां जगत्रयवासी
जीवना धर्महितकारी, एहवा महावीर श्री चो-
वीशमा जिनवर, तेहने सुणी केहतां सांभलीने
चित्त केहतां मन ते प्रभुने चरणने शरणे वास्यो
केहतां वसाव्यो, ते माटे हे प्रभु परमेश्वर! मा-

हरो आत्मा तो पकटीने सर्वसाधन करे, एहवी शक्ति देखाती नथी माटे भद्रक भक्तिए कहुं छुं जे हे तात ! हे दीनबंधो ! मुज दासने तुमे तारजो, तमारुं तारकतानुं बिरुद राखवा माटे दास जे सेवक तेहनी सेवना भक्ति सामुं जोशोमां, जे ए आज्ञाप्रमाणे भक्ति करे, तो तरे, ए वात तो स्वामी माहारामां थवी दुर्लभ छे, पण तमारे संयोगे तरीये, एहीज नियमा आधार छे ॥ ६ ॥

विनति मानजो शक्ति ए आपजो,
भावस्याद्वा दता शुद्ध भासे ॥
साधि साधक दशा सिद्धता अनुभवी,
देवचंद्र विमल प्रभुता प्रकासे ॥ ता० ॥

अर्थः—माहरी एटली विनती मानजो,

ए पण भद्रकपणाथी भक्तिनुं वचन छे, जे श-क्ति सामर्थ्य एवी आपजो, ते कहे छे, जे भाव केहतां वस्तुधर्म ते स्याद्वादरीते नित्य, अनित्य एक, अनेक, अस्ति, नास्ति, भेद, अभेदपणे छ द्रव्यना अनंता धर्म शुद्ध, शंकादिक दूषण रहित भासे, केहतां जाणपणामध्ये आवे, साधि केहतां निपजावीने साधकदशा ते भेदरत्नत्रयी, सिद्ध, निष्पन्नता, अनुभवे, केहतां भोगवे, सर्व देवमांहे चंद्रमा समान सिद्ध भगवान् तेहनी विमल केहतां निर्मल जे प्रभुता, ते प्रकासे केहतां प्रगट करे, एटले स्याद्वाद ज्ञाने साधकता प्रगटे, साधकताथी सिद्धता प्रगटे, एहीज सार-पद्धति छे ॥ ७ ॥

एटले ए चोवीश स्तवन थयां. पोताना जाणपणाप्रमाणे परमेश्वरनी गुण ग्रामे स्तवना

करी, तेमांहे जे यथार्थ ते प्रमाण, अने अयथार्थनुं मिच्छामि दुक्कडं गीतार्थे गुण लेवो, दोष तजवो, में भद्रकताये ए रचना करी छे, मोहटा पुरुष क्षमा राखी गुण लेवा ॥ ७ ॥

इति महावीर जिन स्तवनं ॥ २४ ॥

## ॥ अथ सामान्यकलशरूप पंचविंशतितम स्तवनं ॥

॥ कलश बोलवानी देशीमां ॥

चोवीशे जिनगुण गाईये,
ध्याइयें तत्त्वस्वरूपो जो ॥
परमानंदपद पाईये,
अक्षय ज्ञान अनूपो जी ॥चो०॥१॥

अर्थः—श्री रूषभदेवथी मांडीने माहावीर

पर्यंत अवसर्प्पिणी काले शासनना नायक गुणरत्नाकर, माहामाहण, महागोप, माहावैद्य, एहवा चोवीश तिर्थंकर थया, तेहने गाइये केहतां गुणग्राम करीये, अने पोताना तत्त्वा स्वरूपने ध्यायीये तेहने ध्यावे, तत्त्वनी एकाग्रता पामीये, तेहथी परमानंद अविनाशी पद पामीजे. वली अक्षय, अविनाशी, एहवुं क्षायिक ज्ञान ते अनुप केतां अद्भूत पामीजे ॥ १ ॥ इति प्रथम गाथार्थः ॥

चवदहसें बावन भला,
गणधर गुण भंडारो जी ॥
समता मयी साहु साहुणी,
सावयसावयी सारो जी॥चो०॥२॥

अर्थः—चोवीशे जिनराजना गणधर

( १४-२ ) भला गण गणि पिटकना धणी, गुणना भंडार तथा समतामयी साधु, साधवी, अने श्रावक, श्राविका सार केहनां प्रधान धर्म-ना धोरी, सम्यगदर्शन, ज्ञान, चारित्रनां पात्र, ए चार प्रकारनो संघ ते सहित गायवो ॥२॥ इति द्वितीय गाथार्थः ॥

वर्द्धमान जिनवर तणा,
शासन अति सुखकारो जो ॥
चौविह संघ विराजतो,
दुसम काल आधारो जो॥चो०॥३॥

अर्थः—तथा हमणां श्री वर्द्धमान माहावी-रस्वामीनुं शासन अत्यंत सुखनुं कारक छे, ए शासनमांहे जे पेठा, ते जीव संसारनो पार पामे, तथा दुसम काळ पांचमा आरामध्ये भ-

व्यजीवने आधारभूत चतुर्विध संघ बिराजे छे, वर्त्तमान काले नवतत्त्व षट्द्रव्यनी ओलखाण थाय, मिथ्यात्व असंयमनो जे जे त्रास आवे, ते उपगार श्रीवीर प्रभुना शासननो छे, ते श्रीवीरनाज आगम आधार छे ॥ ३ ॥

जिनसेवनथी ज्ञानता,
लहे हिताहित बोधो जी ॥
अहित त्याग हित आदरे,
संयम तपनी शोधो जी ॥चो०॥४॥

अर्थः—ए जिनसेवनानुं फल श्री विशेषावश्यकने अनुसारे कहीये छैये. जे श्रीवीतरागना उपदेश्यां सूत्र ते सांभलवाथी जाणपणुं वधे, ते ज्ञानथी हित अहितनो बोध थाय, पछी अहितनो त्याग करे, तथा हितने आदरे,

तत्त्वसाधन आदरे तेहथी संयम तपनी शोध केहतां शुद्धता थाय ॥ ४ ॥

अभिनव कर्म अग्रहणता,
जीर्णकर्म अभावो जी ॥
निःकर्मीने अबाधता,
अवेदन अनाकुल भावो जी॥चो०॥

अर्थः—संयमतपनी शुद्धता थवाथी नवा कर्मनी अग्रहणता थाय, एटले नवा कर्म न बांधे, अने जीर्ण केहतां जुना कर्मनो अभाव थाय, एटले पूर्वबंध सत्तागत कर्म निर्जरे अने नवानो बंध नहीं थाय, तथा मूलगां सत्ता गत क्षय जाय, तेवारे आत्मा निःकर्मी केहतां सर्व कर्मरहित थाय, अबाधता केहतां बाधा रहित थाय, जे बाधा ते आत्मप्रदेशे पुद्गलना संगनी

छे, पुद्गलसंग टले, बाधा मटी गइ, तेवारे आत्मा अवेदन अनाकुलपणुं पाम्यो ने आकुलता परोपाधिनी हती ते गइ, ते सर्व प्रभुभक्तिनो उपगार जाणवो ते माटे चोवीश जिनने स्तवीए एहीज सार छे ॥ ५ ॥ इति पंचम गाथार्थः ॥

भावरोगना विगमथी,
अचल अक्षय निराबाधो जो ॥
पूर्णानंददशा लही,
विलसे सिद्ध समाधोजो॥चो०॥६॥

अर्थः—पछी भावरोग जे परानुयायीपणुं तेहनी विगम केतां सर्वथी टलवे करीने अचल केतां चपलता रहित अक्षय केतां अविनाशीपणुं निराबाध केतां अव्याबाध पद प्रगटे, ते सर्वनुं

मूळ कारण जिनराज श्री वीतराग देवनी सेवना भाव रूचे, द्रव्य तथा भावथी प्रगटे, माटे सेवना करवी एहीज हित छे, पूर्णानंद परमानंद अनंत गुणना भोगरूप स्वासिद्धता दशा लही केहतां पामीने विळसे केहतां अनुभवे, सिद्ध निष्पन्न परनिष्ठितार्थ आत्मिक समाधि, ज्ञान दर्शन समाधि, अव्याबाधानंदसमाधि भोगवे, पामे, ए श्री जिनेश्वरना सेवननुं फळ एहीज परम निर्वाणपदनी प्राप्ति छे,तेणे सर्व विकल्प कल्पना निवारीने, सर्वज्ञ सर्वदर्शी शुद्धतत्त्वी परमेश्वर निर्विकारी देवनुं सेवन करी, एहीज परमसुखनुं पुष्ट कारण छे ॥ ६ ॥

श्रीजिनचंद्रनी सेवना,

प्रगटे पुण्यप्रधानो जी ॥

सुमतिसागर अति उल्लसे,
साधुरंग प्रभु ध्यानो जी ॥चो०॥७॥

अर्थः—श्री जिनचंद्र अरिहंत देव तेहनी सेवना करतां पुण्यप्रधान प्रगटे अने श्रेष्ठ सुमति जे परमानंद साधकमति, ते उल्लसे केहतां उल्लास पामे अने प्रभुने ध्याने साधु केहतां भलो रंग थाय, बीजो अर्थ श्री जिनचंद्रसूरिभट्टारक श्री खरतरगच्छाधीश्वर तेहना शिष्य श्रीपुण्य प्रधानोपाध्याय, तेहना शिष्य श्री सुमति सागरोपाध्याय, तेहना शिष्य श्री साधुरंगवाचक, ए स्तुति कर्त्तानी परंपरामां बहुश्रुत थया, तेहनां नाम कह्यां ॥७॥ इति सप्तम गाथार्थः॥

सुविहित खरत गछवरू,
राजसार उवझायो जी ॥

ज्ञानधर्म पाठक तणो,

शिष्य सुजस सुखदायो जी॥चो०८॥

अर्थः—सुविहित कहेतां पंचांगी प्रमाण रत्नत्रयीनी हेतु केहतां कारण एहवी जेहनी समाचारी, एहवी जे खरतरगच्छ ते मध्यें वर केतां प्रधान सर्व शास्त्र निपुण मरुस्थल विषे अनेक जिनचैत्यप्रतिष्ठाकारक आवश्यकोद्धार प्रमुख ग्रंथोना कर्त्ता एवा महोपाध्याय, श्री राजसारजी थया, तेहना शिष्य श्रीज्ञानधर्म उपाध्याय, न्यायादिक ग्रंथाध्यापक, जेणे शाठ वर्ष पर्यंत जिव्हाना रस तजी शाक जाति तजी, ने संवेगवृत्ति धरी, तेमना शिष्य रूडा यशना धणी, सुखना देवावाला एहवा ॥ ८ ॥ इति अष्टम गाथार्थः ॥

दीपचंद पाठक तणो,
शिष्य स्तवे जिनराजो जी ॥
देवचंद पद सेवतां,
पूर्णानंद समाजो जी ॥ चो० ॥ए॥

अर्थः–तथा जेणे श्री शत्रुंजय तीर्थ उपर शिवासोमजीकृत चोमुखनी अनेक बिंबप्रतिष्ठा करी तथा पांच पांडवना बिंबनी प्रतिष्ठा करी, तथा समोसरण चैत्य तथा श्रीकुंथुनाथ चैत्य प्रतिष्ठा करी, श्रीराजनगरे सहस्त्रफणा पार्श्व प्रभुनी प्रतिष्ठा करी, एहवा उपाध्याय श्रीदीपचंद्रजी, तेहना शिष्य पंडितदेवचंद्रगणि, तेणे ए चोवीश प्रभुनी स्तवना भक्तिवशे करी, पोतानी भक्ति परिणति महानंद हेतु छे, एहवा गुणना नाथ, देवचंद्र पद सेवतां पूर्णानंद जे

सिद्ध अव्याबाध आनंदनो समाज केहतां समुदाय ते पामे, ए जिनभक्ति ते मोक्षनो परमोपाय छे । ९ ॥

॥ इति श्री चोवीश जिनस्तुतिनो बालावबोध संपूर्ण ॥

॥ इति श्री देवचंद्रजी महाराजकृत बालावबोधसहित चतुर्विंशति जिनस्तवनानी संपूर्णानी ॥

# अथ श्रीदेवचंद्रजीकृत विंशति विहरमानजिन स्तवनानी ॥

## ॥ तत्र प्रथम श्रीसीमंधरजिन स्तवनं ॥

सिद्धचक्रपद वंदो ॥ ए देशी ॥

॥ श्री सीमंधर जिनवर स्वामी, विनतडी अवधारो ॥ शुद्धधर्म प्रगटयो जे तुमचे, प्रगटो तेह अम्हारो रे स्वामी, विनवीयें मनरंगें ॥१॥ जे परिणामिक धर्म तुमारो, तेहवो अमचो धर्म ॥ श्रद्धाभासन रमण वियोगें, वलग्यो विभाव अधर्म रे स्वामी ॥ वि० ॥ २ ॥ वस्तु स्वभाव स्वजाति तेहनो, मूल अभाव न थाय ॥ पर-विभाव अनुगत परिणतिथी, कर्मे ते अवराय रे स्वामी ॥ वि० ॥ ३ ॥ जे विभाव ते पण नैमित्तिक, संतति भाव अनादि ॥ परनि-

मित्त ते विषय संगादिक, ते संयोगें सादि रे स्वामी ॥ वि० ॥ ४ ॥ अशुद्ध निमित्तें ए संसरता, अत्ता कत्ता परनो ॥ शुद्ध निमित्त रमे जब चिद्घन, कर्त्ता भोक्ता घरनो रे स्वामी ॥ वि० ॥ ५ ॥ जेहना धर्म अनंता प्रगट्या, जे निजपरिणतिवरीयो ॥ परमातम जिनदेव अमोही, ज्ञानादिक गुण दरीयो रे स्वामी ॥ वि० ॥ ६ ॥ अवलंबन उपदेशक रीतें, श्रीसीमंधर देव ॥ भजीये शुद्ध निमित्त अनोपम, तजीयें भवभय टेव रे स्वामी ॥वि० ॥७॥ शुद्धदेव अवलंबन करतां परहरीयें परभाव ॥ आतमधर्म रमण अनुभवतां, प्रगटे आतम भावरे स्वामी ॥ वि० ॥८॥ आतमगुण निर्मळ नीपजतां, ध्यानसमाधि स्वभावे ॥ पू-

र्णानंद सिद्धता साधी, देवचंद्र पद पावे रे स्वामी ॥ वि० ॥ ९ ॥ इति सीमंधर जिन स्तवनं ॥

## ॥ अथ द्वितीय श्रीयुगमंधरजिन स्तवनं ॥

॥ देशी नारायणानी ॥श्री युगमंधर वीनवुं रे, विनतडी अवधार रे ॥ दयालराय ॥ ए परपरिणति रंगथी रे, मुझने नाथ उगार रे ॥ द० ॥ १ ॥ श्री० ॥ कारक ग्राहक भोग्यता रे, में कीधी माहाराय रे ॥ द० ॥ पण तुझ सरिखो प्रभु लहि रे, साची वात कहाय रे ॥ द० ॥ २ ॥ श्री० ॥ यद्यपि मूळ स्वभावमें रे, परकर्तृत्व विभाव रे ॥ द० ॥ अस्तिधरम जे माहरो रे, एहनो तथ्य अभाव रे

॥ द० ॥ ३ ॥ श्री० ॥ परपरिणामिकता दशा रे, लहि परकारण योगरे ॥ द० ॥ चेतनता परगट थइ रे, राची पुद्गल भोग रे ॥ द० ॥ ४ ॥ श्री ॥ अशुद्ध निमित्त तो जड अछे रे, वीर्य शक्ति विहीन रे ॥ द० ॥ तूंतो वीरज ज्ञानथी रे, सुख अनंते लीन रे ॥ द० ॥ ५ ॥ श्री तिण कारण निश्चे कर्यो रे, मुझ निज परिणति भोग रे ॥ द० ॥ तुझ सेवाथी नीपजे रे, भाजे भवभय सोग रे॥द० ॥ ६ ॥ श्री॥ शुद्ध रमण आनंदता रे, ध्रुव निस्संग स्वभाव रे ॥ द० ॥ सकल प्रदेश अमूर्त्तता रे, ध्याता सिद्ध उपाय रे ॥ द० ॥ ७ ॥ श्री० ॥ सम्यग्तत्त्व जे उपदिश्यो रे, सुणतां तत्व जणाय रे ॥ द० ॥ श्रद्धाज्ञानें जे ग्रह्यो रे, तेहिज कार्य कराय रे ॥ द० ॥ ८ ॥

श्री० ॥ कार्यरुचि कर्त्ता थये रे, कारक सवि पलटाय रे ॥ द० ॥ आतमगते आतम रमे रे, निज घर मंगल थाय रे ॥ द० ॥ ९ ॥ श्री ॥ त्राण शरण आधार छो रे, प्रभुजी भव्य सहाय रे ॥ द० ॥ देवचंद्र पद नीपजे रे, जिनपदकज सुपसाय रे ॥ द० ॥ १० ॥ श्री० ॥ इति श्रीयुगमंधरजिन स्तवनं ॥

## ॥अथ तृतीय श्रीबाहू जिन स्तवनं ॥

॥ संभवजिन अवधारीये॥ए देशी ॥बाहुजिणंद दयामयी, वर्त्तमान भगवान ॥ प्रभुजी ॥ महा विदेहें विचरता, केवलज्ञान निधान ॥ प्र० ॥ ॥ १ ॥ बा० ॥ द्रव्यथकी छ कायने, न हणे जे ॥ लगार ॥ प्र० ॥ भावदया परिणामनो एहीज छे व्यवहार ॥ प्र० ॥ २ ॥ बा० ॥ रूप अनुत्तर देवथी, अनंत गुणुं अभिराम ॥

प्र० ॥ जोतां पण जगजिंतुनें न वधे विषय वि-
राम ॥ प्र० ॥ ३ ॥ वा० ॥ कर्मउदय जिन-
राजनो, भविजन धर्म सहाय ॥ प्र० ॥ नामा
दिक संभारतां, मिथ्यादोष विलाय ॥ प्र० ॥
॥ ४ ॥ वा० ॥ आतम गुण अविराधना,
भावदया भंडार ॥ प्र० ॥ क्षायिक गुण पर्यायमें
नवि पर धर्मप्रचार ॥ प्र० ॥ ५ ॥ वा० ॥
गुणगुण परिणति परिणमे, बाधक भाव विहीन
॥ प्र० ॥ द्रव्य असंगी अन्यनो, शुद्ध अहिंसक
पीन ॥ प्र० ॥ ६ ॥ वा० ॥ क्षेत्रें सर्वप्रदेशमें,
नहीं परभाव प्रसंग ॥ प्र० ॥ २ ॥ अतनु
अयोगी भावथी, अवगाहना अभंग ॥ प्र० ॥
७ ॥ वा० उत्पाद व्यय ध्रुव पणे, सहेजे परि-
णति थाय ॥ प्र० ॥ छेदन योजनता नहीं,
वस्तु स्वभाव समाय ॥ प्र० ॥ ८ ॥ वा० ॥

गुण पर्याय अनंतता, कारक परिणति तेम ॥प्र०॥ निज निज परिणति परिणमे,भाव अहिंसक एम॥प्र०॥९॥वा०॥एमअहिंसकतामयी,दीठो तुं जिनराज॥प्र०॥रक्षक निजपरजीवनो, तारण तरण झिहाज ॥ प्र० ॥ १० ॥ वा०॥ परमातम परमेसरु, भावदया दातार ॥ प्र० ॥ सेवो ध्यावो एहने, देवचंद्र सुखकार ॥ प्र० ॥ ॥ ११ ॥ वा० ॥ इति ॥ ३ ॥

## ॥ अथ चतुर्थ श्रीसुबाहुजिन स्तवनं ॥

ढाल ॥ माहारो वालो ब्रह्मचारी ॥ ए देशी ॥

श्रीसुबाहुजिन अंतरजामी, मुझ मननो विशरामी रें ॥ प्रभु अंतरजामी ॥ आतम धर्म तणो आरामी, परपरिणति निःकामी रे ॥ प्र० ॥ १ ॥ केवल ज्ञान अनंत प्रकाशी, भविजन

कमल विकासी रे ॥ प्र० ॥ चिदानंद घन तत्त्वविलासी, शुद्ध स्वरूप निवासी रे ॥प्र०॥ ॥२॥ यद्यपि हुं मोहादिकें छलीयो, परपरिण तिशुं भलीयो रे ॥ प्र० ॥ हवे तुझ सम मुझ साहिब मलीयो, तिणें सवि भवभय टलियो रे ॥ प्र० ॥ ३ ॥ ध्येय स्वभावें प्रभु अवधारी, दुर्ध्याता परिणति वरी रे ॥ प्र० ॥ भासन वीर्य एकताकारी, ध्यान सहज संभारी रे ॥ ॥ प्र० ॥ ४ ॥ ध्याता ध्येय समाधि अभेदें, परपरिणति विच्छेद रे ॥ प्र० ॥ ध्याता साधक भाव उच्छेदे, ध्येय सिद्धता वेदे रे ॥ प्र० ॥ ५ ॥ द्रव्यक्रिया साधन विधि याची, जे जिन आगम वांची रे ॥ प्र० ॥ परिणति वृत्ति विभावे राची, तिण नवि थाये साची रे ॥ प्र० ॥ ६ ॥ पण नवि

भय जिनराज पसायें, तत्त्वरसायण पाये रे ॥ प्र० ॥ प्रभुभगते निज चित्त वसाये, भाव· रोग मिट जाये रे ॥ प्र० ॥ ७ ॥ जिनवर वचन अमृत अनुसरीयें, तत्त्व रमण आदरी· यें रे ॥ प्र० ॥ द्रव्यभाव आश्रव परिहरियें, देवचंद्र पद वरीयें रे ॥ प्र० ॥ ८ ॥ इति च तुर्थ श्री सुबाहुजिन स्तवनं ॥ ४ ॥

॥ अथ पंचम श्रीसुजाताजिन स्तवनं ॥

॥ देहुं देहुं नणद हठीली ॥ ए देशी ॥

स्वामी सुजात सुहाया, दीठा आणंद उपाया रे ॥ मनमोहना जिनराया ॥ जिणें पुरण. तत्त्व निपाया, द्रव्यास्तिक नय छहराया रे ॥ म० ॥ १ ॥ पर्यायास्तिक नयराया, ते मुल स्वभाव समाया रे ॥ म० ॥ ज्ञानादिक स्व परजाया, निजकार्य करण वरताया रे ॥ म०

॥ २ ॥ अंशनय मार्ग कहाया, ते बिकल्प भाव सुणाया रे ॥ म० ॥ नय चार ते द्रव्य थपाया, शब्दादिक भाव कहाया रे ॥ म० ॥ ॥ ३ ॥ दुर्नय ते सुनय चलाया, एकत्व अ-भेदे ध्याया रे ॥ म० ॥ ते सवि परमार्थ स-माया, तसु वर्तन भेद गमाया रे ॥ म० ॥४॥ स्याद्वादी वस्तु कहीजें, तसु धर्म अनंत लहीजे रे ॥ म० ॥ सामान्य विशेषनुं धाम, ते द्रव्या-स्तिक परिणाम रे ॥ म० ॥ ५ ॥ जिनरूप अनंत गणीजे, ते दिव्य ज्ञान जाणीजें रे ॥ म० ॥ श्रुतज्ञाने नयपथ लीजें, अनुभव आस्वादन कीजें रे ॥ म० ॥ ६ ॥ प्रभुशक्ति व्यक्ति एकभावें, गुण सर्व रह्या समभावे रे ॥ म० ॥ माहरे सत्ता प्रभु सरखी, जिनव-चन पसायें परखी रे ॥ म० ॥ ७ ॥ तुंतो

निज संपत्ति भोगी, हुंतो परपरिणतिनो योगी रे ॥ म० ॥ तिण तुम्ह प्रभु माहरा स्वामी, हुं सेवक तुझ गुणग्रामी रे ॥ म० ॥ ८ ॥ ए संबंधे चित्त समवाय, मुझ सिद्धिनुं कारण थाय रे ॥ म० ॥ जिनराजनी सेवना करवी, ध्येय ध्यान धारणा धरवी रे ॥ म० ॥ ९ ॥ तुं पूरण ब्रह्म अरूपी, तुं ज्ञानानंद स्वरूपी रे ॥ म० ॥ इम तत्त्वालंबन करीयें, तो देवचंद्र पद वरीयें रे ॥ म० ॥ १० ॥ इति सुजात-जिन स्तवन ॥ ५ ॥

## ॥ अथ षष्ठ श्री स्वयंप्रभजिन स्तवन ॥

मोमनडो हेडाउहो मिसरिठाकुरो महदरो ॥ ए देशी ॥ स्वामी स्वयंप्रभने हो जाउं भामणे, हरखें वार हजार ॥ वस्तु धर्म पूरण जसु नी-

पनो भाव कृपा किरतार ॥ १ ॥ स्वा० ॥ द्रव्यधर्म ते हो जोग समारवा, विषयादिक परिहार ॥ आतमशक्ति स्वभाव सुधर्मनो, साधनहेतु उदार ॥ २ ॥ स्वा० ॥ उपशम भाव हो मिश्र क्षायिकपणें, जे निज गुण प्राग्भाव ॥ पूर्णावस्थानें नीपजावतो, साधन धर्म स्वभाव ॥ ३ ॥ स्वा० समकित गुणथी हो शैलेशी लगें, आतम अनुगत भाव ॥ संवर निर्जरा हो उपादान हेतुता, साध्यालंबन दाव ॥ ४ ॥ ॥ स्वा० ॥ सकलप्रदेशें हो कर्म अभावता, पूर्णानंद स्वरूप ॥ आतम गुणनी हो जे संपूर्णता, सिद्ध स्वभाव अनुप ॥ ५ ॥ स्वा० ॥ अचल अबाधित हो जे निस्संगता, परमातम चिद्रूप ॥ आतमभोगी हो रमता निज पदें, सिद्धरमण ए रूप ॥ ६ ॥ स्वा० ॥ एहवो ध-

र्म हो प्रभुने निपन्यो, भाख्यो एहवो धर्म ॥ जे आदरतां हो भवियण शुचि हूवे, त्रिविध विदारी कर्म ॥ ७ ॥ स्वा० ॥ नाम धर्म हो ठवण धर्म तथा, द्रव्यक्षेत्र तिम काल ॥ भाव-धर्मना हो हेतुपणे भला विना सहु आल ॥ ॥ ८ ॥ स्वा० ॥ श्रद्धा भासन हो तत्त्व रमण पणे, करतां तन्मय भाव ॥ देवचंद्र जिनवर पद सेवतां, प्रगटे वस्तु स्वभाव ॥ ९ ॥ स्वा० ॥ इति षष्ठ श्री स्वयंप्रभजिन स्तवन संपूर्ण ॥

## ॥ अथ सप्तम श्रीऋषभाननजिन स्तवन. ॥

॥ वारी हुं गोडी पासने ॥ ए देशी ॥

श्रीऋषभानन वांदीयें, अचल अनंत गुणवास ॥ जिनवर ॥ क्षायिक चारित्र भोगथी ज्ञाना-

नंद विलास ॥ जि० ॥ १ ॥ श्री० ॥ जे प्रसन्न प्रभु मुख ग्रहे, तेहीज नयन प्रधान ॥ ॥ जि० ॥ जिनचरणें जे नामीयें, मस्तक तेह प्रमाण ॥ जि० ॥ २ ॥ श्री० ॥ अरिहापदकज अरचीये, स लहीजें ते हच्छ ॥ जि० ॥ प्रभु-गुण चिंतनमें रमे, तेहज मन सुकयच्छ ॥ जि० ॥ ३ ॥ श्री० ॥ जाणो छो सहु जीवनी, साधक बाधक भांत ॥ जि० ॥ पण श्रीमुखथी सांभली, मन पामे निरांत ॥ जि० ॥ ४ ॥ श्री० ॥ तीन काल जाणंग भणी, शुं कहीये वारंवार ॥ जि० पूर्णानंदी प्रभुतणुं, ध्यान ते परम आधार ॥ जि० ॥ ५ ॥ श्री० ॥ कारणथी कारज हुवे, ए श्री जिनमुख वाण ॥ जि० ॥ पुष्टहेतु मुझ सिद्धना, जाणी कीध प्रमाण ॥ जि० ॥ ६ ॥ श्री० ॥ शुद्ध तत्त्व

निज संपदा, ज्यां लगें पूर्ण न थाय ॥ जि० ॥ त्यां लगें जगगुरु देवना, सेवुं चरण सदाय ॥ जि० ॥ ७ ॥ श्री० ॥ कारण पूर्ण कर्या विना, कारण केम मुकाय ॥ जि० ॥ कारज रुचि कारणतणा, सेवे शुद्ध उपाय ॥ जि० ॥ ८ ॥ श्री० ॥ ज्ञान चरण संपूर्णता, अव्याबाध अमाय ॥ जि० ॥ देवचंद्र पद पामीयें, श्री जिनराज पसाय ॥ जि० ॥ ९ ॥श्री०॥इति श्री रूषभाननाजिन स्तवनं॥

## ॥ अथ अष्टम श्री अनंतवीर्यजिन स्तवनं ॥

॥ चरणाली चामुंडा रण चडे ॥ ए देशी ॥

अनंतवीरज जिनराजनो, शुचि वीरज परम अनंत रे ॥ निज आतम भावें परिणम्यो, गुणवृत्ति वर्त्तनावंतरे ॥ १ ॥ मन मोह्युं अ-

म्हारुं प्रभुगुणें ॥ ए आंकणी ॥ यद्यपि जीव सहु सदा, वीर्यगुण सत्तावंत रे ॥ पण कर्म आवृतचल तथा, बाळ बाधक भाव लहंत रे ॥ ॥ २ ॥ म० ॥ अल्पवीर्य क्षयोपशम अछे, अविभाग वर्गणा रूप रे ॥ षड्गुण एम असंख्यथी, थाये योग स्थान सरूप रे ॥ ३ ॥ ॥ म० ॥ सुहम निगोदी जीवथी, जासन्नीवर पज्जत रे ॥ योगनां ठाण असंख्य छे, तरतम मोहे परायत्त रे ॥ ४ ॥ म० ॥ संयमने योगें वीर्य ते, तुम्हें कीधो पंडित दक्ष रे ॥ साध्य रसी साधकपणे, अभिसंधि रम्यो निज लक्ष रे ॥ ५ ॥ म० ॥ अभिसंधि अबंधक नीपने, अनभिसंधि अबंधक थाय रे ॥ स्थिर एक तत्त्वता वरततो, ते क्षायिक शक्ति समाय रे ॥ ॥ ६ ॥ म० ॥ चक्रभ्रमण न्याय संयोगता,

तजी कीध अयोगी धाम रे ॥ अकरण वीर्य अनंतता, निजगुण सहकार अकाम रे ॥ ७ ॥ ॥ म० ॥ शुद्ध अचल निजवीर्यनी, नैरुपाधिक शक्ति अनंत रे ॥ ते प्रगटी में जाणी सही, तिणें तुमहीज देव महंत रे ॥ ८ ॥ म० ॥ तुझ ज्ञानें चेतना अनुगमी, मुझ वीर्य स्वरूप समाय रे ॥ पंडित क्षायिकता पामशे, ए परणासिद्धि उपाय रे ॥ ९ ॥ म० ॥ नायक तारक तुं धणी, सेवनथी आतम सिद्धि रे ॥ देवचंद्र पद संपजे, वर परमाणंद समृद्धि रे ॥ १० ॥ ॥ म० ॥ इति ॥

## ॥ अथ नवम श्री सूरप्रभजिन स्तवनं ॥

॥ देशी कडखानी ॥

सूर जगदीशनी तीक्ष्ण अति शूरता,

तेणे चिरकाळनो मोह जीत्यो ॥ भाव स्याद्वादता शुद्ध परगाश करि, नीपनो परम पद जग वदीतो ॥ १ ॥ सू० ॥ प्रथम मिथ्यात्त्व हणि शुद्ध दंसण निपुण, प्रगट करि जेणे अविरति पणासी ॥ शुद्ध चारित्र गत वीर्य एकत्वथी, परिणति कलुषता सवि विणाशी ॥ ॥ २ ॥ सू० ॥ वारि परभावनी कर्तृता मूळथी, आत्म परिणाम कर्तृत्व धारी ॥ श्रेणी आरोहतां वेद हास्यादिनी, संगमी चेतना प्रभु निवारी ॥ ३ ॥ सू० ॥ भेदज्ञाने यथा वस्तुता ओलखी, द्रव्य पर्याय में थइ अभेदी ॥ भाव सविकल्पता छेदि केवळ सकल, ज्ञान अनंतता स्वामि वेदी ॥ ४ ॥ सू० ॥ वीर्यक्षायिक बळे चपळता योगनी, रोधि चेतन करयो शुचि अलेशी ॥ भाव शैलेशीमें परम

अक्रिय थइ, क्षय करी चार तनु कर्मशेषी ॥ ॥ ५ ॥ सू० ॥ वर्ण रस गंध विनु फरस संस्थान विनु, योगतनु संग विनु जिन अरूपी ॥ परम आनंद अत्यंत सुख अनुभवी, तत्त्वतन्मय सदा चित्स्वरूपी ॥ ६ ॥ सू० ॥ ताहरी शुरता धीरता तीक्ष्णता, देखी सेवक तणो चित्त राच्यो ॥ राग सुप्रशस्तथी गुणी आश्रयता, गुणी अद्तपणे जीव राच्यो ॥ ७ ॥ ॥ सू० ॥ आत्मगुण रुचि थये तत्त्व साधन रसी, तत्त्व निष्पत्ति निर्वाण थावे ॥ देवचंद शुद्ध परमात्म सेवनथकी, परम आत्मिक आनंद पावे ॥ ८ ॥ सू० ॥ इति नवम सूरप्रभजिन स्तवनं ॥ ९ ॥

## ॥ अथ दशम श्री विशाल-जिन स्तवनं ॥

॥ प्राणी वाणी जिनतणी ॥ ए देशी ॥

देव विशाल जिणंदनी, तमें ध्यावो तत्त्व तत्त्व समाधि रे ॥ चिदानंद रस अनुभवी, सहज अकृत निरुपाधि रे ॥ १ ॥ स० ॥ अरिहंत पद वंदीयें गुणवंत रे ॥ गुणवंत अनंत महंत स्तवो, भवतारणो भगवंत रे ॥ ए आंकणी ॥ भव उपाधी गद टालवा, प्रभुजी छो वैद्य अमोघ रे ॥ रत्नत्रयि औषध करी, तमें तारया भविजन ओघ रे ॥ २ ॥ त० ॥ अ० भव समुद्र जल तारवा, निर्यामक सम जिनराज रे ॥ चरण झहाजे पामीयें, अक्षय शिवनगरनुं राज रे ॥ ३ ॥ अ० ॥ अ० ॥ भव

अटवी अति गहनथी, पारग प्रभुजी सत्थवाह रे ॥ शुद्धमार्ग दर्शकपणे, योग क्षेमंकर नाह रे ॥ ४ ॥ यो० ॥ अ० ॥ रक्षक जिन छ कायना, वली मोहनिवारक स्वामी रे ॥ श्रमण संघ रक्षक सदा, तेणें गोप ईश अभिराम रे ॥ ५ ॥ ते० ॥ अ० ॥ भाव अहिंसक पूर्णता, माहणता उपदेश रे ॥ धर्म अहिंसक नीपनो, माहण जगदीश विशेष ॥ ६ ॥ मा० ॥ अ० ॥ पुष्ट कारण अरिहंतजी, तारक ज्ञायक मुनिचंद रे ॥ मोचक सर्व विभावथी, झींपावे मोह अरिंद रे ॥ ७ ॥ झीं० ॥अ०॥ काम कुंभ सुरमणि परे, सहेजें उपगारी थाय रे ॥ देवचंद्र सुखकर प्रभु, गुण गेह अमोह अमाय रे ॥ ८ ॥ गु० ॥ अ० ॥ इति श्री विशालजिन स्तवनं ॥

# अथ एकादश श्रीवज्रंधर जिन स्तवनं ॥

॥ नदी यमुनाके तीर ॥ ए देशी ॥

विहरमान भगवान, सुणो मुझ विनति ॥
जगतारक जगनाथ, अछो त्रिभुवन पति ॥
भासक लोकालोक, तिणें जाणी छती ॥ तो
पण वितक वात, कहूं छुं तुझ प्रति ॥ १ ॥
हूं सरूप निज छोडि, रम्यो पर पुद्गलें ॥
॥ झील्यो उलट आणी, विषय तृष्णाजलें ॥
आश्रव बंध विभाव, करुं रुचि आपणा ॥ भू-
ल्यो मिथ्यावास, दोष द्युं परभणी ॥ २ ॥
अवगुण ढांकण काज, करुं जिनमत क्रिया ॥
न तजुं अवगुण चाल, अनादिनी जे प्रिया ॥
दृष्टिरागनो पोष, तेह समकित गणुं ॥ स्याद्वा-

दनी रीत, न देखुं निजपणुं ॥ ३ ॥ मन तनु चपल स्वभाव, वचन एकांतता ॥ वस्तु अनंत स्वभाव, न भासे जे छता ॥ जे लोकोत्तर देव, नमूं लौकिकथी ॥ दुर्लभ सिद्ध स्वभाव, प्रभो तहकीकथी ॥ ४ ॥ महाविदेह मझार के, तारक जिनवरु ॥ श्रीवज्रंधर अरिहंत, अनंत गुणाकरु ॥ ते निर्यामक श्रेष्ठ, सही मुझ तारशे ॥ महावैद्य गुणयोग, रोग भव वारशे ॥ ५ ॥ प्रभुमुख भव्य स्वभाव, सुणुं जो माहरो ॥ तो पामे प्रमोद, एह चेतन खरो ॥ थाय शिव पद आश, राशि सुखवृंदनी ॥ सहज स्वतंत्र स्वरूप, खाण आणंदनी ॥ ६ ॥ वलगा जे प्रभुनाम, धाम ते गुणतणा ॥ धारो चेतन राम, एह थिरवासना ॥ देवचंद्र जिनचंद्र, हृदय स्थिर थापजो ॥ जिन आणायुत भक्ति, शक्ति

मुझ आपजो ॥ ७ ॥ इति एकादश श्री वज्रं-
धर जिन स्तवन ॥ ११ ॥

## ॥ अथ द्वादश श्री चंद्राननजिन स्तवनं ॥

॥ वीरा चंदला ॥ ए देशी ॥

चंद्राननाजिन, सांभळीए अरदास रे ॥
मुझ सेवक भणी, छे प्रभुना निश्वासो रे ॥१॥
॥ चं० ॥ भरतक्षेत्र मानवपणो रे, लीधो दुःसम
काल ॥ जिनपूरवधर विरहथी रे, दुलहा सा-
धन चालो रे ॥ २ ॥ चं० ॥ द्रव्य क्रिया रु-
चि जीवडा रे, भाव धर्मरुचिहीन ॥ उपदेशक
पण तेहवा रे, शुं करे जीव नवीन रे ॥ ३ ॥
चं० ॥ तत्त्वागम जाणंग तजी रे, बहुजन सं-
मत जेह ॥ मूढ हठी जन आदरया रे, सुगुरु
कहावे तेह रे ॥ ४ ॥ चं० ॥ आणा साध्य

विना क्रिया रे, लोक मान्या रे धर्म ॥ दंसण नाण चारित्रनो रे, मूळ न जाण्यो मर्म रे ॥ ५ ॥ गच्छ कदाग्रह साचवे रे, माने धर्म न जाण शुद्ध रे ॥ ६ ॥ चं० ॥ तत्त्वरासिक जन थोडला रे. बहुलो जन संवाद ॥ जाणो छो जिनराजजी रे, सघला एह विवाद रे, ॥ ७ ॥ चं० ॥ नाथ चरण वंदनतणो रे मनमां घणो उमंग ॥ पुण्य विना किम पामाय रे, प्रभुसेवननो रंग रे ॥ ८ ॥ चं० जगतारक प्रभु वांदीए रे, महाविदेह मझार ॥ वस्तुधर्म स्याद्वादता रे, सुणि करियें निर्धार रे ॥ ९ ॥ चं० ॥ तुझ करुणा सहु उपर रे, सरखी छे महाराय ॥ पण अविराधक जीवने रे, कारण सफलुं थाय रे ॥ १० ॥ चं० ॥ एहवा पण भाव जीवने रे, देव भक्ति आधार

॥ पभुसमरणथी पामीयं रे, देवचंद्र पद सार रे ॥ ११ ॥ चं० ॥ इति ॥

## ॥अथ त्रयोदश श्री चंद्रबाहुजिन॥ स्तवनं ॥

॥ श्री अरनाथ उपासना ॥ ए देशी ॥

चंद्रबाहुजिन सेवना, भवनाशिनी तेह ॥ परपरिणतिनो पासने, निष्कासन रेह ॥ १ ॥ ॥ चं० ॥ पुद्गलभाव आ शंसना, उद्घासन केतु ॥ सम्यगदर्शन वासना, भासनचरण समेतु ॥ २ ॥ चं० ॥ त्रिकरण योग प्रशंसना, गुणस्तवना रंग ॥ वंदन पूजन भावना, निजपावना अंग ॥ ३ ॥ चं० ॥ परमातम पद कामनाशन एह ॥ सत्ताधर्म प्रकाशना, करवा गुणगेह ॥ ४ ॥ चं० ॥ परमेश्वर आलंबना,

राच्या जेह जीव ॥ ।निर्मळ साध्यनी साधना, साधे तेह सजीव ॥ ५ ॥ चं० ॥ परमानंद उपायवा, प्रभु पुष्ट उपाय ॥ तुझ सम तारक सेवतां परसेव न थाय ॥ ६ ॥ चं० ॥ शुद्धातम संपत्तितणा, तुम्हे कारण सार ॥ देवचंद्र अरिहंतनी, सेवा सुखकार ॥ ७ ॥चं०॥ इति चंद्रबाहुजिन स्तवनं ॥

## ॥ अथ चतुर्दश श्री भुजंगस्वामि स्तवनं ॥

॥ देशी लूअरनी ॥

पुष्कलावइ विजय हो, के विचरे तीर्थपति ॥ प्रभुचरणने सेवे हो, के सुर नर सुरपति ॥ जसु गुण प्रगटचो हो, के सर्व प्रदेशमां आतम गुणना हो, के विकसा अनंत रमां

॥ १ ॥ सामान्य स्वभावनी हो, के परिणति असहाइ ॥ धर्मविशेषनी हो, के गुणने अनुजाइ ॥ गुण सकल प्रदेशें हो, के निजनिज कार्य करे ॥ समुदाय प्रवर्त्ते हो, के कर्त्ता भाव धरे ॥ २ ॥ जड द्रव्य चतुष्कें हो, के करताभाव नहीं ॥ सर्व प्रदेशें हो, के वृत्ति विभन्न कहीं ॥ चेतन द्रव्यने हो, के सकल प्रदेश मिले ॥ गुणवर्तना वर्त्ते हो, के वस्तुने सहज वलें ॥३॥ शंकर सहकारी हो, के सहज गुण वरते ॥ द्रव्यादिक परिणति हो, के भावें अनुसरते ॥ दानादिक लब्धि हो, के न हुव सहाय विना ॥ सहकार अकंपे हो, के गुणना वृत्ति घना ॥ ४ ॥ पर्याय अनंता हो, के जे एक कार्यपणे ॥ वरते तेहने हो, के जिनवर गुण पभणे ॥ ज्ञानादिक गुणना हो, के वर्तना जीव प्रतें

॥ धर्मादिक द्रव्यने हो, के सहकार करने॥५॥ ग्राहक व्यापकता हो, के प्रभु तुम धर्म रमी ॥ आतम अनुभवथी हो, के परिणति अन्य वमी ॥ तुझ शक्ति अनंती हो, के गातांने ध्यातां ॥ मुझ शक्ति विकासन हो, के थाये गुण रमतां ॥ ६ ॥ इम निज गुणभोगी हो, के स्वामि भुजंग मुदा ॥ जे नित्य वंदे हो, के ते नर धन्य सदा, देवचंद्र प्रभुनी हो, के पुण्ये भक्ति सधे ॥ आतम अनुभवनी हो, के नित्य नित्यशक्ति वधे ॥ ७ ॥ इति ॥ १४ ॥

## ॥ अथ पंचदश श्री ईश्वरदेवजिन स्तवनं ॥

॥ काल अनंतानंत ॥ ए देशी ॥

सेवो ईश्वर देव, जिणें ईश्वरता हो निज अद्भुत वरी ॥ तिरोभावनी शक्ति, आविर्भावें

हो सहु प्रगट करी ॥ १ ॥ अस्तित्वादिक धर्म, निर्मळ भावें हो सहुने सर्वदा ॥ नित्यत्वादि स्वभाव, ते परिणामी हो जडचेतन सदा ॥२॥ कर्त्ता भोक्ता भाव, कारक ग्राहक हो ज्ञान चारित्रता ॥ गुणपर्याय अनंत, पाम्या तुमचा हो पूर्ण पवित्रता ॥ ३ ॥ पूर्णानंद स्वरूप, भोगी अयोगी हो उपयोगी सदा ॥ शक्ति सकळ स्वाधीन, वरते प्रभुनी हो जे न चले कदा ॥ ४ ॥ दास विभाव अनंत, नासे प्रभुजी हो तुज अवलंबनें ॥ ज्ञानानंद महंत, तुज सेवाथी हो सेवकने बने ॥ ५ ॥ धन्य धन्य ते जीव, प्रभुपद वंदी हो जे देशना सुणे ज्ञान क्रिया करे शुद्ध, अनुभव योगें हो निज साधक पणे ॥ ६ ॥ वारंवार जिनराज, तुज पद सेवा हो होजो निर्मळी ॥ तुज शासन अ-

नुजाइ, वासन भासन हो तत्त्वरमण वळी ॥ ॥ ७ ॥ शुद्धातमनिज धर्म, रुचि अनुभवथी हो साधन सत्यता ॥ देवचंद्र जिनचंद्र, भक्ति पसायें हो होशे व्यक्तता ॥ ८ ॥ इति पंचदश श्री ईश्वरनामाजिन स्तवनं ॥ १५ ॥

## ॥ अथ षोडश श्री नमिप्रभजिन स्तवनं ॥

अरज अरज सुणोने रूडा राजीया होजी ॥ ए देशी ॥

नमिप्रभ नमि प्रभप्रभुजी वीनवुं होजी, पामी पामीवर प्रस्ताव ॥ जाणो छो जाणो छो• विण विनवे हो जी, तोपण दासस्वभाव ॥ ॥ १ ॥ न० ॥ हुं करता हुं करता पर भावनु होजी, भोक्ता पुद्गलरूप ॥ ग्राहक व्यापक ए- हनो हो जी, राच्यो जड भव भूप ॥ २ ॥

॥ न० ॥ आतम आतम धर्म विसारीयो हो जी, सेव्यो मिथ्या माग ॥ आश्रव आश्रव बंधपणुं करयुं हो जी, संवरनिर्ज्जर त्याग ॥ ॥ ३ ॥ न० ॥ जडचल जडचल कर्म जे देहने हो जी, जाण्युं आतम तत्त्व ॥ बहिरातम बहिरातमता में ग्रही हो जी, चतुरंगे एकत्व ॥ ४ ॥ न० ॥ केवल केवल ज्ञानमहोदधि हो जी, केवल दंसण बुद्ध ॥ वीरज वीरज अनंत स्वभावनो हो जी, चारित्र क्षायिक शुद्ध ॥ ५ ॥ न० ॥ विश्रामि विश्रामि निज-भावना हो जी, स्याद्वादी अप्रमाद ॥ परमातम परमातम प्रभु देखतां हो जी, भागी भ्रांति अनाद ॥ ६ ॥ न० ॥ जिनसम जिनसम सत्ता ओळखी हो जी, तसु प्रागभावनी इह ॥ अंतर अंतर आतमता लही हो जी, पर-

पगिणाति निरीह ॥ ७ ॥ न० ॥ प्रतिछंदें प्रतिछंदे जिनराजनें हो जी, करता साधक भाव ॥ देवचंद्र देवचंद पद अनुभवे हो जी, शुद्धातम प्राग भाव ॥ ८ ॥ न० ॥ इति षोडश नमिप्रभजिन स्तवनं ॥

## ॥ अथ सप्तदश श्री वीरसेन जिन स्तवनं ॥

॥ लाछलदे मात मल्हार ॥ ए देशी ॥

वीरसेन जगदीश, ताहरी परम जगीश, आज हो दीसे रे वीरजता त्रीभुवनथी घणी जी ॥ १ ॥ अणहारी अशरीर, अक्षय अजय अतिधीर, आज हो अविनाशी अलेशी ध्रुव प्रभुता बणी जी ॥ २ ॥ अतींद्रिय गत कोह, विगतमाय मय लोह, आज हो सोहे रे मोह जगजनता भणी जी ॥ ३ ॥ अमर अखंड

अरूप, पूर्णानंद स्वरूप, आज हो चिद्रूपें दीपे थिर समता धणी जी ॥ ४ ॥ वेदरहित अकषाय, शुद्ध सिद्ध असहाय, आज हो ध्यायकें मायकने ध्येयपदे ग्रह्यो जी ॥ ५ ॥ दानलाभ निज भोग, शुद्धस्वगुण उपभोग, आज हो अजोगी करता भोक्ता प्रभु लह्यो जी ॥ ६ ॥ दरिसण ज्ञान चारित्र, सकल प्रदेश पवित्र, आज हो निर्मल निस्संगी अरिहा वंदीयें जी ॥ ७ ॥ देवचंद्र जिन चंद्र, पुर्णानंदनो वृंद, आज हो जिनवरसेवाथी चिर आनंदीये जी ॥ ८ ॥ इति ॥

## ॥ अथ अष्टादश श्री महानन्द-जिन स्तवनं ॥

॥ तट यमुनानुं रें, अति रलीयामणुं रे ॥
॥ ए देशी ॥

महाभद्र जिनराज, राज राज विराजे

हो आज तुमारडो जी ॥ क्षायिकवीर्य अनंत, धर्म अभंग हो तुं साहिब बडो जी ॥ १ ॥ हुं बलिहारी रे श्री जिनवरतणी रे ॥ कर्त्ता भोक्ता भाव, कारण कारण हो तुं स्वामी छतो जी ॥ ज्ञानानंद प्रधान, सर्व वस्तुनो हो धर्म प्रकाशतो जी ॥ २ ॥ हुं० ॥ सम्यग्दर्शन मित्त, स्थिर निर्द्धारें रे अविसंवादता जी ॥ अव्यावाधि समाधि, कोश अनेश्वर रे, निज आनंदता जी ॥ ३ ॥ हुं० ॥ देश असंख्य प्रदेश, निजनिज रीतें रे गुण संपत्ति भरया जी ॥ चारित्र दुर्ग अभंग, आतम शक्तें हो परजय संचर्या जी ॥ ४ ॥ हुं० ॥ धर्मक्षमादिक सैन्य, परिणति प्रभुता हो तुज बल आकरोजी ॥ तत्त्व सकळ प्रागभाव, सादि अनंती रे रीतें प्रभु धरयो जी ॥५॥हुं०॥द्रव्य

भाव अरि लेश, सकल निवारी रे साहिब अवतर्यो जी ॥ सहज स्वभाव विलास, भोगी उपयोगी रे ज्ञान गुण भर्यो जी ॥६ ॥ हुं० ॥ आचारिज उवझाय, साधक मुनिवर हो देस विरत धरु जी ॥ आतम सिद्ध अनंत, कारण रूपें रे योग क्षेमंकरु जी ॥७॥हुं० ॥ सम्यग्दृष्टि जीव, आणारागी हो सहु जिनराजना जी ॥ आतम साधन काज, सेवे पदकज हो श्री महाराजनां जी ॥ ८ ॥ हुं० ॥ देवचंद्र जीनचंद्र, भगतें राचो हो भवि आतम रुचि जी अव्यय अक्षय शुद्ध, संपत्ति प्रगटे हो सत्तागत शुचि जी ॥ ९ ॥ हुं० ॥

## ॥ अथ एकोनविंश श्री देवजसा जिन स्तवनं ॥

॥ महाविदेह क्षेत्र सोहामणुं.—ए देशी ॥

देवजसा दरिसण करो, विघटे मोह वि-

भाव लाल रे ॥ प्रगटे शुद्ध स्वभावता, आनंद लहरी दाव लालरे ॥ १ ॥ दे० ॥ स्वामी वसो पुष्कर वरें, जंबू भरते दास लाल रे ॥ क्षेत्र विभेद घणो पड्यो, किम पोहोंचे उल्लास लाल रे ॥ २ ॥ दे० ॥ होवत जो तनु पांखडी, आवत नाथ हजूर लाल रे ॥ जो होती चित आंखडी, देखत नित्य प्रभु नूर लाल रे ॥३॥ दे०॥ शासनभक्त जे सुरवरा, विनवुं शीष नमाय लाल रे ॥ कृपा करो मुज उपरें, तो जिनवंदन थाय लाल रे ॥ ४ ॥ दे० ॥ पूछुं पूर्व विराधना, शी कीधी इण जीव लाल रे ॥ अविरत मोह टले नहीं, दीठे आगम दीव लाल रे ॥ ५ ॥ दे० ॥ आतम शुद्ध स्वभावने, बोधन शोधन काज लाल रे ॥ रत्नत्रयि प्राप्ति तणो, हेतु कहो महाराज लाल रे ॥ ६ ॥ दे०

॥ तुज सरिखो साहिब मिल्यो, भांजे भवभ्रम टेव लाल रे ॥ पुष्टालंबन प्रभु लहि, कोण करे परसेव लाल रे ॥ ७ ॥ दे० ॥ दीनदयाल कृपालुओ, नाथ भविक आधार लाल रे ॥ देवचंद्र जिन सेवना, परमामृत सुखकार लाल रे ॥ ८ ॥ दे० ॥

॥ इति श्री देवजसा जिन स्तवनं ॥

## ॥ अथ विंशति श्री अजितवीर्य जिन स्तवनं ॥

॥ अजितवर्य जिन विचरतारे ॥ मनमोहनारे लाल ॥ जंगम सुरतरु सारिखोरे ॥मन० सेवे धन्य धन्य तेह रे ॥ भवि० ॥ १ ॥ जिनगुण अमृत पानथी रे ॥म० ॥ अमृत क्रिया सुपसाय रे ॥ भ० ॥ अमृत क्रिया अनुष्ठान-

थी रे ॥ म० ॥ आतम अमृत थाय रे॥ म०
॥ २ ॥ प्रीति भक्ति अनुष्ठानथी रे ॥ म० ॥
वचन असंगी सेवे रे ॥ म० ॥ कर्तातन्मयता
लहे रे ॥ म० ॥ प्रभु भक्ति नित्य मेव रे ॥
म० ॥ ३ ॥ परमेश्वर अवलंबने रे ॥ म० ॥
ध्याता ध्येय अभेद रे ॥ म० ॥ ध्येय समाप्ति
हुवे रे ॥ म० ॥ साध्य सिद्धि अविच्छेद रे ॥
म० ॥ ४ ॥ जिन गुण राग परागथी रे ॥
म० ॥ वासित मुझ परिणाम रे ॥ म० ॥ त-
जशे दुष्ट विभावता रे ॥ म० ॥ सरशे आतम
काम रे ॥ म० ॥ ५ ॥ जिन भक्तिरत चित-
ने रे ॥ म० ॥ वेधकरस गुण प्रेम रे ॥ म० ॥
सेवक जिनपद पामशे रे ॥ म० ॥ रसवेधित
अय जेम रे ॥ म० ॥ ६ ॥ नाथ भक्तिरस
भावथी रे ॥ म० ॥ तृण जाणुं परदेव रे ॥म०

चिंतामणि सुरतरुथकी रे ॥ भ० ॥ फरश्यो आतमराम रे ॥ भ० ॥ निश्चमाकंचनता लहे रे ॥ भ० ॥ लाह ज्युं पारस पाम रे ॥ भ० ॥ ८ ॥ निर्मळ तत्त्वरुचि थइ र ॥ भ० ॥ करजो जिनपति भक्ति रे ॥ भ० ॥ देवचंद्र पद पामशो रे ॥ भ० ॥ परम महोदय युक्ति रे ॥ भ० ॥ ९ ॥ इति ॥ २० ॥

## ॥ कलश. ॥

॥ राग धन्याश्री ॥

वंदो वंदो रे निनवर विचरंता वंदो ॥ किर्त्तन स्त्तवन नमन अनुसरता, पूर्व पाप निकंदो रे ॥ जिनवर विचरंता वंदो ॥ १ ॥ जंबूद्वीपे चार जिनेश्वर, घातकी आठ आणंदो ॥ पुष्कर अर्द्धे आठ महामुनि, सेवे चोसठ इंदो रे ॥ जि० ॥ २ ॥ केवळी गणधर साधु

साधवी, श्रावक श्राविका वृंदो ॥ जिनमुख धर्म अमृत अनुभवतां, पामे मन आणंदो रे ॥ जि० ॥ ३ ॥ सिद्धाचल चौपास रहिने, गायो जिनगुण छंदो ॥ जिनपति भक्तिनो मारग, अनुपम शिवसुख कंदो रे ॥ जि० ॥ ४ ॥ खरतर गच्छ जिनचंद्र सूरिवर, पुण्य प्रधान मुणिंदो ॥ सुमतिसागर साधु रंग सुवाचक, पीधो श्रुत मकरंदो रे, ॥ जि० ॥ ५ ॥ राजसार पाठक उपगारी, ज्ञान धर्म दिणंदो ॥ दीपचंद सदगुरु गुणवंता, पाठक धार गयंदो रे ॥ जि० ॥ ६ ॥ देवचंद्र गणि आतम हेते, गाया वीश जिणंदो ॥ रूद्धि वृद्धि सुखसंपत्ति प्रकटे, सुजस महोदय वृंदो रे ॥ जि० ॥७॥ इति पंडित श्री देवचंद्रजी कृत विंशति विहरमान जिन स्तवनानि संपूर्णानि ॥

# देवचंद्रजीकृत गतचोविशी.

## श्री केवलज्ञानीजिन स्तवन.

नामे गाजे परम आल्हाद प्रगटे अनुभव रस आस्वाद; तेथी थाये मति सुप्रसाद, सुणतां भाजेरे कांइ विषय विषादरे. जिणंदा तहारा नामथी मन भीनो, ॥ प्र० ॥ १ ॥ खेत्र असंख्य प्रदेश, अनंत पर्याय निवेश; जाणग शक्ति अशेश, तेहथी जाणे कांइ सकळ विशेषरे. ॥ जि० ॥ २ ॥ सर्व प्रमेय प्रमाण, जस केवळ नाण पहाण; तिण केवळनाणी अभिहाण, जस ध्यावेरे कांइ मुनीवर झाणरे. ॥ जि० ॥ ३ ॥ ध्रुव परणति छति जास, परणति परिणामे त्रिक रास; कर्त्तापद प्रवृत्ति प्रकाश, अस्ति नास्तिरे

काइ सर्वनो भासरे ॥ जि० ॥ ४ ॥ सामान्य स्वभावनो बोध, केवळ दर्शन शोधः सहकार अभावें रोध, समयंतररे कांइ बोध प्रबोधरे. ॥ जि० ॥ ५ ॥ कारक चक्र समग्ग, ते ज्ञायक भाव विलग्ग; परमभाव संसग्ग, एक रीतेरे कांइ थयो गुणवग्गरे. ॥ जि० ॥ ६ ॥ इम सालंबन जिन ध्यानभावे, साधे तत्व विधान; लहे पूर्णानंद अमान, तेहथी थायेरे कांइ शिव इशानरे. ॥ जि० ॥ ७॥ दास विभाव अपाय, नासे प्रभु सुपसाय; जे तन्मयतायें ध्याय, सही तेहनेरे देवचंद्र पद थायरे. ॥ जि० ॥ ८ ॥

---

## श्री निर्वाणी प्रभुजिन स्तवनं.

( वीरजी प्यारा हो वीरजी प्यारा—ए देशी. )

प्रणमुं चरण परम गुरुजिनना, हंस ते

मुनि जनमनना; वासी अनुभव नंदन वनना, भोगी आनंद घनना. मोरा स्वामी हो, तोरो ध्यान धरिजे; ध्यान धरिजेहो सिद्धि वरिजे, अनुभव अमृत पीजे. ॥ मो० ॥ १ ॥ सकळ प्रदेश समागुण धारी, निजनिजकारज कारी; निराकार अवगाह उदारी, शक्ति सर्व विस्तारी ॥ मो० ॥ २ ॥ गुणगुण प्रति पर्याय अनंता, ते अभिळाप्य स्वतंता; अनंतगुणा नाभिळापि संता, कार्य व्यापार करंता. ॥ मो० ॥ ३ ॥ छति अविभागी पर्ययव्यक्ते, कारज शक्ति प्रवर्ते; ते विशेष सामर्थ प्रशक्ते, गुण परिणाम अभिव्यक्त. ॥ मो० ॥ ४ ॥ निरवाणी प्रभु शुद्ध स्वभावी, अभय निरायु अपावी; स्याद्वादी यमनीगतरावी, पूरण शक्ति प्रभावी. ॥ मो० ॥ ५ ॥ अचळ अखंड स्वगुण आरामी, अ-

नंतानंद विसरामी;सकल जीव खेदज्ञ सुस्वामी निरामगंधी अकामी. ॥ मो० ॥ ६ ॥ निःसंगी सेवनथी प्रगटे, पूर्णानंदी इहा; साधन शक्ते गुण एकत्वे, सीझे साध्य समीहा. ॥मो० ॥७॥ पुष्ट निमित्तालंबन ध्याने, स्वालंबन लय ठाने; देवचंद्र गुणने एक ताने, पोहोचे पूरण थाने. ॥ मो० ॥ ८ ॥

---

## श्री सागरप्रभुजिन स्तवनं.

( शीतलजिन सहेजानंदी–ए देशी. )

गुणआगर सागर स्वामी, मुनि भाव जिवन निःकामी; गुणकरणे कर्तृ प्रयोगी, प्राग्भावी सत्ता भोगी. सुहंकर भव्य ए जिन गावो, जिम पूरण पदवी पावो. ॥ सु० ॥ १ ॥ सामान्य

स्वभाव स्वपरना, द्रव्यादि चतुष्टय धरना; देखे दर्शन रचनायें, निजवीर्य अनंत सहायें. ॥ सु० ॥ २ ॥ तेहने ते जाणे नाण, ए धर्म विशेष पहाण; सावय वीकारज शक्ते, अविभागी पर्यायवक्ते. ॥ सु० ॥ ३ ॥ जे कारण कारज भावे, वरते पर्याय प्रभावे; प्रतिसमय व्यय उत्पादि, ज्ञेयादिक अनुगते सादि. ॥सु० ॥ ४ ॥ अविभागी पर्यय जेह, समवायी कार्यना गेह; जे नित्य त्रिकाळी अनंत, तसु ज्ञायक ज्ञान महंत. ॥ सु० ॥ ५ ॥ जे नित्य अनित्य स्वभाव, ते देखे दर्शन भाव; सामान्य विशेषना पिंड, द्रव्यार्थिक वस्तु प्रचंड. ॥ सु० ॥ ६ ॥ इम केवळ दर्शन नाण, सामान्य विशेषनो भाण; द्विगुण आतम श्रद्धाए, चरणादिक तसु व्यवसाये. ॥ सु० ॥ ७ ॥ द्रव्य

जेह विशेष परिणामी, ते कहीये पज्जव नामी; छति सामर्थ्य दुभेदे, पर्याय विशेष निवेदे. ॥ सु० ॥ ८ ॥ तसु रमणे भोगनो वृंद, अ-प्रयासी पूर्णानंद; प्रगटी जस शक्ति अनंती, निज कारज वृत्ति स्वतंत्री. ॥ सु० ॥ ९ ॥ गुण द्रव्य सामान्य स्वभावी, तीरथपति त्यक्त विभावी; प्रभु आणा भक्ते लीन, तिणे देवचंद्र पद कीन. ॥ सु० ॥ १० ॥

---

## ४ श्री महाजशजिन स्तवन.

( राग फाग. )

आत्म प्रदेश रंग थल अनोपम, सम्यग दर्शन रंगरे; निज सुखके सधइया, तुं तो निज गुण खेल वसंतरे ॥ निज० ॥ परपरिणति चिंता तजि जिनमें, ज्ञान सखाके संग ॥ नि०

॥ १ ॥ वास बरास सु रुचि केसरघन, छांटो परम प्रमोदरे; ॥ नि० ॥ आतम रमण गुला-लकी लाली, साधक शक्ति विनोदरे ॥ नि० ॥ २ ॥ ध्यान सुधारस पान मगनता, भोजन सहज स्वभोगरे; ॥ नि० ॥ रिझ एकत्वता तानमें वाजे, वाजीत्र सनमुख योगरे ॥ नि० ॥ ३ ॥ शुकलध्यान होरीकी ज्वाला, जाले कर्म कठोररे; ॥ नि० ॥ शेषप्रकृतिदल क्षिरण निर्जरा, भस्म खेल अति जोररे ॥ नि० ॥४॥ देव महाजस गुण अवलंबन, निर्भय परणति व्यक्तिरे; ॥ नि० ॥ ज्ञाने ध्याने अति बहु माने, साधे मुनि निज शक्तिरे. ॥ नि० ॥ ५ ॥ स-कळ अजोग अलेश असंगत, नाहि होवे सि-द्धरे ॥ नि० ॥ देवचंद्र आणामें खेले, उत्तम गुहि प्रसिद्धरे ॥ नि० ॥ ६ ॥

# ५ श्री विमलजिन स्तवन.

( कडखानी–देशी. )

धन्य तुं धन्य तुं धन्य जिनराज तुं, धन्य तुज शक्ति व्यक्ति सनूरी; कार्य कारण दशा सहज उपगारता, शुद्ध कर्तृत्व परिणाम पूरी ॥ ध० ॥ १ ॥ आत्म प्रभाव प्रतिभास कारजदशा, ज्ञान अविभाग पर्यय प्रवृते; एम गुण सर्व निज कार्य साधे प्रगट; ज्ञेयदस्यादि कारण निमिते ॥ ध० ॥ २ ॥ दास बहुमान भासन रमण एकता, प्रभु गुणालंबनी शुद्ध थाये; बंधना हेतु रागादि तुज गुण रशी, तेह साधक अवस्था उपाये ॥ ध० ॥ ३ ॥ कर्म जंजाळ थुं जनकरण योग जे, स्वामी भक्ति रम्या थीर समाधि; दान तप सीळव्रत नाथ आणा-

विणा, थइ बाधक करे भव उपाधी ॥ ध० ॥ ४ ॥ सकळ प्रदेश समकाळ सवि कार्यता, करण सहकाळ कर्तृत्व भावो; द्रव्य परदेश पर्याय आगम पणे, अचळ असहाय अक्रीय दावो ॥ ध० ॥ ५ ॥ उत्पाति नास ध्रुव सर्वदा सर्वनी, खड्गुणी हानी वृद्धि अन्युनो। अस्ति नास्तित्व सत्ता अनादीथको, परिणमन भावथी नही अजुनो ॥ ध० ॥ ६ ॥ इणीपरे विमळ जिनराजनि विमलता, ध्यान मन मंदिरे जेह ध्यावे; ध्यान पृथकत्व सविकल्पता रंगथीरे, ध्यान एकत्व अविकल्प आवे ॥ ध० ॥ ७ ॥ सवीतरागी असंगी अनंगी प्रभु, नाण अभयास अविनाश धारी; देवचंद्र शुद्ध सत्तारसी सेवतां, संपदा आत्म शोभा वधारी ॥ ध० ॥ ८ ॥

---

# ६ श्री सर्वानुभूतिजिन स्तवन.

जगतारक प्रभु वीनवुं, वीनतडी अवधाररे; तुज दरशण विणुं हुं भम्यो, काळ अनंत अपाररे ॥ ज० ॥ १ ॥ सूहुम निगोद भवे वस्यो, पुद्गल परिअट्ट अनंतर; अव्यवहार पणे भम्यो, क्षुल्लक भव अत्यंतरे ॥ ज० ॥२॥ व्यवहारे पण तिरिव गते, इग वणखंड असन्निरे; असंख्य परावर्तन थयां, भमियो जीव अधन्नरे ॥ ज० ॥ ३ ॥ सूक्षम थावर चारमें, कालह चक्र असंख्यरे; जनम मरण बहुलां कर्यां, पुद्गल भोगने कंखरे ॥ ज० ॥ ४ ॥ ओघे बादर भावमें, बादर तरुपण एमरे; पुद्गल अढी लागट वस्यो, नाम निगोदे प्रेमरे, ॥ ज० ॥ ५ ॥ थावर थूळ परितमे, सीत्तर

कोडा कोडिरे; आयर भम्यो प्रभु नावि मिल्या, मिथ्या अविराति जोडिरे ॥ ज० ॥ ६ ॥ विगल पणे लागट वस्यो, संखिज वास हजाररे; बादर पज्ज वणस्सइ, भू जल वायु मझाररे. ज० ७ अनल विगल पज्जतमे, तसभव आयु प्रमाणरे; शुद्ध तत्व प्राप्ति विना, भटक्यो नव नव ठाणरे. ॥ ज० ॥ ८ ॥ साधिक सागर सहस दो, भोगवीयो तस भावेरे; एक सहस साधिक दधि, पंचेंद्रि पद दावेरे. ॥ज०॥९॥ पर परणित रागी पणे, पर रस रंगे रक्तरे; पर ग्राहक रक्षक पणे, परभोगे आशक्तरे, ॥ ज० ॥ १० ॥ शुद्ध स्वजाति तत्वने, बहु माने तल्लीनरे; ते विजाति रस तातजी, स्व स्वरुप रस पीनरे ॥ ज० ॥ ११ ॥ श्री सर्वानुभूति जिनेश्वरु, तारक क्षायक देवरे; तुज

चरण सरण रह्यो, टळे अनादि कुटेवरे. ॥ज० ॥ १२ ॥ सबला साहिब ओळगे, आतम सबळो थायरे; बाधक परणित सवि टळे, साधक सिद्धि कहायरे. ॥ ज० ॥ १३ ॥ कारणथी कारज हुये, ए परतीत अनादिरे; माहरा आतम सिद्धिना, निमित हेतु प्रभु सादिरे. ॥ ज० ॥ १४ ॥ अविसंवादन हेतुनी, द्रढ सेवा अभ्यासरे; देवचंद्र पद नीपजे, पूर्णानंद विलासरे ॥ ज० ॥ १५ ॥

---

## ७ श्रीधरजिन स्तवन.

( रसीयानी देशी. )

संमुख मुख प्रभुने न मळी शक्या, तो पण वात कहाय; ॥ जिणंदजी ॥ निज पर वी-

तक वात लहो सहु, पण मने किम पातिन आ-
य. ॥ जि. से. ॥ १ ॥ भव्य अभव्य परित्त
अनंततो, कृश्न शुकल पक्ष धार ॥ जि. से. ॥
आराधक विराधक रीतनो, पूछी करत निर-
धार. ॥ जि० से० ॥ २ ॥ किण काळे का-
रण केहवे मळे, थाशे मुजने हो सिद्ध. जि०
आतम तत्व रुचि निज रिद्धनी, लहिशुं सर्व
समृद्धि. ॥ जि० से० ॥ एक वचन जिन आ-
गमनो लही, नीपाव्यां निज काम ॥ जि० ॥
एटले आगम कारण संपजे, ढील थइ किम
आम. ॥ जि० से० ॥ ४ ॥ श्रीधरजिन नाम
बहु निस्तरया अल्प प्रयासेहो जेह; ॥ जि०
मुज सरिखो एटले कारण लहे, न तरे कहो
किम तेह. ॥ जि० से० ॥ कारण जोगे साधे
तत्वने, नवि समरयो उपादान; ॥ जि० ॥

श्री जिनराज प्रकाशो मुज प्रते, तेहनो कोण निदान. ॥ जि० से० ॥ भवरोगना वैद्य जिनेश्वरु, भावौषध तुज भक्ति ॥ जि० ॥ देवचंद्रने श्री अरीहंतनो, छे आधार ए व्यक्ति ॥ जि० से० ॥ ७ ॥

---

## ८ श्री दत्तप्रभु स्तवन.

( राग–धमाल )

जिन सेवनथें पाइयेहो, शुद्धातम मकरंदा ॥ जि० ॥ तत्व प्रतीत वसंत रुतु प्रगटी, गइ शिशिरकु प्रतीत ललना; दुरमति रजनी लघु भइहो, सदबोध दिवस वदीत. ॥ जि० ॥ १ ॥ साध्य रुचि सुसखा मलीहो, निज गुण चरचा खेल ॥ ल० ॥ बाधक भावकी नंदनाहो,

बुध सुखगारिको मळ ॥ जि० ॥ २ ॥ प्रभु गुन गानशुं छंदशुंहो, वाजित्र अतिशय तान; ॥ ल० ॥ शुद्ध तत्व बहु मानताहो, खेलत प्रभुगुन ध्यान. ॥ जि० ३ ॥ गुण बहुमान गुलालसुंहो, लाल भए भविजीव ॥ ल० ॥ राग प्रशस्तकी धुमपेहो, विभाव विडारे अतीव ॥ जि० ॥ ४ ॥ जिनगुण खेलमें खेलतेहो, प्रगट्यो निज गुनखेल ॥ ल० ॥ आतम घर आतम रमे हो, समता सुमतिके मेल ॥ जि० ॥ ५ ॥ तत्व प्रतीत प्याले भरे हो, जिनवाणी रसपान ॥ ल० ॥ निर्मल भक्ति लाली जगीहो, रीजे एकत्वता तान. ॥ जि० ॥ ६ ॥ भव वैराग अबीर शुं हो, चरन रमन सुं महंत ॥ ल० ॥ सुमति गुपति वनिता रमेहो, खेलेहो शुद्ध वसंत. ॥ जि० ॥ ७ ॥ चाचर गुन रसि-

यालियेहो, निज साधक परिणाम; ॥ ल० ॥ कर्म प्रकृति अरति गइहो उलसित अम्रित उद्दाम. ॥ जि० ॥ ८ ॥ थिर उपयोग साधन मुखेहो, पिचकारीकी धार ॥ ल० ॥ उपशम रस भरी छांटतांहो, गइ तताइ अपार. ॥ जि० ॥ ९ ॥ गुन पर्याय विचारतांहो, शक्ति व्यक्ति अनुभूति ॥ ल० ॥ द्रव्यास्तिक अवलंबतांहो, ध्यान एकत्व प्रसूति. ॥ जि० ॥ १० ॥ राग प्रसस्त प्रभावना हो, निमित्त करन उपभेद ॥ ल० ॥ निराविकल्प सु समाधिमेंहो, भयेहैं त्रिगुन अभेद ॥ जि० ॥ ११ ॥ इम श्रीदत्त-प्रभु गुनेहो, फाग रमे मतिवंत; ॥ ल० ॥ पर परिणातिरज धोयकेहो, निरमळ सिद्धि वरंत. ॥ जि० ॥ १२ ॥ कारनथें कारज सधेहो, एह अनादकी चाल ॥ ल० ॥ देवचंद्र

पद पाइयेंहो, करत निज भाव संभाळ. ॥ ॥ जि० ॥ १३ ॥

---

## ९ श्री दामोदरजिन स्तवन.

( मोरा साहेबहो श्री शीतलनाथके—ए देशी. )

सुप्रतीतेहो करी थिर उपयोगके, दामोदर जिन वंदीये; अनादिनीहो जे मिथ्या भ्रांतिके, तेह सर्वथा छंडीए. अविरतिहो जे परणति दुष्टके, टाळी थिरता साधीए, कषायनीहो कसमलता कापीके, वर समता आराधीये ॥१॥ जंबुनेहो भरते जिनराजके, नवमा अतित चोवीशीये; जस नामेहो प्रगटे गुणराशिके, ध्याने शिवसुख विलसीये; अपराधीहो जे तुजथी

दुरके, [1]भूरिभ्रमण दुखना घणी; ते माटेहो तुज सेवा रंगके, होजो ए इच्छा घणी. ॥२॥ मरुधरमेहो जिम [2]सुरतरु लुंबके, सागरमें [3]प्रवहण समो; भव भमतांहो भविजन आधारके, प्रभु दरशन सुख अनुपमो; आतमनीहो जे शक्ति अनंतके, तेह स्वरूप पदे धर्या; परिणामिकहो ग्यानादिक धर्मके, स्वस्वकार्यपणे वर्या. ॥ ३ ॥ अविनाशी हो जे आत्मानंदके, पूर्ण अखंड स्वभावनो; निजगुणनोहो जे वर्त्तन धर्मके, सहज विलासी दावनो; तस भोगीहो तुं जिनवरदेवके, त्यागी सर्व विभावनो; श्रुतग्यानिहो न कही शके सर्वके, महिमा तुज प्रभावनो ॥ ४ ॥ निःकामीहो निकषाइ नाथ-

---

१ बहु, २ आंबानी केरीनुं लुंमखुं, ३ जहाज जेवो,

के, साथ होजो नित तुम्ह तणो, तुम आणा हो आराधन शुद्धके, साधुं हुं साधकपणो; वीतरागथीहो जे राग विशुद्धके, तेहीज भव भय वारणो; जिनचंद्रनीहो जे भक्ति एकत्वके, देवचंद्र पद कारणो ॥ ८ ॥

---

## १० श्री सुतेजाजिन स्तवन.

अतिरुडीरे अतिरुडी जिनजीनी थिरता अति रुडी; सकळ प्रदेश अनंती, गुण पर्याय शक्ति महंतीलाल. अ० तसु रमणे अनुभववंती, पररमणे जे न रमंतीलाल अ० ॥ १ ॥ उत्पाद वय पलटंती, ध्रुव शक्ति त्रिपदीसंतीलाल; अ० उतपादे उतपतमंती, पुरव पराणित व्ययपंतीलाल. अ० ॥ २ ॥ नव नव उपयोगे नवली, गुण छतिथी ते नित अचलीलाल;

अ० परद्रव्ये जे नवि गमणी, क्षेत्रांतरमांहि न-
रमणीलाल. अ० ॥ ३ ॥ अतिशय योगे नवि
दीपे, परभाव भणी नवि छीपेलाल; अ० निज
तत्व रसे जे लीनी, बीजे कोणही नवि कीनी-
लाल. अ० ॥ ४ ॥ संग्रहनयथी जे अनादि,
पण एवंभुते सादिलाल; अ० जेहने बहु माने
प्राणी, पामे निज गुण [1]सहनाणीलाल. अ०
॥ ५ ॥ थीरताथी थीरता वाधे, [2]साधक निज
प्रभुता साधेलाल; अ० प्रभुगुणने रंगे रमता,
ते पामे अविचल समतालाल. अ० ॥ ६ ॥
निज तेजे जेह सुतेजा, जे सेवे धरी बहु [1]हे-
जालाल; अ० शुद्धालंबन जे प्रभु ध्यावे, ते
देवचंद्र पद पावेलाल. अ० ॥ ७ ॥

---

१ निशानी, २ साधन करनारा.

# ११ श्री स्वामीप्रभ स्तवन.

(रहो रहो रहो वाल्हा—ए देशी )

नमि नमि नमि वीनवुं, सुगुण स्वामी जिणंद नाथरे; ज्ञेय सकल जाणग तुम, प्रभुजी ज्ञानदिणंद नाथरे. ॥ न० ॥ १ ॥ वर्त्तमान ए जीवनी, एहवी परणित केम; ॥ ना० ॥ जाणुं हेय विभावने, पिण नवि छुटे [1]प्रेम. ॥ ना० न० ॥ २ ॥ परपरणितरस रंगता, पर ग्रहकता भाव; ॥ ना० ॥ पर करता पर भोगता, श्यो थयो एह स्वभाव. ॥ ना० न० ॥३॥ विषय कषाय अशुद्धता, न घटे ए [2]निरधार; ॥ ना० ॥ तो पण वंछुं तेहने, किम तरिए संसार. ॥ ना० न० ॥४ ॥ मिथ्या अवरति [3]प्रमुखने, नियमा

---

१ स्नेह, २ जरुर, ३ वगेरेने, ४ वदलावी.

जाणुं दोष; ॥ ना० ॥ नंदु गरहूं वळी वळी, पण ते पामे संतोष. ॥ ना० न० ॥ ५ ॥ अंतरंग पर रमणता, टळशे किश्ये उपाय; ॥ ना० ॥ आणा आराधन विना, किम गुणसिद्धि थाय. ॥ ना० न० ॥ ६ ॥ हवे जिनवचन प्रसंगथी, जाणी साधक नीति; ॥ ना० ॥ शुद्ध साध्य रुचिपणे, करीए साधन रीति. ॥ ना० न० ॥ ७ ॥ भावने रमण प्रभुगुणे, योग गुणी आधीन; ॥ ना० ॥ राग ते जिनगुणरंगमे, प्रभु दीठां रतिपान. ॥ ना० न० ॥ ८ ॥ हेतु पलटावी सवे, जोडया गुणी गुण भक्ति; ॥ ना० ॥ तेह प्रशस्तपणे रम्या, साधे आतमभक्ति. ॥ ना० न० ॥ ९ ॥ धन तन मन वचना सवे, जोडया स्वामी पाय; ॥ ना० ॥ बाधक कारण वारता, साधक कारण थाय. ॥ ना० न० ॥ १० ॥

आतमता पलटावतां,प्रगट संवर रुप; ॥ना०॥ स्वस्वरुप रसी करे, पुर्णानंद अनूप. ॥ ना० न० ॥ ११ ॥ विषयकषाय जहर टळी, अमृत थाए एम; ॥ ना० ॥ जे पर सिद्ध रुचि हुवे, तो प्रभुसेवा धरी प्रेम. ॥ ना० न० ॥ १२ ॥ कारण रंगी कार्यने, साधे अवसर पामी; ॥ ना० ॥ देवचंद्र जिनराजनी, सेवा शिवसुख धाम. ॥ ना० न० ॥ १३ ॥

---

## १२ मुनिसुव्रतजिन स्तवन.

(नमणी खमणी नेम न गमणी—ए देशी.)

दीठो दरिशण श्रीप्रभुजीनो, साचे रागे मनशुं भीनो; । जसु रागे निरागी थाये, तेहनी भक्ति कोने न सुहाये. ॥ १ ॥ पुदगलआश्यारागी अनेरा, तसु पासे कुण खाये फेरा; ।

जसु भगते निरभयपद लहिये, तेहनी सेवामां थिर रहिये. ॥ २ ॥ रागीसेवकथी जे राचे, बाह्यभगति देखति माचे; । जसु गुण दाझे तृस्ना आंचे, तेहनो सुजस चतुर किम वांचे. ॥ ३ ॥ पूरणब्रह्म ने पूर्णानंदि, दनशन ग्याना चरण रस कंदि; । सकळविभाव प्रसंग अफंदि, तेह देव समरस मकरांदि. ॥ ४ ॥ तेहनी भगती भवभय भाजे, निगुण विण गुण शक्ति गाजे; । दासभाव प्रभुताने आपे, अंतरंग कलीमल सवि कापे. ॥ ५ ॥ अध्यातम सुखकारण पूरो, स्वस्वभाव अनुभूति सनुरो; । तसु गुण वळगी चेतना कीजे, परममहोदय शुद्ध लहिजे. ॥ ६ ॥ मुनिसुव्रतप्रभु प्रभूता लीना, आतमसंपाति भास न पीना; । आणारंगे चित्त धरीजे, देवचंद्रपद [१]शिघ्र वरिजे. ॥ ७ ॥

---

१ तरत.

# १३ श्री सुमतिजिन स्तवन.

( कान्हैयालाल–ए देशी. )

प्रभु शुं इश्युं वीनवुंरे लाल, मुज विभाग दुख रीतरे; ॥ साहिबीयाल्लाल ॥ तीन काळ· ना [1]ज्ञेयनीरे लाल, जाणोछो सहु नीतिरे ॥ सा० ॥ प्र० ॥ १ ॥ ज्ञेयज्ञानशुं नवि मिळेरे लाल, ग्यान न जाए तथ्थरे; ॥ सा० ॥ प्राप्त अप्राप्त मेयनेरे लाल, जाणो जे जिम जथ्थरे ॥ सा० ॥ प्र० ॥ २ ॥ छतिपरयाय जे ज्ञान नारे लाल, ते तो नवि पलटायरे ॥ सा० ॥ ज्ञेयनी नव नव वर्त्तनारे लाल, सवि जाणे असहायरे ॥ सा० ॥ प्र० ॥ ३ ॥ धर्मादिक [2]सहु द्रव्यनोरे लाल, प्राप्तभणी सहकाररे ॥

---

१ जाणनारनी, २ छए द्रव्यना,

सा० ॥ रसणादिक गुणवर्त्ततारे लाल, निज क्षेत्रे ते धाररे ॥ सा० ॥ प्र० ॥ ४ ॥ जाणग अभिलाषि नहिरे लाल, नवि प्रतिबिंबे ज्ञेयरे ॥ सा० ॥ कारक शकते जाणवुं रे लाल, भाव अनंत अमेयरे ॥ सा० ॥ प्र० ॥ ५ ॥ तेह ज्ञानसत्ताथकेरे लाल, न जणाये निज तत्वरे ॥ सा० ॥ रुचि पण तेहवी नवि वधेरे लाल, ए अप्रमोहमहत्वरे ॥ सा० ॥ प्र० ॥ मुज ज्ञायकता पररसीरे लाल, परतृश्नाये तत्वरे ॥ सा० ॥ ते समतारस अनुभवेरे लाल सुमति सेवन व्यापररे ॥ सा० ॥ प्र० ॥ ७ ॥ बाधकता पलटाववारे लाल, नाथभगति आधाररे ॥ सा० ॥ प्रभुगुणरंगी चेतनारे लाल, एहिज जीवन साररे ॥ सा० ॥ प्र० ॥ ८ ॥ अमृतानुष्ठाने रमोरे लाल, अमृतक्रियाने उपायरे

॥ सा० ॥ देवचंद्र रंगे रमेरे लाल, ते सुमतिदेव पसायरे ॥ सा० ॥ प्र० ॥ ९ ॥

## १४ श्री शिवगतिजिन स्तवन.

( थारा मोहलां उपर मेह झबुके वीजळी हो लाल. झ०—ए देशी. )

शिवगतिजिनवरदेव [3]सेवआ [4]दोहिलीहो लाल, स० परपरणित परित्याग करे तसु [5]सोहिलीहो लाल; क० आश्रव सर्व निवारी जेह संवरधरेहो लाल, जे० जे जिन आणा लीन पीन सेवन करेहो लाल. पी० ॥ १ ॥ वीतराग गुणराग भक्ति रुचिने गमेहो लाल, भ० यथाप्रवृत्ति भव्यजीव नयसंग्रह रमेहो

---

३ सेवा, ४ मुश्केल छे.

लाल; न० अमृतक्रिया विधियुक्त वचन आचारथीहो लाल, व० मोक्षार्थी जिनभक्ति करे व्यवहारथी हो लाल. क० ॥ २ ॥ गुण प्राग्भावि कार्य तणे कारणपणेहो लाल; त० रत्नत्रयी परिणाम ते रुजुसूत्रे भणेहो लाल; रु० जे गुण प्रगट थयो निजनिज कार्ये करही लाल ॥ नि० ॥ साधक भावे युक्त शब्दनय ते धरही लाल. ॥ श० ॥ ३ ॥ पोते गुणपर्याय प्रगट पण कार्यताहो लाल ॥ प्र० ॥ उणे थाए जाव ताव समभिरुढता हो लाल ॥ ता० संपुरण निज भाव स्वकारय कीजतेहो लाल. स्व० शुद्धातमनिजरुपतणे रस लीलीजते हो लाल. ॥ त० ॥ ४ ॥ उत्सर्गे एवंभुत ते फरने नीपनेहो लाल ते० निःसंगी परमातम रंगथी ते बनेहो लाल; रं०

सहजअनंत अत्यंत महंत सुखे भरयाहो लाल,
अविनाशी अविकार अपार गुणे वरयाहो लाल.
जे प्रवृति भव मुळछेद उपाय जेहो लाल ॥मु०
॥ प्रभुगुणरागे रक्त थाय शिवदाय तेहो लाल
अंश थकी सरवंश विशुद्धपणुं ठवेहो लाल,
वि० शुक्लबीजशशिरेह तेहपूरण हुवेहो लाल.
॥ ते० ॥ ६ ॥ तिम प्रभुथी शुचि राग करे,
वितरागताहो लाल, ॥क०॥ गुण एकत्व थाय
स्वगुण प्राग्भावताहो लाल; ॥ गु० ॥ देवचंद्र
जिनचंद्र सेवामांहि रहोहो लाल, ॥ से० ॥
अव्याबाध [1]अगाध आत्मसुख संग्रहोहो लाल.
॥ आ० ॥ ८ ॥

---

१ सहेली छे.

## श्री आस्तागाजिन स्तवन.

( मन मोह्यं अमारुं प्रभु गुणे–ए देशी. )

करो साचा रंग जिनेशरु, संसार विरंग बहु अन्यरे; । [2]सुरपति [3]नरपति संपदा, ते तो दुरगंधिकदन्नरे. ॥ क० ॥ १ ॥ जिनआ-स्ताग गुणरस रमी, चल विषय विकार विरु-परे; । विण समकित मते अभिलखे, जिण चाख्यो शुद्धस्वरुपरे. ॥ क० ॥ २ ॥ निज गुण चिंतन जळ रम्या, तसु क्रोध [4]अनळनो तापरे; नवि व्यापे कापे भवस्थिति, जिम [5]शीतने [6]अर्क प्रतापरे. ॥ क० ॥ ३ ॥ जिन गुणरंगी चेतना, नवि बांधे अभिनव कर्मरे;

---

१ घणुंज, २ इंद्र, ३ राजा, ४ अग्नि, ५ टाढने, ६ सूर्यना ताप प्रभावथी.

गुणरमणे निज गुण उल्लसे, ते आश्वादे निज धर्म रे. ॥ क० ॥ ४ ॥ परत्यागी गुण एकता, रमता ज्ञानादिक भावेरे स्वस्वरुप ध्याता थइ, पामे शुचि खायकभावरे. ॥ क० ॥ ५ ॥ गुणकरणे नव गुण प्रगटता सत्तागत रस थिति छेदरे; संक्रमणे उदय प्रदेशथी, करे निर्जरा टाळे खेदरे. ॥ क० ॥६॥ सहजसरुप प्रकाशथी थाए पूर्णानंद विळासरे; देवचंद्र जिनराजनी, करज्यो सेवा सुखवासरे.

---

## १६ श्री नमिश्वरस्वामीजिन स्तवन.

[ हो पीउ पंखीडा—ए देशी. ]

गगतदिवाकर श्रीनामिश्वर स्वामजो, तुज मुख दीठे [७]नाठी भूल [८]अनादिनिरेलो; जाग्यो

---

७ नासी गइ, ८ बहु वखतनी.

सम्यगज्ञानसुधारसधामजो, छांडि [1]दुर्जय मि·
थ्या निंद प्रमादनीरेलो ॥ १ ॥ सहजे प्रगटयो
निज पर भाव विवेकजो, अंतर आतम ठहरयो
साधन साधवेरेलो; साध्यालंबी थइ ज्ञायकता
छेकजो, निजपरणति थिर निजधर्मरस ठवेरे-
लो. ॥ २ ॥ त्यागीने सवि परपरणतिरस री-
झजो, जागी छेनिज आतम अनुभव इष्टतारेलो;
सहेजे छुटी आश्रव भावनी चालजो, जालम
ए प्रगटा संवर शिष्टतारेलो. ॥ ३ ॥ बंधनाहेतु
जे छे पापस्थानजो, ते तुज भगते पाम्या पुष्ट
प्रशस्ततारेलो; ध्येयगुणे वळग्यो पूरण उपयो·
गजो, तेहथी पामे ध्याता ध्येय समस्ततारेलो.
॥ ४ ॥ ज [2]अति दुस्तर जळधि समो संसा·

---

१ न जिती शकाय तेवी, २ जे न तरि शकाय तेवा समुद्र जेवा संसार, ते गायनी खरीमां पाणी भरयुं होय तेवो फरी दीधो,

रजो, ते गोपद सम कीधो प्रभु अवलंबनेरेलो.
जिन आलंबनी निरालंबता पामे जो, तेणे
हम रमशुं निज गुण शुद्ध नंदनवनेरेलो ॥ ५ ॥
श्याद्वादी प्रभुताने एकत्वजो, क्षायकभावे थाये
निज रत्नत्रइरेलो; प्रत्याहार करीने धारे धा-
रण शुद्धजो, तत्वानंदि पूर्ण समाधिलयेमइरेलो.
॥ ६ ॥ अव्याबाध स्वगुणनी पूरण रीतजो,
करता भोक्ता भावे रमणपणे धरेरेलो; सहज
अकृत्रिम निर्मळ ज्ञानानंदजो, देवचंद्र एकत्वे
सेवनथी वरेरेलो. ॥ ७ ॥

---

## १७ श्री अनिलजिन स्तवन.

( देखो गति दैवनीरे—ए देशी. )

स्वारथ विणु उपगारतारे, अद्भुत अ-

तिशय रीद्धि; आत्मस्वरूप प्रकाशतारे, पूरण सहज समृद्धि. अनिलजिन सेवीएरे, नाथ तुम्हारी जोडि; न को त्रिहुलोकमेरे, प्रभुजी परम आधार; अछो भवि थोकनेरे. ॥ १ ॥ परकारज करता नहिरे, सेव्या पार न हेत; जे सेवे तन मय थइरे, ते लहे शिवसंकेत. ॥ अ० ॥ २ ॥ करता निज गुण छतितारे, गुण परणित उपभोग; निप्रयासगुण वर्त्ततारे, नित्य सकल उपयोग. ॥ अ० ॥ ३ ॥ सेव भक्ति भोगी नहीरे, न करे परनो सहाय तुज गुणरंगी भक्तनारे, सहजे कारज थाय. ॥ अ० ॥ ४ ॥ किरीया कारण कार्यतारे, एक समय स्वाधीन; वरते प्रतिगुण सर्वदारे, तसु अनुभव लयलीन. ॥ अ० ॥ ५ ॥ ज्ञायक लोकालोक नारे, अनिलप्रभु जिनराज; नित्यानंदमयी

सदारे, देवचंद्र सुखदाय. ॥ अ० ॥ ६ ॥

---

## १८ श्री जशोधरजिन स्तवन.

( राग मारु. )

वदनपर वारिहो जशोधर, वदनपर वारि; मोहरहित मोहनजयाको, उपशमरस क्यारिहो, अहो वदन० ॥ १ ॥ मोहजीव लोहको कंचन, करवे पारस भारीहो; समकितसुरतरु वन सें-चनको, वर [१]पुष्करजलधारीहो. ॥ अहो० व० ॥ २ ॥ सर्व प्रदेश प्रगट शमगुणथी, प्रवृत्ति अनंत अपहारीहो; परमगुणी सेवनथे सेवक, अप्रशस्तता वारीहो. ॥ अहो० व० ॥ ३ ॥

---

१ पुष्करावर्त्त मेघ छे.

परपराणेत रुचि रमण ग्रहणता, दोष अनाद निवारीहो; देवचंद्र प्रभु सेवक ध्याने, आतम शक्ति [1]समारिहो. ॥ अहो० व० ॥ ४ ॥

---

## १ए श्री कृतार्थजिन स्तवन.

( अधिका ताहरुं हुं तो अपराधि—ए देशी. )

सेवा सारज्यो जिननी मन साचे, पिण मत मागो भाइ; महिनतनो फळ मागी लेतां, दासभाव सवि जाइ. ॥ से० ॥ १ ॥ भक्ति नहो ते तो भाडायत, जे सेवाफल [2]जाचे; दास तिके जे घन भरि निरखी, [3]केकीनी परे नाचे. ॥ से० ॥ २ ॥ सारि विधि सेवा सारंतां, आण न कांइ भांजे; हुकम हाजर

---

१ दुरस्त करी. २ मागे, ३ मोर.

खीजमति करतां, सहेजे नाथ निवाजे. ॥ से०
॥ ३ ॥ साहिब जाणोछो सहु वातो, शुं क-
हिये तुम आगे;साहिब सनमुख अम मागणनी,
वात कारमी लागे, ॥ से० ॥ ४ ॥ स्वामी
कृतार्थ तो पिण तुमथी, आश सहुको राखे;
नाथ विना सेवकनी चिंता, कोण करे विणु
दाखे. ॥ से० ॥ ५ ॥ तुज सेव्यां फळ माग्यो
देतां, देवपणो थाये काचो;विण माग्यां वंछित
फळ आपे, तिणे देवचंद्र पद साचो.॥से०॥६॥

---

## श्री धर्मीश्वरजिन स्तवन.

( अखीयां हरखन लागी हमारी अखीयां—ए
देशी. राग—परभाति )

हुंतो प्रभु वारिछुं तुम मुखनी, हुंतो जिन बलि

हारी तुम मुखनी, समता अमृतमय सुप्रसन्ननी, ज्ञेय नही रागरुखनी ॥ हु०॥१॥ भ्रमर अधर शिष धनुहर कमलदल, कीर हीर पुन्यमशशीनी; शोभा तुच्छ प्रभु देखत याकि, कायर हाथे जिम [1]असीनी ॥ हु० ॥ २ ॥ मनमोहन तुम सनमुख निरखत, आंख न तृपति अम्हाचि; मोहतिमर रवि हरषचंद्रछबी, मूरत ए उपशमची ॥ हु० ॥ ३ ॥ मननां चिंता मटि प्रभु ध्यावत, मुख देखंतां तुम जिननी; इंद्रि तृषा गइ जिनेसर सेवतां, गुणगातां वचननी ॥ हु० ॥ ४ ॥ [2]मीन चकोर मोर [3]मतंगज, जळ शशी घननी चनथी; तिम मो प्रति साहिब सुरतथी, ओर न चाहुं मनथी ॥ हु० ॥ ॥ ५ ॥ ज्ञानानंदन जायानंदन, आश दासनी-

---

१ तरवार, २ माछली, ३ हाथि.

यतनी; देवचंद्र सेवनमें अहनिश, रमज्यो पर-
णति चितनी ॥ हु० ॥ ६ ॥

---

## श्री शुद्धमतिजिन स्तवन.

(श्रीजिन प्रतिमा हो जिन सरखि कहि—ए देशी)

श्रीशुद्धमतिहो जिनवर पूरवो, एह मनो-
रथ माळ; सेवक जाणीहो महिरबानी करी,
भयसंकटथी टाळ ॥ श्री० ॥ १ ॥ पतितउद्धा
रणहो तारण वत्सलु, कर अपणायत एह; नि-
स्य निरागीहो निस्पृह ज्ञाननी, शुद्ध अवस्था
देह. ॥ श्री० ॥ २ ॥ परमानंदिहो तुं परमा-
तमा, अविनाशी तुज रीत; ए गुण जाणी हो
तुम वाणीथकी, ठहराणी मुज प्रीत ॥ श्री०
॥ ३ ॥ शुद्ध स्वरूपीहो ज्ञानानं नी, अव्या-

बाध स्वरुप; भवजलनिधिहो, तारक जिनेश्वरु, परममहोदयभूप ॥ श्री० ॥ ४ ॥ निरमम निसंगीहो निरभय अविकारता, निरमळ सहज समृद्धि; अष्ट करमहो वनदाहथी, मगटी अन्वयरिद्धि ॥ श्री० ॥ ५ ॥ आज अनादनीहो अनंत अक्षता, अक्षर अनक्षररुप; अचल अकलहो. अमल अगमनुं, चिदानंदाचिद्रुप ॥ श्री० ॥ ६ ॥ अनंतज्ञानीहो अनंतदर्शनी, अनाकारि अविरुद्ध; लोकालोकहो ज्ञायक सुहंकरु, अनाहारी स्वयंबुध ॥ श्री० ॥ ७ ॥ जे निज पासे हो तेशुं मागीये, देवचंद्र जिनराज; तोपिण मुजनेहो शिवपुर साधतां, होज्यो सदासु सहाय ॥ श्री० ॥ ८ ॥

इति देवचंदजी कृत अतीत चोविशीना
२१ स्तवन संपूर्ण.

# ध्यानदीपिका.

गुण अनंत धर जीवने, वंचे भवमे
कर्म–धरोनिज भावना–ए टेक.

राग द्वेष मुख हि बहढया, शत्रु हणु धरी ध्यान. धरो० ॥ आतम लखो निज ज्ञानशुं, बाळी कर्म अज्ञान. ॥ ध० ॥ २ ॥ कर्म हणु तिम ध्यानशुं, जेम न पडुं भवमांहे. ॥ ध० ॥ भवज्वर अज्ञाने नडया, नवि दीठो शिव राह. ॥ ध० ॥ ३ ॥ परमातम जग गुरु ठग्यो, नि-रस विषयने संग. ॥ ध० ॥ सर्वज्ञ आत्म नवी लेखीयो, भ्रम अज्ञाने रंग. ॥ ध० ॥ ॥ ४ ॥ आत्म स्वरूप पिछाणवा, ज्ञान दृष्टिए करी देख. ॥ ध० ॥ पंच ध्येय अरु आत्मा, ज्ञान गुण एक लेख. ॥ ध० ॥ ५ ॥ नित्य छतोछे सहज ते, केवळ गुण मुज मांहि. ॥ ॥ ध० ॥ मोह दाह त्यां पीडवे, ज्ञान अमृत

उपा नांहि. ॥ ध० ॥ ६ ॥ कर्म उदय चउ-
गति भमुं, निश्चय सिद्ध स्वरूप. ॥ ध० ॥
कर्मने भजुं केम हुं, अनंत चतुष्टय भुप. ॥
॥ ध० ॥ ७ ॥ तजी आशा निज शक्तिशुं,
हुं आनंद स्वभाव. ॥ ध० ॥ छेद अज्ञान अ-
नादिनो, आज लह्यो निज दाव. ॥ ध० ॥
॥ ८ ॥ एम जाणी धीरज धरी, रागादि मल
खोय. ॥ ध० ॥ ध्यावे आतम शक्तिशुं, धर्म
शुक्ल ध्यान होय. ॥ ध० ॥ ९ ॥ ध्यान ध्येय
स्वरूपथी, ध्यावो स्ववेद ध्यान. ॥ ध० ॥
कर्महीन सर्वज्ञता, निर्मल शील भगवान. ॥
॥ ध० ॥ १० ॥ जड चेतन जीवादि ए, ध्येय
स्वभाव पिछाणि. ॥ ध० ॥ ध्यान लहो मन
स्थिर करो, ज्ञान ध्याए आणि. ॥ ध० ॥
॥ ११ ॥ परमेश्वर परमात्मा, ध्येय अरूपी
देव. ॥ ध० ॥ द्रव्यार्थिक नय शाश्वतो, ए
परमातम सेव. ॥ ध० ॥ १२ ॥ भवद्रुम क्ष-

यकर शुद्ध छे, ज्ञान थकी पर भिन्न. ॥ ध० ॥ जगत् सकल आदर्श ज्युं, जीर्ण ज्योतिमय. ॥ ध० ॥ १३ ॥ दर्शन ज्ञान आनंदमय, अक्षर विगत–विकार. ॥ ध० ॥ इंद्रि विणुं निष्कल गुणी, शान्त जाण शिवधार. ॥ ध० ॥ ॥ १४ ॥ शुद्ध अष्ट गुण युक्त छे, निर्मळ अमेय अभेय ॥ ध० ॥ पर त्यागी अक्षय गुणी, ज्ञानीने आदेय. ॥ ध० ॥ १५ ॥ अणुथी पण जे सूक्ष्म छे, थंभथी पण जे वृद्ध, ॥ ध० ॥ जगत् पूज्य निर्भय सदा, परमातम शिव सिद्ध. ॥ ध० ॥ १६ ॥ ध्याने कर्म सहु गळे, जगगुरु अमल अरूप. ॥ ध० ॥ जिण जाणे सहु जाणिये, जाय अविद्या धूप. ॥ ध० ॥ १७ ॥ तत्त्व दृष्टि निज थीर हुवे, जाणे निज अनुभूति. ॥ ध० ॥ धरो ध्येय ज्ञेय आदेय ते, अंतर आतम भूत. ॥ ध० ॥ १८ ॥ वचन अगोचर भ्रम विना, चिंतवी सहज

अनंत. ॥ ध० ॥ जास ज्ञानमें अंशज्युं, भावे द्रव्य अनंत. ॥ ध० ॥ १९ ॥ आतम ज्ञानथी आत्मने, जाण्यां थाये सिद्धि. ॥ ध० ॥ मुनि तन्मय गुण तिहां लहे, तजी ग्रहिका नहीं लब्धि. ॥ ध० ॥ २० ॥ लीन थइ ग्रहे एकता, ध्याता ध्यान सु ध्येय ॥ ध० ॥ परमात्मा अंतरात्मा, एक अभिन्न अमेय. ॥ ध० ॥ ॥ २१ ॥ कटये कट कर्त्ता तणी, दिसे दुविधा रीति. ॥ ध० ॥ पण ध्यान ध्येय ए आत्मा, एथी नवीय परतीत. ॥ ध० ॥ २२ ॥ भवमें भम्यो अज्ञानथी, विण लाधा निज नाण. ॥ ॥ ध० ॥ परम ज्योति जग दुःखहरु, तोहिज अनुभव जाण. ॥ ध० ॥ २३ ॥ भावे एम निज भावना, ध्यान बीज गुणधाम. ॥ ध० ॥ देवचंद्र सुख सागरु, ध्यान अमूलख पाम. ॥ ध० ॥ २४ ॥

# બુદ્ધિ પ્રભા.

## આધ્યાત્મિક ઐતિહાસિક અને સામાજીક ઇત્યાદિ વિષયો ચર્ચતું માસિક.

આ માસિકનો જન્મ થએ આજે લગભગ સાત વર્ષ થયાં છે. તે દરમીયાન તેના વાંચકો જોઇ શકયા છે કે તેમાં કોઇપણ જાતના તકરારી યા મત ભેદવાળા લખાણોને સ્થાન ન આપતાં સમાજના હિતના વિષયો સમ દૃષ્ટિ પૂર્વક ચર્ચવામાં આવ્યા છે અને નિયમિત રીતે માસિક પ્રગટ થતું રહ્યું છે. દરેક જૈન બંધુઓ તેના ગ્રાહક થશે એવું ઇ· ચ્છીએ છીએ.

વાર્ષિક લવાજમ પોસ્ટેજ સાથે. રૂ. ૧-૪-૦ સ્થાનિક રૂ. ૧-૦-૦

## શ્રી-अध्यात्मज्ञानप्रसारक મંડળ.

( સ્થાપન-જ્ઞાનપંચમી-વીર સંવત્ ૨૪૩૫. )

જો તમારે તત્વજ્ઞાનના ઉત્તમ સિદ્ધાંતો, સરલ અને પ્રીય શૈલીમાં સમજવા હોય અને પોતાનું હૃદય નિર્મળ બનાવવું હોય, તો મંડળ તરફથી પ્રગટ થયેલ;-

# શ્રીમદ્ બુદ્ધિસાગરજી ગ્રન્થમાળા

## અવશ્ય વાંચો.

મજંકુર ગ્રન્થમાળામાં નીચલા ગ્રન્થો પ્રગટ થયેલ છે, જે વાંચી મનન કરી, તમારા આત્માને ઉચ્ચ શ્રેણીએ ચઢાવો. ગુરૂશ્રીની લેખનશૈલી-માધ્યસ્થદષ્ટિવાલી હોવાથી, દરેક ધર્માવલંબીઓ તેને પ્રેમપૂર્વક વાંચે છે. દરેક ગ્રન્થોમાં વિશેષે કરીને અધ્યાત્મજ્ઞાન અને તત્વજ્ઞાન સંબંધી વિવેચન છે.

**પત્રવ્યવહાર--મુંબાઇ-ચંગાગલી. વ્યવસ્થાપક** શ્રી અધ્યાત્મ જ્ઞાનપ્રસારકમંડળ જોગ કરવો.

પુસ્તકોની છપાઇ, બંધાઇ કાગળ વિગેરે સુંદર છતાં તેની કીંમત ઘણીજ ઓછી રાખવામાં આવી છે. કોઇપણ ગ્રન્થ પ્રકાશક મંડળ કરતાં ઓછામાં ઓછી કીંમત રાખવાની પહેલ આ મંડળેજ કરી છે.

પ્રભાવના, વિદ્યાર્થીઓને ઇનામ અને ભેટ આપનાર માટે વધુ નકલો મંગાવનારને ઓછી કીંમતે આપવામાં આવે છે.

# શ્રીમદ્ બુદ્ધિસાગરજી ગ્રન્થમાળામાં પ્રગટ થયેલા ગ્રન્થો.

| ગ્રંથાંક. | પૃષ્ઠ | રૂ.આ.પા. |
|---|---|---|
| ૦. ભજન સંગ્રહ ભાગ ૧ લો. | ૨૦૮ | ૦—૮—૦ |
| ૧. અધ્યાત્મ વ્યાખ્યાનમાળા | ૨૦૬ | ૦—૮—૦ |
| ૨. ભજન સંગ્રહ ભાગ ૨ જો. | ૩૩૬ | ૦—૮—૦ |
| ૩. ભજનસંગ્રહ ભાગ ૩ જો. | ૨૧૫ | ૦—૮—૦ |
| ૪. સમાધિ સતકમ્. | ૩૪૦ | ૦—૮—૦ |
| ૫. અનુભવ પચ્ચિશી. | ૨૪૮ | ૦—૮—૦ |
| ૬. આત્મપ્રદીપ. | ૩૧૫ | ૦—૮—૦ |
| ૭. ભજનસંગ્રહ ભાગ ૪ થો. | ૩૦૪ | ૦—૮—૦ |
| ૮. પરમાત્મદર્શન. | ૪૩૨ | ૦—૧૨—૦ |
| ૯. પરમાત્મજ્યોતિ. | ૫૦૦ | ૦—૧૨—૦ |
| ૧૦. તત્ત્વબિંદુ. | ૨૩૦ | ૦—૪—૦ |
| ૧૨. ગુણાનુરાગ (આવૃત્તિ બીજી) | ૨૪ | ૦—૧—૦ |
| ૧૨—૧૩ ભજનસંગ્રહ ભાગ ૫ મો તથા જ્ઞાનદિપીકા | ૧૯૦ | ૦—૬—૦ |
| ૧૪. તીર્થયાત્રાનું વિમાન (આવૃત્તિ બીજી) | ૬૪ | ૦—૧—૦ |
| ૧૫. અધ્યાત્મ ભજનસંગ્રહ | ૧૯૦ | ૦—૬—૦ |
| ૨૬. ગુરૂબોધ | ૧૭૨ | ૦—૪—૦ |

| | | |
|---|---|---|
| ૧૭. તત્ત્વજ્ઞાનદિપીકા | ૧૨૪ | ૦—૬—૦ |
| ૧૮. ગહુંલીસંગ્રહ. | ૧૧૨ | ૦—૩—૦ |
| ૧૯. શ્રાવક ધર્મસ્વરૂપ ભાગ ૧ લો. ( આવૃત્તિ ત્રીજી. ) | ૪૦ | ૦—૧—૦ |
| ૨૦. ,, ,, ભાગ ૨ જો. (આવૃત્તિ ત્રીજી) | ૪૦ | ૦—૧—૦ |
| ૨૧. ભજન પદસંગ્રહ ભાગ ૬ ઠો. | ૨૦૮ | ૦—૧૨—૦ |
| ૨૨. વચનામૃત. | ૩૮૮ | ૦—૧૪—૦ |
| ૨૩. યોગદીપક. | ૨૫૮ | ૦—૧૪—૦ |
| ૨૪. જૈન ઐતિહાસિક રાસમાળા. | ૪૦૮ | ૧—૦—૦ |
| ૨૫. આનન્દઘન પદસંગ્રહ ભાવાર્થસહિત. | ૮૦૮ | ૨—૦—૦ |
| ૨૬. અધ્યાત્મ શાન્તિ (આવૃત્તિ બીજી) | ૧૩૨ | ૦—૩—૦ |
| ૨૭. કાવ્યસંગ્રહ ભાગ ૭ મો. | ૧૫૬ | ૦—૮—૦ |
| ૨૮. જૈનધર્મની પ્રાચીન અને અર્વાચીન સ્થિતિ. | ૯૬ | ૦—૨—૦ |
| ૨૯. कुमारपाल चारित्र ( हिंदी ) | | ૦—૬—૦ |

**ગ્રન્થો નીચલા સ્થળોાથી વેચાણ મળશે.**

૧. અમદાવાદ—જૈન બોર્ડીંગ—ઠે. નાગોરીશરાહ.

૨. મુંબઇ—મેસર્સ મેઘજી હીરજીની કું.ઠે. પાયધુણી.

૩. ,, શ્રી અધ્યાત્મ જ્ઞાનપ્રસારક મંડળ·ઠે ચંપાગલી

૪. પુના—શા. વીરચંદ કૃષ્ણાજી—ઠે. વેતાલપેંઠ.

૫. સુરત—મી જી. એમ ગેકટીવાલા ઠે૦ ફેલાપીઠ.